आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य

Course Code: M23HD07DC

Discipline Core Course
Postgraduate Programme
Hindi Language and Literature

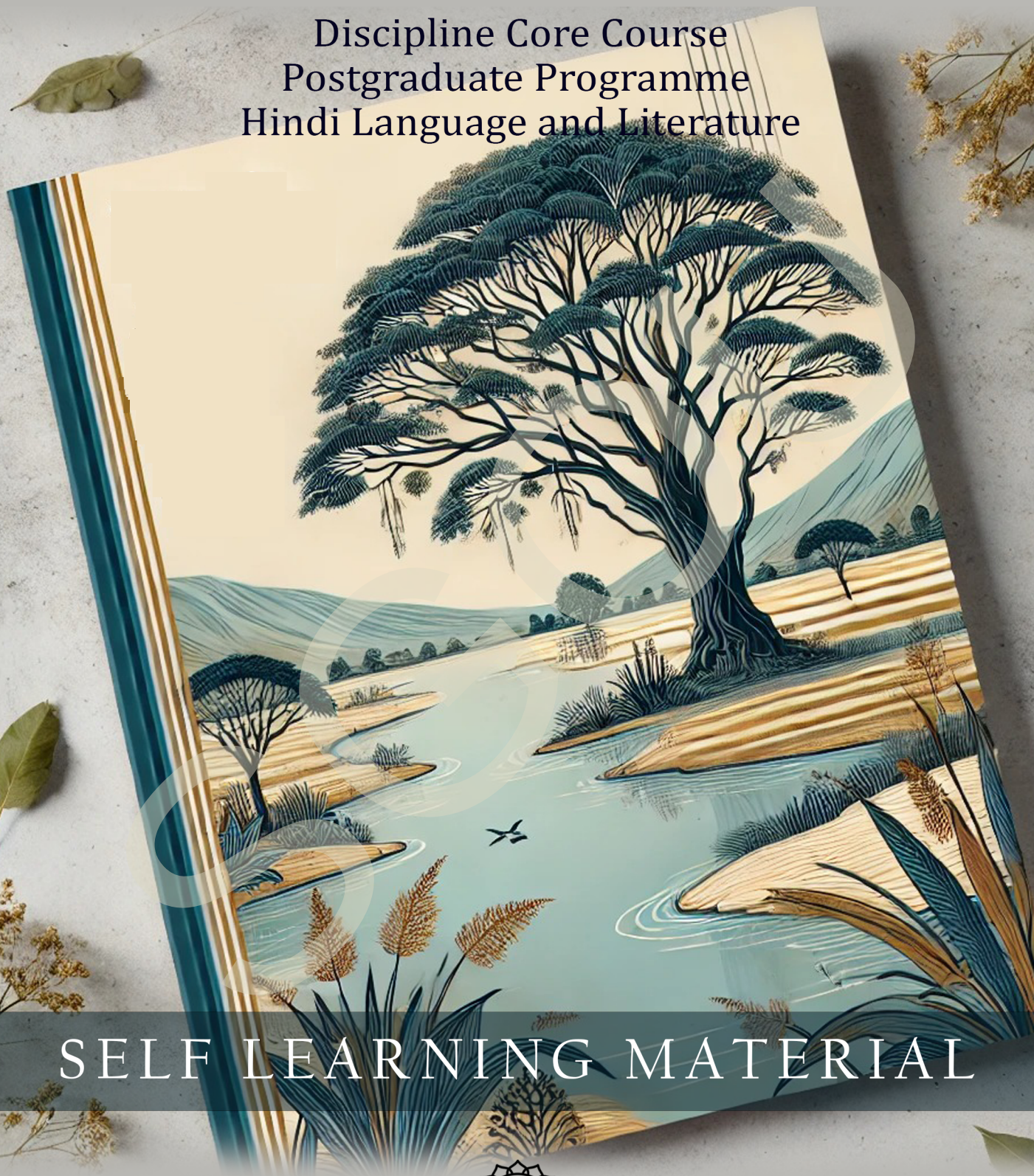

SELF LEARNING MATERIAL

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

Vision

To increase access of potential learners of all categories to higher education, research and training, and ensure equity through delivery of high quality processes and outcomes fostering inclusive educational empowerment for social advancement.

Mission

To be benchmarked as a model for conservation and dissemination of knowledge and skill on blended and virtual mode in education, training and research for normal, continuing, and adult learners.

Pathway

Access and Quality define Equity.

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य

Course Code: M23HD07DC

Semester-II

Discipline Core Course
MA Hindi Language and Literature
Self Learning Material

(With Model Question Paper Sets)

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य

Course Code: M23HD07DC
Semester - II
Discipline Core Course
MA Hindi Language and Literature

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from Sreenarayanaguru Open University.
Printed and published on behalf of Sreenarayanaguru Open University by Registrar, SGOU, Kollam.

www.sgou.ac.in

ISBN 978-81-971228-5-9

9 788197 122859

DOCUMENTATION

Academic Committee

Dr. Jayachandran R.
Dr. P.G. Sasikala
Dr. R. Sethunath
Dr. B. Ashok
Dr. Pramod Kovvaprath
Dr. Jayakrishnan J.
Dr. Vijayakumar B.

Development of the content

Dr. Indu G. Das

Review

Content : Dr. Sandhya Menon
Format : Dr. I.G. Shibi
Linguistics : Dr. Renjith R.S.

Edit

Dr. Sandhya Menon

Scrutiny

Dr. Indu G. Das, Dr. Sudha T., Krishnapreethi A. R., Christina Sherin Rose

Co-ordination

Dr. I.G. Shibi and Team SLM

Design Control

Azeem Babu T.A.

Cover Design

Lisha S.

Production

October 2024

Copyright

© Sreenarayanaguru Open University 2024

YouTube

Message from Vice Chancellor

Dear learner,

I extend my heartfelt greetings and profound enthusiasm as I warmly welcome you to Sreenarayanaguru Open University. Established in September 2020 as a state-led endeavour to promote higher education through open and distance learning modes, our institution was shaped by the guiding principle that access and quality are the cornerstones of equity. We have firmly resolved to uphold the highest standards of education, setting the benchmark and charting the course.

The courses offered by the Sreenarayanaguru Open University aim to strike a quality balance, ensuring students are equipped for both personal growth and professional excellence. The University embraces the widely acclaimed "blended format," a practical framework that harmoniously integrates Self-Learning Materials, Classroom Counseling, and Virtual modes, fostering a dynamic and enriching experience for both learners and instructors.

The university aims to offer you an engaging and thought-provoking educational journey. The postgraduate programme in Hindi uniquely combines language study with literature. While the programme ensures learners earn credits in various areas of Hindi literature, it mainly aims to improve their ability to deeply understand how different literary forms relate to society. We have also made sure to introduce learners to the latest developments in Hindi literature. Rest assured, the university's student support services will be at your disposal throughout your academic journey, readily available to address any concerns or grievances you may encounter.

We encourage you to reach out to us freely regarding any matter about your academic programme. It is our sincere wish that you achieve the utmost success.

Regards,
Dr. Jagathy Raj V. P.

01-10-2024

Contents

BLOCK-01 हिन्दी गद्य का उद्‌भव और विकास 1

इकाई : 1 हिन्दी गद्य की पृष्ठ भूमि, ब्रज भाषा गद्य, खड़ीबोली गद्य, हिन्दी गद्य के विकास के कारण, हिन्दी गद्य का विकास क्रम, काल विभाजन 2

इकाई : 2 खड़ीबोली गद्य की प्रारम्भिक रचनाएँ एवं रचनाकार - लल्लू लाल, सदल मिश्र, मुंशी सदासुखलाल, इंशा अल्ला खां, अंग्रेजों की भाषा नीति 12

इकाई : 3 1857 की क्रांति और सांस्कृतिक पुनर्जागरण, पत्रकारिता का आरंभ और 19 वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता, भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य 18

इकाई : 4 महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, हिन्दी नवजागरण और सरस्वती, हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का परिचय 25

BLOCK-02 हिन्दी कथा साहित्य 34

इकाई : 1 हिन्दी कहानी - उद्‌भव और विकास, हिन्दी कहानी का विकास-प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रसाद युग, उत्तर प्रेमचंद युग 35

इकाई : 2 नई कहानी, अकहानी, साठोत्तरी कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी, हिन्दी के प्रमुख कहानीकार - प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती (कहानी - 1. आकाशदीप - जयशंकर प्रसाद - विस्तृत अद्ययन (Detailed study) 43

इकाई : 3 हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार 53

इकाई : 4 प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार-यशपाल, जैनेंद्र कुमार, भीष्म साहिनी, फणीश्वरनाथ रेणु 61

BLOCK-03 हिन्दी नाटक और निबंध 73

इकाई : 1 हिन्दी नाटक का विकास एवं प्रमुख नाटककार, प्रसादपूर्व हिन्दी नाटक, द्विवेदी युगीन नाटक, प्रसादयुगीन नाटक, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - नुक्कड़ नाटक, हिन्दी के प्रमुख नाटककार - भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, जगदीशचंद्र माथुर, रामकुमार वर्मा 74

इकाई : 2 हिन्दी एकांकी, रंगमंच और विकास के चरण, हिन्दी का लोक रंगमंच 87

इकाई : 3 हिन्दी निबंध का विकास एवं प्रमुख निबंधकार, निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी- हिन्दी निबंधों के प्रकार - विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, आत्मपरक (कविता क्या है - आचार्य रामचंद्र शुक्ल, विस्तृत अध्ययन) (नाखून क्यों बढते हैं- हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - विस्तृत अध्ययन) 95

इकाई : 4 हिन्दी आलोचना का उद्‌भव और विकास, समकालीन हिन्दी आलोचना एवं उसके विविध प्रकार, प्रमुख आलोचक 108

BLOCK-04 हिन्दी की अन्य गद्य विधाएँ **119**

इकाई : 1 रेखाचित्र सामान्य परिचय, प्रमुख रेखाचित्रकार, रेखाचित्र और संस्मरण में अंतर (मंगर - रामकृष्ण बेनीपुरी - विस्तृत अध्ययन) संस्मरण, संस्मरण की विशेषताएँ, (प्रेमचन्दजी - महादेवी वर्मा - विस्तृत अध्ययन) 120

इकाई : 2 आत्मकथा उद्‌भव और विकास, आत्मकथा साहित्य की विशेषताएँ, जीवनी उद्‌भव और विकास, आत्मकथा और जीवनी में अंतर (मेरा जीवन - आत्मकथा अंश, प्रेमचन्द - विस्तृत अध्ययन) 132

इकाई : 3 यात्रा विवरण सामान्य परिचय (चेरापुंजी से आया हूँ - प्रदीप पंत - विस्तृत अध्ययन) 147

इकाई : 4 रिपोर्ताज - सामान्य परिचय (सूखे सरोवर का भूगोल - मणि मधुकर - विस्तृत अध्ययन) 155

इकाई : 5 व्यंग्य साहित्य, प्रमुख व्यंग्यकार (निंदा रस - हरिशंकर परसाई - विस्तृत अध्ययन) 162

Model Question Paper Sets **171**

BLOCK-01

हिन्दी गद्य का उद्भव और विकास

Block Content

Unit 1: हिन्दी गद्य की पृष्ठ भूमि, ब्रज भाषा गद्य, खड़ीबोली गद्य, हिन्दी गद्य के विकास के कारण, हिन्दी गद्य का विकास क्रम, काल विभाजन

Unit 2: खड़ीबोली गद्य की प्रारम्भिक रचनाएँ एवं रचनाकार - लल्लू लाल, सदल मिश्र, मुंशी सदासुखलाल, इंशा अल्ला खां, अंग्रेजों की भाषा नीति

Unit 3: 1857 की क्रांति और सांस्कृतिक पुनर्जागरण, पत्रकारिता का आरंभ और 19 वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता, भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य

Unit 4: महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, हिन्दी नवजागरण और सरस्वती, हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का परिचय

इकाई : 1

हिन्दी गद्य की पृष्ठ भूमि, ब्रज भाषा गद्य, खड़ीबोली गद्य, हिन्दी गद्य के विकास के कारण, हिन्दी गद्य का विकास क्रम, काल विभाजन

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी गद्य साहित्य के उद्‌भव और विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- ब्रजभाषा गद्य के प्रयोग, प्रसार आदि को समझता है
- खड़ीबोली गद्य के विकास और इसके क्षेत्र को समझता है
- हिन्दी गद्य साहित्य के विकास क्रम से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी गद्य साहित्य का उद्‌भव और विकास कैसे हुआ? इस पर चर्चा करने के साथ-साथ ही हम यह भी विचार करेंगे कि हिन्दी गद्य किस भाँति विकसित होकर वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व हिन्दी भाषा में गद्य रचनाएँ अधिक नहीं थीं। उस समय ब्रजभाषा साहित्य की भाषा थी, जिसमें भाव-विचार की अभिव्यक्ति के लिए कविता भाषा का ही प्रयोग होता था लेकिन बोलचाल की भाषा गद्य थी। ब्रजभाषा के बोल-चाल के इस रूप का प्रयोग गद्य रचनाओं में होता था। हिन्दी गद्य विकास की दृष्टि से इन रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

गद्य और पद्य, 'अष्टयाम', 'ज्ञान मंजरी', 'नासिकेतोपाख्यान', 'बैताल पच्चीसी'

Discussion / चर्चा

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना से यहाँ परिवर्तनों की जो श्रृंखला प्रारम्भ हुई इसका भारतीय जनजीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा; इनमें से कई परिवर्तनों का सीधा-सीधा सम्बन्ध हिन्दी गद्य के विकास से भी है। भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी परस्पर मिलकर इस देश के विकास में अपना योगदान देते हैं। दक्षिण भारत के केरल और पूर्वी भारत के छोटे-छोटे राज्यों में ईसाई धर्म को मानने वालों की संख्या काफी है। आज से कई सौ वर्ष पूर्व ईसाई धर्म प्रचारक इस देश में आये। जब भारत पर अंग्रेजों का साम्राज्य हुआ तो इन ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपनी गतिविधियाँ तेज कर दी, इनकी इन्हीं गतिविधियों ने हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। चूंकि उस युग में जन सामान्य की बोल चाल की भाषा हिन्दी गद्य थी। इसलिए इन धर्म प्रचारकों ने जनता में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए छोटी-छोटी प्रचार पुस्तकों का निर्माण हिन्दी गद्य में किया। इसी क्रम में 'बाइबिल' का हिन्दी गद्यानुवाद प्रकाशित हुआ। जिससे हिन्दी गद्य का काफी विकास हुआ।

1.1.1 हिन्दी गद्य का विकास

1.1.1.1 हिन्दी गद्य की पृष्ठभूमि

हिन्दी गद्य के उद्‌भव के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। कोई इसका आरंभ 10वीं शताब्दी मानते हैं तो कोई 11वीं शताब्दी और कोई 13वीं शताब्दी। राजस्थानी एवं ब्रज भाषा में हमें गद्य के प्राचीनतम प्रयोग मिलते हैं। राजस्थानी गद्य की समय सीमा 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तथा ब्रज गद्य की सीमा 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक मानी जाती है। ऐसा माना जाता है कि 10वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी के मध्य ही हिन्दी गद्य की शुरुआत हुई थी। आचार्य शुक्लजी ने खड़ी बोली गद्य का प्रारंभ अकबर के दरबारी कवि गंग द्वारा रचित 'चंद छंद बरनन की महिमा' से माना है।

▶ हिन्दी गद्य की शुरुआत

शैली की दृष्टि से साहित्य के दो भेद हैं- गद्य और पद्य। गद्य वाक्यबद्ध, विचारात्मक रचना है और पद्य छंदबद्ध/लयबद्ध भावात्मक रचना है। गद्य में बौद्धिक चेष्टाएँ और चिंतनशील मनःस्थितियाँ अपेक्षाकृत सुगमता से व्यक्त की जा सकती हैं, जबकि पद्य में भावपूर्ण मनःस्थितियों की अभिव्यक्ति सहज होती है। पद्य में संवेदना और कल्पना की प्रमुखता होती है और गद्य में विवेक की। इसी कारण पद्य को हृदय की भाषा और गद्य को मस्तिष्क की भाषा कहते हैं। 'गद्य' शब्द का उद्‌भव 'गद्' धातु के साथ 'यत्' प्रत्यय जोड़ने से हुआ है। 'गद्' का अर्थ है- बोलना, बताना या कहना। विषय और परिस्थिति के अनुरूप शब्दों का सही स्थान निर्धारण तथा वाक्यों की उचित योजना ही गद्य की उत्तम कसौटी है। इसलिए गद्य में अनेक विधाओं का समावेश है।

▶ 'गद्य' शब्द का उद्‌भव

1.1.1.2 ब्रज भाषा गद्य

जब हम ब्रजभाषा साहित्य कहते हैं तो, उसमें गद्य का समावेश नहीं करते। इसका कारण यह नहीं है कि, ब्रजभाषा में गद्य और साहित्यिक गद्य है ही नहीं। वैष्णवों के वार्ता साहित्य में, भक्ति ग्रन्थों के टीका साहित्य में तथा रीतिकालीन ग्रन्थों के टीका साहित्य में ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग हुआ है, परन्तु गद्य का प्रसार दो ही स्थितियों में होता है, या तो वह शास्त्र हो या गद्यगन्धी हो, क्योंकि इन्हीं दोनों दिशाओं में उसमें पुनरावर्तन होता है। छापाखाने के आगमन के बाद गद्य का महत्व अपने आप बढ़ा, क्योंकि तब कंठगत करने की अपरिहार्यता नहीं रही। लल्लूलाल जी ने अपने 'प्रेमसागर' में ब्रजभाषा से भावित ऐसे गद्य की रचना की और वह गद्य ही आधुनिक गद्य की भूमि बना, किन्तु ब्रजभाषा का स्थान उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से जो हिन्दी को मिला, उसमें गद्य की नयी भूमिका का महत्व तो था ही, सबसे बड़ा कारण था, अंग्रेजों के द्वारा उत्तर भारत में कचहरी की भाषा के रूप में उर्दू को मान्यता देना। उर्दू को मान्यता देने के साथ-साथ फारसी लिपि को भी मान्यता देना। देश की एकता और जन-भावना को देखते हुए कचहरी में देवनागरी लिपि की मान्यता के लिए स्वर्गीय मदनमोहन मालवीय द्वारा आन्दोलन चलाया गया और तब पूरी इबारत भले ही फ़ारसी-अरबी बहुल भाषा में हो, परन्तु देवनागरी के प्रयोग के लिए पहली माँग की गई। इस प्रशासनिक और न्यायालयी भाषा के प्रयोग के दबाव में खड़ी बोली हिन्दी का पनपना स्वभाविक ही था।

▶ आधुनिक गद्य की पृष्ठभूमि

एक दूसरा कारण यह भी था कि शिक्षा के माध्यम के रूप में भी शिवप्रसाद गुप्त ने, जो एक मध्यम वर्ग को अपनाते हुए फ़ारसी की ओर लचती हुई हिन्दी में पाठ्य पुस्तकें तैयार

कीं। भूदेव मुखर्जी और लक्ष्मणसिंह ने उससे अलग जाकर सहज हिन्दी में शिक्षा की पुस्तकें तैयार कीं। इस शिक्षा माध्यम के दबाव में भी खड़ीबोली का साहित्यिक और परिनिष्ठित रूप विकसित हुआ। अन्तिम कारण यह था कि उद्योगीकरण और नये किस्म की राष्ट्रीयता के जागरण में व्यावसायिक संगठनों की विशेष भूमिका हुई तथा उस भूमिका के निर्वाह के लिए बाज़ारी हिन्दी का विकास हुआ। बाज़ारी हिन्दी शुरू-शुरू में एक मिली-जुली भाषा थी। बाद में यह मानक रूप ग्रहण करके आधुनिक हिन्दी बनी, परन्तु यह बाज़ारी हिन्दी ब्रजभाषा नहीं थी, यह व्यापारिक अन्तःप्रान्तीय सम्पर्क की भाषा थी। शासन की भाषा के रूप में छोटी रियासतों में जिस भाषा का प्रयोग किया जाता था, वह मानक ब्रजभाषा नहीं थी, बुन्देलखण्ड में बुन्देली थी, तो अवध में अवधी, ब्रज के क्षेत्र में ब्रज थी। साहित्यिक ब्रजभाषा के न टिकने का अन्तिम कारण यह था, इसका काव्य रूप जो एकमात्र प्रमाणिक भाषा रूप था, बहुत रूढ़िग्रस्त हो गया। इसमें एक प्रकार की जकड़न आ गई और प्रयोगशीलता भी कम हो गई। द्विजदेव जैसे एकाध अपवादों को अगर छोड़ दें तो जानदार भाषा लिखने वाले कवि कम होते गए।

▶ बाज़ारी हिन्दी का विकास

1.1.1.3 खड़ीबोली गद्य

खड़ीबोली अपने मूलरूप में एक मिश्रित बोली है जिसमें कौरवी के साथ पंजाबी, बाँगरू एवं ब्रज के तत्व भी अपने मूलरूप या परिवर्तित रूप में समाहित हैं। खड़ीबोली मध्य प्रदेश के भाषारूपों पर आधारित है। उत्पत्ति की दृष्टि से इसे शौरसेनी अपभ्रंश या उसके सन्धिकालीन रूप शौरसेनी अवहट्ट से सम्बन्धित किया जा सकता है। भाषा के रूप में खड़ीबोली हिन्दी का अस्तित्व सन् 1900 ई. के आसपास मिलने लगता है। उल्लेखनीय है कि हिन्दी आम आदमी की ज़रूरत की भाषा के रूप में उत्पन्न हुई इसलिए उसके विकास का इतिहास भारत की लोकचेतना के विकास से जुड़ा रहा।

▶ खड़ीबोली हिन्दी का अस्तित्व

1.1.1.3.1 खड़ीबोली के नाम के आधार

'खड़ी बोली' शब्द का प्रयोग आरम्भ में उसी भाषा शैली के लिए हुआ, जिसे 1823 ई. के बाद 'हिन्दी' कहा गया। किंतु जब प्राचीन या प्रचलित शब्द ने 'खड़ी बोली' का स्थान ले लिया तो खड़ी बोली शब्द उस शैली के लिए बहुत कम प्रयुक्त हुआ, केवल साहित्यिक संदर्भ में कभी-कभी प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार जब यह मत प्रसिद्ध हो गया कि हिन्दी, उर्दू और हिंदुस्तानी की मूलाधार बोली ब्रजभाषा नहीं वरन दिल्ली और मेरठ की जनपदीय बोली है, तब उस बोली का अन्य उपयुक्त नाम प्रचलित न होने के कारण उसे 'खड़ी बोली' ही कहा जाने लगा। इस प्रकार खड़ी बोली का प्रस्तुत भाषाशास्त्रीय प्रयोग विकसित हुआ। प्राचीन कुरु जनपद से सम्बंध जोड़कर कुछ लोग अब इसे 'कौरवी बोली' भी कहने लगे हैं, किंतु जब तक पूर्णरूप से यह सिद्ध न हो जाए कि इस बोली का विकास उस जनपद में प्रचलित अपभ्रंश से ही हुआ है तब तक इसे कौरवी कहना वैज्ञानिक दृष्टि से युक्तियुक्त नहीं।

▶ भाषाशास्त्रीय प्रयोग

खड़ी बोली निम्न लिखित स्थानों के ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाती है- मेरठ, बिजनौर, मुज़फ़्फ़रनगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अम्बाला, कलसिया और पटियाला के पूर्वी भाग, रामपुर और मुरादाबाद। बाँगरू, जाटकी या हरियाणवी एक प्रकार से पंजाबी और राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली ही हैं जो दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार और पटियाला, नाभा, जिंद के ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाती है। खड़ी बोली क्षेत्र के पूर्व में ब्रजभाषा, दक्षिण पूर्व में मेवाती, दक्षिण पश्चिम में पश्चिमी राजस्थानी, पश्चिम में पूर्वी पंजाबी और उत्तर में

▶ खड़ी बोली के क्षेत्र

पहाड़ी बोलियों का क्षेत्र है।

बिहार, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश एवं हरियाणा हिन्दी (खड़ी बोली) भाषाभाषी राज्य हैं। दूसरे शब्दों में, खड़ी बोली हिन्दी पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण-पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक बोली जाती है। भारत के बाहर (म्यांमार, लंका, मॉरिशस, ट्रिनिडाड, फीजी, मलाया, सूरीनाम, दक्षिण और पूर्वी अफ़्रीक़ा) भी हिन्दी बोलनेवालों की संख्या काफ़ी है।

▶ दक्षिण-पश्चिम में खड़ी बोली के क्षेत्र

हिन्दी साहित्य का इतिहास अत्यंत विस्तृत व प्राचीन है। हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं पर विचार करते समय हमारे सामने हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न दसवीं शताब्दी के आसपास की प्राकृताभास भाषा तथा अपभ्रंश भाषाओं की ओर जाता है। अपभ्रंश शब्द की व्युत्पत्ति और जैन रचनाकारों की अपभ्रंश कृतियों का हिन्दी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो तर्क और प्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रस्तुत किये गये हैं उनपर विचार करना भी आवश्यक है। सामान्यतः प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही पद्य रचना प्रारम्भ हो गयी थी।

▶ हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न

साहित्य की दृष्टि से पद्यबद्ध जो रचनाएँ मिलती हैं वे दोहा रूप में ही हैं और उनके विषय धर्म, नीति, उपदेश आदि हैं। राजाश्रित कवि और चारण कवि नीति, श्रृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के वर्णन से अपनी साहित्य-रुचि का परिचय दिया करते थे। यह रचना-परम्परा आगे चलकर शौरसेनी अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी में कई वर्षों तक चलती रही।

पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। इस भाषा को विद्यापति ने देसी भाषा कहा है, किन्तु यह निर्णय करना सरल नहीं है कि हिन्दी शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में हिन्दी शब्द का प्रयोग विदेशी मुसलमानों ने किया था। इस शब्द से उनका तात्पर्य भारतीय भाषा से था। खुसरो ने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ साथ शुद्ध खड़ी बोली में कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थीं। अकबर के समय में गंग कवि ने 'चंद छंद बरनन की महिमा' नामक एक गद्य पुस्तक खड़ी बोली में लिखी थी। राहुल सांकृत्यायन खड़ी बोली हिन्दी का उद्भव काल 7वीं शताब्दी मानते हैं। यही मत चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का भी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वतंत्र बोलचाल की भाषा से मानते हैं। आचार्य हज़ारी प्रसाद भी इसी मत के हैं।

▶ हिन्दी शब्द का प्रयोग

1.1.1.4 हिन्दी गद्य के विकास के कारण

आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य का विकास पद्य के साथ ही साथ गद्य विधाओं के रूप में भी हुआ। इससे पूर्ववर्ती कालों का साहित्य केवल पद्य में ही उपलब्ध होता है, इसलिए हिन्दी गद्य का विकास आधुनिक काल की प्रमुख उपलब्धि मानी जा सकती है। इस काल में गद्य की अधिकता को दृष्टिगत रखकर ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'गद्यकाल' नाम दिया है। जैसे-जैसे संस्कृति, सभ्यता और विज्ञान का विकास हुआ, वैसे-वैसे विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए गद्य की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। हिन्दी गद्य की विकास यात्रा का उल्लेख करने से पहले हमें ब्रजभाषा गद्य एवं राजस्थानी गद्य साहित्य पर भी दृष्टिपात कर

लेना चाहिए। राजस्थानी गद्य में जैन साधुओं ने धर्मशास्त्र, वैद्यक, नीति के कुछ ग्रन्थ लिखे हैं। ब्रजभाषा गद्य की विशेष कृतियों में सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में लिखित विट्ठलनाथ कृत 'श्रृंगार रस मंडन' तथा सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गोकुलनाथ द्वारा रचित 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' का नाम लिया जा सकता है। इनके अलावा नाभादास कृत 'अष्टयाम' (1603 ई. के लगभग) में प्रभु राम की दिनचर्या का वर्णन ब्रजभाषा गद्य में किया गया है। सदल मिश्र कृत नासिकेतोपाख्यान (1800 ई. में), सूरति मिश्र कृत बैताल पच्चीसी (1710 ई. में) का अनुशीलन भी ब्रजभाषा गद्य का स्वरूप समझने में सहायक है।

▶ ब्रजभाषा गद्य का स्वरूप

1.1.1.4.1 नवीन आविष्कार

अंग्रेजों ने अपनी स्थिति को और सुदृढ़ करने के लिए मुद्रण, यातायात और दूरसंचार के नये साधनों का प्रयोग किया। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन् 1844 से सन् 1856 तक इस देश में रेल और तार के साधन जोड़ दिये थे। यातायात के तेज संसाधनों के बढ़ने से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन तीव्र होने लगा था। अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई जिससे हिन्दी गद्य लेखन का भी तीव्रता से विकास हुआ।

▶ नये साधनों का प्रयोग

1.1.1.4.2 शिक्षा का प्रसार

सन् 1835 में लार्ड मैकाले ने भारत में शिक्षा-प्रसार के लिए अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का आविष्कार किया। इससे पूर्व इस देश की शिक्षा फारसी और संस्कृत के माध्यम से दी जाती थी। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति से जहाँ-जहाँ भी शिक्षा दी जाती थी, उन स्कूल कॉलजों में हिन्दी, उर्दू पढ़ाने की विशेष व्यवस्था होती थी। सन् 1800 ई. में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज में सन् 1824 में हिन्दी पढ़ाने का विशेष प्रबन्ध हुआ। इससे पूर्व सन् 1823 में आगरा कॉलेज भी स्थापना हुई जिसमें हिन्दी शिक्षा का विशेष प्रबन्ध हुआ। इसने कॉलेजों में हिन्दी शिक्षा समुचित रूप से संचालित हो इसके लिए हिन्दी के अच्छे पाठ्यक्रम बनाये। इस शिक्षा विस्तार से भी हिन्दी गद्य का अच्छा विकास हुआ।

▶ शिक्षा प्रसार के लिए अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति

1.1.1.4.3 समाज सुधार आन्दोलन

19 वीं शताब्दी समाज सुधार की शताब्दी थी। इस सदी में भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करने के लिए अनेक आन्दोलन हुए। चूंकि समाज सुधार के आन्दोलनों को जिन नेताओ ने संचालित किया उन्हें जनता तक अपनी बात पहुँचाने के लिए भाषा की आवश्यकता पड़ी। 'ब्रह्म समाज' के संस्थापक राजा राममोहन राय ओर आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने अपने-अपने मतों को समाज तक पहुँचाने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया वह हिन्दी भाषा थी। इसी से हिन्दी गद्य को एक नया रूप मिला।

▶ समाज सुधार की शताब्दी

1.1.1.4.4 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन

मुद्रण की सुविधा से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा जिनके माध्यम से अनेक गद्य लेखक लिखने लगे। 30 मई सन् 1826 ई. में कलकत्ता से पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने 'हिन्दी' के प्रथम पत्र 'उदन्त-मार्तण्ड' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह हिन्दी का साप्ताहिक पत्र था। हिन्दी के पाठकों की संख्या कम होने के कारण 4 दिसम्बर सन् 1827 को यह बन्द हो

गया। इस पत्र के माध्यम से भी हिन्दी गद्य का विकास हुआ। 9 मई सन् 1829 को कलकत्ता से हिन्दी के दूसरे पत्र 'बंगदूत' का प्रकाशन हुआ। इसी तरह सन् 1934 में कोलकाता से 'प्रजामित्र', सन् 1845 में बनारस से 'बनारस अखबार', सन् 1846 में 'मार्तण्ड' जैसे समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ। इन सबकी गद्य भाषा हिन्दी थी। इस तरह 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गयी। इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी गद्य को और अधिक विकसित और परिमार्जित किया।

▶ पत्र के माध्यम से हिन्दी गद्य का विकास

1.1.1.5 हिन्दी गद्य का विकास क्रम

हिन्दी-गद्य-साहित्य के विकासक्रम में भारतेन्दु युग के गद्य-साहित्य का महत्व और मूल्य असाधारण है। इसी युग में हिन्दी-प्रदेश में आधुनिक जीवनचेतना का उन्मेष हुआ। मध्यमवर्गीय सामाजिक परिवेश में साहित्यरचना का जो रूप उभरा, उनमें कहीं-कहीं सामन्तीय संस्कारों का अवशेष लक्षित अवश्य होता है। किन्तु वह टूटने के क्रम में है। रचनागत प्रतिपाद्य की दृष्टि से यह बहुत बड़ा परिवर्तन था। यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश शासन व्यवस्था की दृढ़ता के बावजूद उसके प्रति विरोध का भाव प्रत्येक साहित्यकार के मन में विद्यमान है। देश और समाज के हित की भावना से भी प्रभावित है। साहित्य-सर्जन की दृष्टि से हिन्दी गद्य की प्रायः सभी विधाओं का सूत्रपात इसी युग में हुआ, विशेष रूप से निबन्ध और नाटक-इन दो विधाओं में लेखकों को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। उपन्यासों में सामाजिक जीवन के स्पन्दन का स्वर भी इसी युग में सुनाई पड़ने लगा। सब मिलाकर भारतेन्दु काल का साहित्य व्यापक जागरण का सन्देश लेकर आया और भाषा के स्वरूप विकास में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस युग में न केवल हिन्दी गद्य का स्वरूप स्थिर हुआ, बल्कि उसके शुद्ध साहित्योपयोगी और व्यवहारोपयोगी रूपों की पूर्ण प्रतिष्ठा भी हुई। इस प्रकार भाषा और साहित्य दोनों जीवन की गति के साथ जुड़ गये। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और प्रसार की गति भी तीव्र हुई, जिससे जीवन के विविध क्षेत्रों में हिन्दी के प्रयोग की परम्परा आगे बढ़ी। किसी भी भाषा के इतिहास में इतनी अल्प अवधि में होने वाली यह प्रगति गर्व की बात मानी जाएगी।

▶ हिन्दी गद्य की सभी विधाओं का सूत्रपात

द्विवेदी युग के गद्य-साहित्य के विवेचनात्मक सर्वेक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि इस युग के साहित्य-सृजन का प्रेरक तत्व राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण ही था। भारतेन्दु युग में इस जागरण ने साहित्यधारा को नये पथ पर मोड़ दिया था और साहित्य तथा समाज के अन्तराल को कम किया था। इस युग में जागरण प्रत्येक साहित्य विधा का अन्तर्वर्ती प्रवाह बन गया। निबन्ध हो या आलोचना, कहानी हो या उपन्यास, उसके कलात्मक परिधान को हटा देने पर भीतर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण की चेतना अवश्य लक्षित होती है। इस जागरण ने साहित्य के मूल्यों में परिवर्तन किया। शास्त्रीय रूढ़ियाँ टूटी, साहित्य का उद्देश्य व्यापक जनसमुदाय को प्रभावित करना और उसे आदर्श जीवन की ओर मोड़ना माना गया। मुद्रण व्यवस्था ने इस उद्देश्य की पूर्ति में योग दिया। साहित्य कुछ रसिकों की वस्तु न रहकर समस्त शिक्षित जनता की वस्तु बन गया। नयी जीवनदृष्टि ने नयी भाषा को माध्यम बनाया। खड़ी बोली पूर्णतः प्रतिष्ठित हुई। उसे पंडिताऊपन और ठेठ गंवारूपन से मुक्त करके माँजा सँवारा गया। वास्तव में हिन्दी प्रदेश की जनता अपने को नये युग के अनुकूल बना रही थी। इसलिए भाषा को भी युग की नयी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बनाने की चेष्टा की गयी। लेखकों का ध्यान हिन्दी के प्रचार-प्रसार और परिमार्जन के साथ ही उसके अभावों की ओर भी गया और अपने सीमित साधनों को संघटित करके उन्होंने योजनाबद्ध रूप में साहित्य

के अभावों की पूर्ति का प्रयत्न किया। नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन इसी भावना के प्रतीक हैं। हिन्दी साहित्य के विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय रहेगा। साहित्य के दुर्लभ ग्रन्थों की खोज, हिन्दी साहित्येतिहास का निर्माण, प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन और ज्ञान-विज्ञान से सम्बद्ध उपयोगी साहित्य की सृष्टि को प्रोत्साहन देकर इन संस्थाओं ने साहित्य-निर्माण में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। अभी तक हिन्दी को विश्वविद्यालय में स्थान नहीं मिला था। इसलिए उसे ज्ञान के साहित्य का माध्यम बनाने की दिशा में जो कुछ किया गया, वह इन संस्थाओं और 'सरस्वती' जैसी कुछ पत्रिकाओं द्वारा ही किया गया। साहित्य सृजन की मूल प्रेरणा, समाज सुधार, चरित्र-निर्माण या व्यापक राष्ट्रीय हित होने के कारण इस काल की साहित्य कृतियों में कलात्मक निखार तो नहीं आया, किन्तु सभी प्रकार की गद्य विधाओं की विकास परम्परा का आरम्भ अवश्य हो गया। साहित्य का स्वरूप क्रमशः गम्भीर हुआ और उसमें दायित्वबोध जागा। साहित्य को शिष्ट समाज में प्रवेश पाने के योग्य समझा जाने लगा और सब मिलाकर हिन्दी गद्य को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

▶ साहित्य के मूल्यों में परिवर्तन

छायावादयुगीन गद्य साहित्य पर विहंगम दृष्टि-निक्षेप करने पर हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि इस युग में गद्य की विभिन्न विधाओं की अभूतपूर्व उन्नति हुई। प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद तथा रामचन्द्र शुक्ल इस युग के ऐसे कृतिकार हैं, जिन्होंने एकाधिक गद्य-विधाओं को समृद्ध करने में उल्लेखनीय योगदान दिया। कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का आगमन क्रान्तिकारी परिवर्तन का सूचक सिद्ध हुआ। 'सेवासदन' के प्रकाशन से कल्पनातिरंजित कथानक के परित्याग की जो प्रवृत्ति 1918 ई. में आरम्भ हुई, वह इस काल के अनेक लेखकों के लिए दिशा-निर्देशक सिद्ध हुई। इसलिए इस युग के लगभग सभी उपन्यासकारों और कहानी-लेखकों ने युग-जीवन को वाणी प्रदान करने का भरपूर प्रयत्न किया। नाट्य-रचना के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद ने पाठकों के हृदय में आत्मगौरव, उत्साह एवं प्रेरणा का संचार करने के लिए देश के अतीतकालीन गौरवपूर्ण इतिहास को प्रतिपाद्य के रूप में अपनाया, तो लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्यामूलकता और मानसिक अंतर्द्वन्द्व का सफल अंकन किया। किन्तु सम्पूर्ण नाटकों की तुलना में इस अवधि के एकांकी नाटक परिमाण और उपलब्धि-दोनों दृष्टियों से विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं, उनका महत्व परवर्ती एकांकीकारों के लिए पृष्ठभूमि उपस्थित करने की दृष्टि से ही मान्य हो सकता है। इसके विपरीत निबन्ध रचना के क्षेत्र में पर्याप्त विषय वैविध्य, भाषागत प्रौढ़ता तथा शैलीगत विविधता दृष्टिगत होती है।

▶ गद्य की विभिन्न विधाओं की अभूतपूर्व उन्नति

आचार्य शुक्ल ने मानव-मन की विभिन्न अवस्थाओं की मनोवैज्ञानिक विवेचना करने वाले निबन्धों के साथ-साथ उत्कृष्ट कोटि के विचारात्मक निबन्धों की भी रचना की। हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में उनका योगदान और भी अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने ही पहली बार कवियों की आन्तरिक विशेषताओं के उद्घाटन और अन्वेषण का मार्ग अपनाया तथा पौरस्त्य काव्य सिद्धान्तों के साथ-साथ पाश्चात्य आलोचना दृष्टि से प्रेरणा ग्रहण की। जीवनी, यात्रावृत्त, संस्मरण, गद्यकाव्य आदि गौण समझी जाने वाली विधाओं ने भी इस युग में नये आयाम प्राप्त किए। गद्यकाव्य तो सर्वथा इसी युग में अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित हुआ। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि छायावाद युग काव्य-क्षेत्र में ही नहीं, गद्य-साहित्य की दृष्टि से भी पर्याप्त समृद्ध है और यह समृद्धि तथा गुण दोनों ही रूपों में ध्यान आकृष्ट करता है।

▶ गद्य-साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध

1.1.1.6 काल विभाजन

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल भारत के इतिहास के बदलते हुए स्वरूप से प्रभावित था। स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीयता की भावना का प्रभाव साहित्य में भी आया। भारत में औद्योगीकरण का प्रारंभ होने लगा था। आवागमन के साधनों का विकास हुआ। अंग्रेज़ी और पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बढा और जीवन में बदलाव आने लगा। ईश्वर के साथ-साथ मानव को समान महत्व दिया गया। भावना के साथ-साथ विचारों को पर्याप्त प्रधानता मिली। पद्य के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ और छापेखाने के आते ही साहित्य के संसार में एक नई क्रांति हुई।

आधुनिक हिन्दी गद्य का विकास केवल हिन्दी भाषी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रहा। पूरे भारत में और हर प्रदेश में हिन्दी की लोकप्रियता फैली और अनेक अन्य भाषी लेखकों ने हिन्दी में साहित्य रचना करके इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

हिन्दी गद्य के विकास को विभिन्न सोपानों में विभक्त किया जा सकता है -

1. भारतेंदु पूर्व युग 1800 ई. से 1850 ई. तक।
2. भारतेंदु युग 1850 ई. से 1900 ई. तक।
3. द्विवेदी युग 1900 ई. से 1920 ई. तक।
4. रामचंद्र शुक्ल व प्रेमचंद युग 1920 ई. से 1936 ई. तक।
5. अद्यतन युग 1936 ई. से आज तक।

▶ अन्य भाषी लेखकों ने हिन्दी में साहित्य रचना करके इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

आधुनिक काल के आरंभ से पहले अर्थात् 19वीं शताब्दी से पूर्व अन्य भारतीय भाषाओं की तरह हिन्दी भाषा में भी गद्य की रचनाएँ बहुत अधिक नहीं थीं। आज खडी बोली साहित्य की भाषा है, किन्तु पूर्व आधुनिक काल यानी 16वीं-17वीं सदी में उसका साहित्य में प्रयोग बहुत समय तक नगण्य-सा ही रहा। क्योंकि उस समय ब्रज भाषा साहित्य की भाषा थी। लम्बे समय तक साहित्यिक रचनाएँ ब्रज भाषा में ही होती रहीं। भाव-विचार की अभिव्यक्ति केलिए काव्य की रचना होती थी, लेकिन आपस में विचार-विनिमय केलिए एक अलग प्रयोग का भाषा होता था। बोलचाल की यह भाषा गद्यात्मक थी। ब्रजभाषा के बोलचाल के इस रूप का प्रयोग गद्यात्मक रचनाओं में होता था। आरंभिक हिन्दी गद्य की दृष्टि से ऐसी रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी गद्य साहित्य का उद्‌भव और विकास के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. ब्रज भाषा गद्य से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
3. हिन्दी गद्य के विकास के कारण बताइए।
4. हिन्दी गद्य का विकास क्रम कैसा था? अपना मत प्रकट कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास - रामस्वरूप चतर्वेदी
2. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार - द्वारिका प्रसाद सक्सेना
3. हिन्दी निबंध के विकास - डॉ. ओमकांत शर्मा
4. निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी - सं. गणपतिचन्द्र गुप्त

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. गद्य की विविध विधाएँ - मजिदा आजाद
2. हिन्दी गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ - डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया
4. हिन्दी निबंधकार - जयंत नलिन
5. प्रेमचन्द : मूल्यांकन - इन्द्रनाथ मदान
6. हिन्दी में निबंध और निबंधकार - डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त
7. हिन्दी रेखाचित्र - एच.एल. शर्मा
8. प्रेमचन्द और उनका युग - रामविलास शर्मा

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

खड़ीबोली गद्य की प्रारम्भिक रचनाएँ एवं रचनाकार - लल्लू लाल, सदल मिश्र, मुंशी सदासुखलाल, इंशा अल्ला खां, अंग्रेजों की भाषा नीति

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- खड़ी बोली गद्य के बारे में समझता है
- खड़ी बोली गद्य की रचनाकारों से अवगत होता है
- अंग्रेज़ों की भाषा नीति के बारे में समझता है

Background / पृष्ठभूमि

खड़ी बोली गद्य की सबसे प्राचीन रचना अकबर के राजदरबारी कवि गंग द्वारा लिखित 'चन्द छंद बरनन की महिमा' है, जिसमें ब्रजभाषा और खड़ी बोली के मिश्रित रूप के दर्शन होते हैं। खड़ी बोली का परिष्कृत रूप सर्वप्रथम रामप्रसाद निरंजनी द्वारा रचित 'भाषा योग वशिष्ठ' में मिलता है। इस युग में प. दौलतराम ने 'पद्म पुराण' का खड़ी बोली में अनुवाद किया, परन्तु उसपर ब्रज भाषा का प्रभाव है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में खड़ी बोली गद्य के विकास में ईसाई धर्म प्रचारकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने खड़ीबोली में बाइबिल का अनुवाद कर भारत के अनेक स्थानों पर वितरित किया। इस प्रकार ईसाई धर्म का प्रचार के साथ साथ हिन्दी का भी प्रचार होता रहा।

Keywords / मुख्य बिन्दु

'सितारे हिन्द, शिक्षा का प्रचार, चुलबुली भाषा, 'सत्यामृत प्रवाह', 'आत्म चिकित्सा'

Discussion / चर्चा

- खड़ी बोली गद्य के आरम्भिक रचनाकार

खड़ी बोली गद्य के आरम्भिक रचनाकारों में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर दो रचनाकारों- सदासुख लाल 'नियाज' ('सुखसागर') व इंशा अल्ला ख़ाँ ('रानी केतकी की कहानी') तथा फ़ोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता के दो भाषा मुंशियों- लल्लू लालजी (प्रेम सागर) व सदल मिश्र (नासिकेतोपाख्यान) के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु पूर्व युग में मुख्य संघर्ष हिन्दी की स्वीकृति और प्रतिष्ठा को लेकर था। इस युग के दो प्रसिद्ध लेखकों- राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' व राजा लक्ष्मण सिंह ने हिन्दी के स्वरूप निर्धारण के सवाल पर दो सीमान्तों का अनुगमन किया। इन दोनों के बीच सर्वमान्य हिन्दी गद्य की प्रतिष्ठा कर गद्य साहित्य की विविध विधाओं का ऐतिहासिक कार्य भारतेन्दु युग में हुआ।

खड़ी बोली और हिन्दी साहित्य के सौभाग्य से 1903 ई. में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन का भार सम्भाला। वे सरल और शुद्ध भाषा के प्रयोग के हिमायती थे। वे लेखकों की वर्तनी अथवा त्रुटियों का संशोधन स्वयं करते चलते थे। उन्होंने

हिन्दी के परिष्कार का बीड़ा उठाया और उसे बख़ूबी अंजाम दिया। गद्य तो भारतेन्दु युग से ही सफलतापूर्वक खड़ी बोली में लिखा जा रहा था, अब पद्य की व्यावहारिक भाषा भी एकमात्र खड़ी बोली प्रतिष्ठित होनी लगी। द्विवेदी युग में साहित्य रचना की विविध विधाएँ विकसित हुई। महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्याम सुन्दर दास, पद्म सिंह शर्मा, माधव प्रसाद मिश्र, पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि के अवदान विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

▶ द्विवेदी युग के प्रमुख साहित्यकार

साहित्यिक खड़ी बोली के विकास में छायावाद युग का योगदान काफ़ी महत्वपूर्ण है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा और राम कुमार आदि ने महती योगदान किया। इनकी रचनाओं को देखते हुए यह कोई नहीं कह सकता कि खड़ी बोली सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने में ब्रजभाषा से कम समर्थ है। हिन्दी में अनेक भाषायी गुणों का समावेश हुआ। अभिव्यजंना की विविधता, बिंबों की लाक्षणिकता, रसात्मक लालित्य छायावाद युग की भाषा की अन्यतम विशेषताएँ हैं। हिन्दी काव्य में छायावाद युग के बाद प्रगतिवाद युग, प्रयोगवाद युग आदि आए। इस दौर में खड़ी बोली का काव्य भाषा के रूप में उत्तरोत्तर विकास होता गया।

▶ खड़ी बोली के विकास में छायावाद युग का योगदान

1.2.1 खड़ीबोली गद्य की प्रारम्भिक रचनाएँ एवं रचनाकार

खड़ी बोली हिन्दी में रचना करने वाले प्रथम कवि अमीर खुसरो को माना जाता है। खड़ी बोली पर आधारित भाषा हिन्दी को 1947 में स्वतंत्रता के बाद भारत की राष्ट्रीय भाषा के रूप में नामित किया गया था। अमीर खुसरो के लेखन में, खडी बोली के शुरुआती उदाहरण मिलते हैं। रीतिकाल के अन्तिम चरण में काव्य में तो ब्रजभाषा का प्रयोग होता था, किन्तु यह धीरे धीरे कम होता जा रहा था। उसका स्थान मिश्रित खड़ी बोली लेती जा रही थी, जिसमें ब्रज और अवधी का मिश्रण था। गद्य भाषा को खड़ी बोली रूप देने वाले प्रारम्भिक चार लेखक माने जाते हैं। इन्होंने अपनी रचना में ठेठ हिन्दी का प्रयोग किया है। खड़ी बोली गद्य के प्रारंभिक उन्नायकों के नाम निम्नलिखित हैं।

▶ गद्य भाषा को खड़ी बोली रूप देने वाले लेखक

1.2.2 लल्लू लाल

लल्लू लाल (1763 - 1835) हिन्दी गद्य के चार प्रमुख स्तम्भों- (इंशा अल्ला खाँ, सदल मिश्र, मुंशी सदासुखलाल, लल्लू लाल) में से एक हैं। इनका लिखा हुआ ग्रंथ 'प्रेमसागर' है। लल्लू लाल का जन्म सन् 1763 ई. में उत्तर प्रदेश के आगरा में हुआ। इनके पूर्वज गुजरात से आकर आगरा में बस गये थे। लल्लू लाल आजीविका के लिये अनेक शहरों में घूमते हुए अन्त में कलकत्ता पहुँचे। ये बहुत अच्छे तैराक थे। एक बार तैरते समय इन्होंने एक अँग्रेज़ को डूबने से बचाया था। बाद में उस अँग्रेज ने इनकी बहुत सहायता की। उसने इन्हें फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दी पढ़ाने तथा हिन्दी ग्रंथों की रचना का कार्य दिलवाया। 'प्रेमसागर' इनके द्वारा लिखी गई पुस्तक है जो कि प्रारम्भिक हिन्दी खड़ीबोली का नमूना है। 1835 ई. में कलकत्ता में इनका निधन हो गया।

▶ गद्य के चार प्रमुख स्तम्भों में से एक

1.2.3 सदल मिश्र

सदल मिश्र (जन्म 1767-68 ई तथा मृत्यु 1847-48) फोर्ट विलियम कॉलेज से संबद्ध 18 वीं सदी के आरंभिक दौर के चार प्रमुख गद्यकारों में से एक हैं। गिलक्राइस्ट के आग्रह पर इन्होंने नासिकेतोपाख्यान नामक पुस्तक लिखी। इनकी अन्य रचनाएँ हैं- रामचरित(आध्यात्म रामायण) 1806 और हिन्दी पर्सियन शब्दकोश है। भाषा पर संस्कृत का गहरा प्रभाव है। इन्होंने खड़ीबोली हिन्दी के व्यावहारिक रूप का प्रयोग किया है। कम मात्रा में ही सही पर

▶ खड़ीबोली हिन्दी के व्यावहारिक रूप का प्रयोग

ब्रजभाषा और पूरवी बोली के शब्द इनकी भाषा में दिखाई देते हैं।

1.2.4 मुंशी सदासुखलाल

मुंशी सदासुखलाल (1746 - 1824) हिन्दी लेखक थे। खड़ी बोली के प्रारंभिक गद्यलेखकों में उनका ऐतिहासिक महत्व है। फारसी एवं उर्दू के लेखक और कवि होते हुए भी इन्होंने तत्कालीन शिष्ट लोगों के व्यवहार की भाषा को अपने गद्य-लेखन-कार्य के लिए अपनाया। इस भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग करके भाषा के जिस रूप को इन्होंने उपस्थित किया, उसमें खड़ी बोली के भावी साहित्यिक रूप का आभास मिलता है। अंग्रेजों के प्रभाव से मुक्त इन्होंने उस गद्य परंपरा का अनुसरण किया जो रामप्रसाद 'निरंजनी' तथा दौलतराम से चली आ रही थी। .

▶ फारसी एवं उर्दू के लेखक और कवि

1.2.5 इंशा अल्ला खाँ

उर्दू के मशहूर शायर इंशा अल्ला खाँ का जन्म दिल्ली के मुर्शिदाबाद में 1756 ई. में हुआ था, इनके पिता मीर माशा अल्ला खाँ कश्मीर के रहने वाले थे, और वे दिल्ली में आकर बस गये थे, इनके पिता जिस समय दिल्ली आये थे उस दौरान दिल्ली सल्तनत पर शाह आलम का शासन था, और यहीं शाह आलम के संरक्षण में उसके दरबारी कवि के रूप में इंशा अल्ला खां रहने लगे, इंशा अल्ला खां बाल्यकाल से बड़े चतुर और विद्वान थे, अपनी काव्य प्रस्तुति और शायराना अंदाज से ये न जाने कितने शायरों को दरबार में लज्जित कर चुकें थे, इनकी इस हरकत से लगभग प्रत्येक साहित्यकार- शायर इनसे रुष्ट रहा करते थे !

▶ उर्दू के मशहूर शायर

1.2.6 अंग्रेजों की भाषा नीति

अंगेजों के भारत आगमन से पूर्व यहाँ की राजभाषा फारसी थी। लार्ड मैकाले के प्रयत्नों से सन् 1835 में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार हुआ। सन् 1836 तक अदालतों की भाषा फारसी थी लेकिन अंग्रेजों ने अपनी भाषाई नीति के अन्तर्गत सन् 1836 में सयुक्त प्रान्त के सदर बोर्ड अदालतों की भाषा 'हिन्दी' कर दी, लेकिन इसके पश्चात अंग्रेजों की ओर से हिन्दी के विकास के लिए कुछ और नहीं किया गया। ऐसे समय में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मणसिंह के द्वारा हिन्दी के विकास के लिए जो कार्य किये गये वे उल्लेखनीय हैं।

▶ हिन्दी के विकास के लिए

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द- (जन्म सं. 1823- मृत्यु सं. 1895) आप हिन्दी शिक्षा विभाग में निरीक्षक के पद पर थे। ये हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे इसलिए ये इसे पाठ्यक्रम की भाषा बनाना चाहते थे। चूँकि उस समय साहित्य के पाठ्यक्रम के लिए कोई पुस्तकें नहीं थी इसलिए इन्होंने स्वयं कोर्स की पुस्तकें लिखीं और इन्हें हिन्दी पाठ्यक्रमों में स्थान दिलाया। इन्हीं के प्रयत्नों से शिक्षा जगत ने हिन्दी को कोर्स की भाषा बनाया। इसके बाद उन्होंने बनारस से 'बनारस' अखबार निकाला। इसीके द्वारा राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने हिन्दी का प्रचार प्रसार किया। ये विशुद्ध हिन्दी में लेख लिखते थे। राजा जी ने स्वयं हिन्दी कोर्स लिए पुस्तकें ही नहीं लिखीं अपितु पंडित श्री लाल और पंडित बंशीधर को भी इस कार्य के लिए प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'वीरसिंह का वृतान्त', 'आलसियों का कोड़ा' जैसी रचनाओं का सृजन भी किया। राजा जी उर्दू के पक्षपाती भी थे। सन् 1864 में इन्होंने 'इतिहास तिमिर नाशक' ग्रन्थ लिखा।

▶ हिन्दी का प्रचार प्रसार

राजा लक्ष्मण सिंह (जन्म : 9 अक्तूबर सन् 1826 ई., मृत्यु : 14 जुलाई (1896) हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न-भिन्न भाषाएँ स्वीकारते थे। फिर भी ये हिन्दी उर्दू शब्दावली प्रधान

गद्य भाषा का प्रयोग करते थे। राजा लक्ष्मणसिंह ने कालिदास के 'मेघदूतम', 'अभिज्ञान शांकुन्तलम्' और 'रघुवंश' का हिन्दी अनुवाद किया। इन्होंने हिन्दी के गद्य विकास के लिए सन् 1861 में 'प्रजा हितैषी' पत्र भी सम्पादित और प्रकाशित किया। इनकी गद्य भाषा उत्कृष्ट कोटि की थी। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मण सिंह के अलावा कई अनेक प्रतिभाशाली लेखकों ने हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जिन गद्य लेखकों ने अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद किए तथा कई पाठ्य पुस्तकें लिखी उनमें, श्री मथुरा प्रसाद मिश्र, श्री. ब्रजवासी दास, श्री. रामप्रसाद त्रिपाठी, श्री. शिवशंकर, श्री. विहारी लाल चौबे, श्री. काशीनाथ खत्री, श्री. रामप्रसाद दुबे आदि प्रमुख हैं। इसी अवधि में स्वामी दयान्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसे ग्रन्थ की हिन्दी गद्य में रचना करके हिन्दू धर्म की कुरीतियों को समाप्त किया। हिन्दी गद्य के विकास में जिन और लेखकों का नाम बड़े आदर से लिया जाता है उनमें से बाबू नवीन चन्द्र राय तथा श्री श्रद्धाराम फुल्लौरी हैं। बाबू नवीन चन्द्र राय ने सन् 1863 और सन् 1880 के मध्य हिन्दी में विभिन्न विषयों की पुस्तकें लिखीं और लिखवाई, साथ ही ब्रह्म समाज के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करने के लिए सन् 1867 में, ज्ञानप्रदायिनी, पत्रिका का प्रकाशन किया। इसी तरह श्री श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'सत्यामृत प्रवाह', 'आत्म चिकित्सा', तत्वदीपक, 'धर्मरक्षा', 'उपदेश संग्रह' पुस्तकें लिखकर हिन्दी गद्य के विकास को एक नयी दिशा प्रदान की।

▶ हिन्दी गद्य के विकास में प्रतिभाशाली लेखकों के महत्वपूर्ण भूमिका

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

खड़ी बोली हिन्दी के प्रयोग हमें प्राचीन हिन्दी साहित्य में मिल जाते हैं, पर यह निर्विवाद सच है कि खड़ी बोली ने आधुनिक काल में ही स्वस्थ स्वरूप ग्रहण किया है। खड़ी बोली हिन्दी को अपना वर्तमान साहित्यिक रूप ग्रहण करने में कई सौ साल का समय लगा है। हम जानते हैं कि खड़ी बोली की विकास परम्परा ब्रजभाषा और अवधी आदि साहित्यिक भाषाओं से तो जुडी ही है, अन्य भारतीय भाषाओं से भी जुड़ा है। इस सन्दर्भ में उर्दू और दक्खिनी का नाम खासतौर से लिया जा सकता है। खड़ी बोली के स्वरूप ग्रहण में फोर्ट विलियम कॉलेज और भारतेन्दु मण्डल के रचनाकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद के प्रारम्भ तक खड़ी बोली गद्य और पद्य का पूर्ण विकास हो चुका था। आज खड़ी बोली हिन्दी में पर्याप्त साहित्य सर्जन तो हो ही रहा है, यह मीडिया के लिए भी उत्कृष्ट भाषा बनी हुई है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. खड़ी बोली गद्य के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. खड़ीबोली गद्य की प्रारम्भिक रचनाएँ एवं रचनाकार कौन है? व्यक्त कीजिए।
3. अंग्रेजों की भाषा नीति पर टिप्पणी लिखिए।
4. मुंशी सदासुखलाल का परिचय दीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास - रामस्वरूप चतर्वेदी
2. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार - द्वारिका प्रसाद सक्सेना
3. हिन्दी निबंध का विकास - डॉ. ओमकांत शर्मा
4. निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी - सं. गणपतिचन्द्र गुप्त

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. गद्य की विविध विधाएँ - मजिदा आजाद
2. हिन्दी गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ - डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया
4. हिन्दी निबंधकार - जयंत नलिन
5. प्रेमचन्द :मूल्यांकन - इन्द्रनाथ मदान
6. हिन्दी में निबंध और निबंधकार - डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त
7. हिन्दी रेखाचित्र - एच एल शर्मा
8. प्रेमचन्द और उनका युग - रामविलास शर्मा

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 3

1857 की क्रांति और सांस्कृतिक पुनर्जागरण, पत्रकारिता का आरंभ और 19 वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता, भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- 1857 की क्रांति और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के बारे में अवगत होता है
- पत्रकारिता के आरंभ को समझता है
- 19 वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता को समझता है
- भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य के बारे में अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

खड़ी बोली गद्य के विकास में प्रेस और पत्रकारिता, ईसाई मिशनरी, फोर्ट विलियम कॉलेज तथा नवजागरण काल में स्थापित सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं का विशेष योगदान है। 19 वीं शताब्दी तक खड़ी बोली गद्य पर ब्रज भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उसका रूप मिश्रित है। खड़ीबोली गद्य का प्रारम्भिक रूप 'सुरासुर निर्णय' (सदासुखलाल), 'भाषा योग वशिष्ठ' (रामप्रसाद निरंजनी), 'नासिकेतोपाख्यान' (सदल मिश्र), 'प्रेम सागर' (लल्लू लाल), 'रानी केतकी की कहानी' (इंशा अल्ला खाँ) आदि रचनाओं में मिलता है। इन रचनाओं पर ब्रजभाषा के साथ ही फारसी का भी पर्याप्त प्रभाव है। अंग्रेज़ी राज्य में खड़ी बोली धीरे-धीरे शिक्षा, प्रशासन और अदालत की भाषा बनी। स्वतंत्रता आन्दोलन में खड़ी बोली को राष्ट्रीय मान्यता मिली। इस तरह भारतेन्दु के समय से ही खड़ी बोली गद्य 'नए चाल में' ढलने लगा था।

Keywords / मुख्य बिन्दु

राज्य क्रान्ति, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, सम्प्रेषण सामग्री

Discussion / चर्चा

सन् 1857 की क्रांति को लेकर इतिहासकारों में मतभेद हैं। कुछ इतिहासकारों ने इसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा दी है, तो कुछ ने इसे सिपाही विद्रोह कहा। किंतु वास्तव में यह भारतीय जनता की ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त कर स्वाधीनता प्राप्त करने की सुनियोजित जनक्रांति थी, जिसमें दिल्ली के अंतिम मुगल शासक बहादुरशाह ज़फर, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुंवर सिंह अमर सिंह, तान्त्या टोपे आदि ने अपने प्राणों की आहुति दी। हिन्दी भाषी विशाल क्षेत्र में ही यह सबसे व्यापक स्वतंत्रता संग्राम सबसे पहले प्रारंभ हुआ।

1.3.1 1857 की राज्यक्रान्ति एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण

1849 ई. में सिक्खों को पराजित करने के बाद सम्पूर्ण देश पर अंग्रेजों का शासन हो गया था। 1856 ई. में अवध भी अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। इससे अंग्रेज़ मदोन्मत्त

हो गए और देशी राजाओं द्वारा एकजुट होकर 1857 ई. में व्यापक स्तर पर विद्रोह करते हुए ध्वस्तप्रायः मुगल साम्राज्य को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया गया। देशी राज्यों का विलय और अवध प्रदेश का अंग्रेजी राज्य में समाहार लॉर्ड डलहौजी की नीति की ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ थीं जिनसे जनता की भावना पर कठोर प्रहार हुआ। जनता, सिपाहियों एवं रजवाड़ों में जो असन्तोष व्याप्त था वही 1857 की राज्य क्रान्ति (विद्रोह) के रूप में सामने आया। इस राज्य क्रान्ति का पूरे देश पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इसने देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों को झकझोर दिया। अंग्रेजों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी समाप्त कर दी और भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया। अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक एवं प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया तो दूसरी ओर भारतीय जनमानस में भी नवीन चेतना जाग्रत हुई जिसने भारत को सांस्कृतिक रूप से पुनः जाग्रत कर दिया। क्रान्ति की लपटों ने साहित्य को भी प्रभावित किया और साहित्यकारों में स्वातन्त्र्य चेतना, राष्ट्रीय चेतना को काव्य में व्यक्त करने की बलवती इच्छा साफ दिखाई देने लगी। साहित्यकारों द्वारा व्यक्त इन भावनाओं ने जनता में राष्ट्रीय चेतना उद्‌बुद्ध करने में पर्याप्त योगदान दिया।

▶ भारतीय जनमानस में नवीन चेतना

ईसाई धर्म प्रचारक भारतीय धर्म एवं समाज की मान्यताओं की खिल्ली उड़ा रहे थे। वे भारतीय धर्म तथा समाज में व्याप्त कुरीतियों का मज़ाक उड़ाकर हमें नीचा दिखाने का प्रयास कर रहे थे यही नहीं अपितु आर्थिक लालच देकर भोले-भाले भारतीयों को ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए लालायित भी कर रहे थे अतः ऐसे माहौल में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आवश्यकता अनुभव की गई। राजा राममोहनराय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, आदि महापुरुषों ने सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूप से भारतीय जनता को जाग्रत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। देश के प्रबुद्धजनों, चिन्तकों ने जनता को नई प्रेरणा दी। विधवा विवाह को उचित बताया, बाल विवाह को अनुचित बताया, सती प्रथा पर रोक लगाई गई, देश की उन्नति के लिए अछूतोद्धार का प्रयास किया गया। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज, थियॉसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना की गई।

▶ सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आवश्यकता

1857 की राज्यक्रान्ति को भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का नाम दिया गया है। मेरठ में मंगल पाण्डे के नेतृत्व में विद्रोह का बिगुल फूंक दिया गया जिसने अंग्रेजों को यह बता दिया कि अब भारतीयों को बहुत दिनों तक दबाकर नहीं रखा जा सकता। कविता में स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीय चेतना, नए विषयों की ओर उन्मुखता दिखाई देने लगी। कविता रीतिकालीन परिवेश से मुक्त होकर नवयुग का द्वार खोलने लगी। निश्चय ही 1857 की राज्यक्रान्ति ने सांस्कृतिक पुनर्जागरण का बिगुल साहित्य में भी फूंक दिया, ऐसा कहना असंगत न होगा।

▶ भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम

1.3.2 पत्रकारिता का आरंभ और 19 वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता

मनुष्य भाषा के विकास से पहले संकेतों के माध्यम से अपना कार्य करने में सफल रहा होगा। उसे भाषा के विकास के पश्चात समाचारों और मनोभावों के लिए सहज ही सुविधा प्राप्त हो गई होगी। प्राचीन युग में डुगडुगी पीटकर अथवा शिलालेखों आदि के माध्यम से राजकीय घोषणाएँ हुआ करती थीं। वस्तुतः मौर्य काल में समाचारों के संकलन और वितरण की समुचित व्यवस्था का उल्लेख प्राप्त होता है। रोम साम्राज्य में शिक्षित अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा 'संवाद-पत्र' लिखे जाते थे, जिनमें आर्थिक और राजनीतिक समाचारों का उल्लेख मिलता है। उस समय कबीलों की परम्परा बैठकों, धर्म-सम्मेलनों, मेले आदि विचारों और

▶ भाषा को लिपिबद्ध करने का आविष्कार

समाचारों के विनिमय के सशक्त साधन बने। मानव जाति के लिए भाषा को लिपिबद्ध करने का आविष्कार निश्चय ही क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त मुद्रण का आविष्कार भी उतना ही क्रांतिकारी कहा जा सकता है क्योंकि जिसके कारण समाचार-पत्र आधुनिक युग की अभूतपूर्व एवं महत्वपूर्ण देन बनकर हमारे समक्ष आए।

▶ प्रेस और सरकार के बीच संघर्ष की परम्परा

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत आगमन काल से पूर्व ही प्रेस भारत में आ चुका था और पुर्तगाली अखबार तथा अन्य समाचार-विचार सम्प्रेषण सामग्री भी प्रकाशित होने लगे थे। परन्तु वह सब समाचार सामग्री ईसाई धर्म को फैलाने के लिये थी, उसका कोई जन-कल्याणकारी महत्व नहीं था। अँग्रेजों द्वारा भी पत्रकारिता का उपयोग ईसाई धर्म प्रसार के लिये किया गया। ईसाई पादरियों का मुख्य उद्देश्य हिन्दू धर्म की बुराइयों को प्रकाशित करना तथा जातिगत विद्वेष फैलाकर निम्न जाति के लोगों को ईसाई बनाना था। अतः उस काल में पत्रकारिता का स्वरूप बड़ा संकीर्ण था, जिसे पत्रकारिता नहीं कहा जा सकता। इस रूप को अँग्रेज पत्रकारों ने बदला भी और पत्रकारिता ने व्यापक दृष्टिकोण अपनाने के लिये कदम बढ़ाये। जिन अँग्रेज पत्रकारों ने साहस के साथ पत्रकारिता के रूप में परिवर्तन किया, उन्हें इसका दण्ड भी भोगना पड़ा, क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की पत्रकारिता के प्रति स्वतन्त्रता विरोधी नीति थी। उसके अधिकारी वर्ग को यह आशंका रहती थी कि अँग्रेज समाचार-पत्रों द्वारा भ्रष्टाचार, लूट, पक्षपात आदि निंदनीय भ्रष्ट कार्यों की इंग्लैण्ड तक सूचना पहुँच जायेगी। अतः प्रेस और सरकार के बीच संघर्ष की परम्परा शुरू से ही पड़ गई थी।

▶ भारतीय हिन्दी पत्रकारिता के रूप की रचना

भारत में विलियम बोल्ट नामक व्यापारी ने सन् 1776 ई. में समाचार-पत्र प्रकाशन का आरंभ कलकत्ता के सार्वजनिक स्थलों पर नोटिस लगाकर किया। उसे कम्पनी द्वारा तुरंत यूरोप वापस भेज दिया गया। 29 फरवरी, 1780 ई. में जेम्स अगस्त हिकी ने भारत की धरती पर पहला अंग्रेजी समाचार-पत्र 'बंगाल गजट ऑफ कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' या 'हिके गजट' प्रकाशित किया। यह दो पृष्ठीय साप्ताहिक ही भारत में निर्भीकता, दुःसाहसिकता स्वाधीन चेतना भरी पत्रकारिता की नींव रखने वाला साप्ताहिक था। हिक्के को अपनी निर्भीकता का मूल्य चुकाना पड़ा। उसे पहले दण्ड दिया गया और बाद में कारावास में डाला गया, फिर शीघ्र ही भारत से विदा कर दिया गया। अर्थात् भारत में पत्रकारिता का निर्भीक स्वरूप भी अंग्रेजी पत्रकारिता द्वारा ही प्रकट हुआ। वास्तविकता यह है कि इंग्लैण्ड में वैचारिक स्वतन्त्रता का युग उस समय तक शुरू हो चुका था, लेकिन भारत तो इंग्लैण्ड नहीं था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को रोकने वाला कोई नहीं था। उस समय उसके छोटे से छोटे कर्मचारी भी भारतीयों का मनमाना उत्पीड़न करते थे और उनमें आपसी नैतिक अनाचार भी कम नहीं था। हिक्के ने कम्पनी के कर्मचारियों की इसी दुर्बल नस को दबाया था। हिक्के के साथ जो भी हुआ, वह भारत में पत्रकारिता के जन्मकाल में उसको लगा एक भारी आघात था, परन्तु भारतीय पत्रकारिता के लिये इसने मार्गदर्शन का काम किया था। उसी मार्गदर्शन ने बाद में भारतीय हिन्दी पत्रकारिता के रूप की रचना की।

नवम्बर, 1931 के पहले तक लोगों की यह धारणा थी कि हिन्दी का पहला पत्र 'बनारस अखबार' है जिसका प्रकाशन राजा शिवप्रसाद की सहायता से सन् 1845 ई. में बनारस से हुआ था। बंगला के प्राचीन पत्रों के अन्वेषी और उद्धारक ब्रजेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय को हिन्दी के भी कुछ प्राचीन पत्र मिले जिनसे हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ गया। नवम्बर, 1931 के 'विशाल भारत' में हिन्दी समाचार-पत्रों की प्रारम्भिक कथा लिखकर

श्री बन्दोपाध्याय ने इतिहासकारों की पुरानी धारणा को निराश किया और 'उदन्तमार्तण्ड' की सूचना देकर हिन्दी का अशेष उपकार किया। हिन्दी के आरम्भिक समाचार पत्रों के बारे में और भी कई सूचनाएँ उन्होंने दीं और 'विशाल भारत' मार्च, 1931 में 'हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र' शीर्षक लेख लिखकर 'उदन्तमार्तण्ड' की विस्तृत चर्चा की, उसके अनेक महत्वपूर्ण स्थल उद्धृत किये और उसके उदय-अस्त की पूरी कहानी लिखी। अब तक का अनुसंधान और इतिहासकार इसे ही हिन्दी का प्रथम पत्र मानते हैं।

▶ हिन्दी का पहला पत्र

सन् 1974 के बाद भारत में पत्रकारिता का दूसरा चरण आरम्भ होता है। 1975 में आपातकाल की घोषणा हुई। अनेक राजनेताओं को बंदी बनाया गया। यह उनकी आजादी पर कुठाराघात था, उनकी स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित करना था। इस संक्रमणकालीन स्थिति में शीघ्र ही सम्पूर्ण देश का राजनीतिक और पत्र जगत सम्बन्धी परिदृश्य बदल गया। अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने आपातकाल की निन्दा की और संविधान द्वारा प्रदत्त अभिव्यक्ति के मूलाधिकार पर शाही हमला कहा। आपातकाल के कुछ अच्छे पक्ष भी थे। इसलिए कुछ सूची पत्रकारों ने उसके समर्थन में भी अपने विचार व्यक्त किये। धीरे-धीरे राजनीति का पट बदला और आपातकाल समाप्त हुआ, परन्तु पत्रकारिता के क्षेत्र में जो एक अप्रत्याशित विघटनमूलक प्रवृत्ति विकसित हो गयी, उसे नहीं रोका जा सका। इस काल की पत्रकारिता प्रतिक्रियावादिनी हो चली और ओछी राजनीति का अनुगमन करने लगी।

▶ पत्रकारिता के दूसरा चरण का आरम्भ

वैज्ञानिक प्रगति और नई-नई तकनीक के विकसित होने से भारतीय पत्रकारिता पर विश्व मीडिया का गहरा असर पड़ा। हमारे देश की पत्रकारिता अपने सनातन मूल्यों और आदर्शों से भटक गयी। यह जीवन के प्रति क्षणवादी और भोगपरक दृष्टि से पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को वरीयता देने लगी। साहित्य के क्षेत्र में भी गिरावट आयी। इसकी शाश्वत लोकहित भावना का क्षारण हुआ और सामयिक लाभ-हानि पर आधारित भोगवादी वृत्ति की पक्षधरता बढ़ी। मानव के अनैतिक कृत्यों में हिंसा, स्वार्थगत वृत्तियों, काम-क्रोध, मद, मोह, लोभ का विस्तार हुआ। फिल्म जगत ने हिन्दी पत्रकारिता का सबसे अधिक नुकसान किया। जिस पवित्र उद्देश्य तथा जीवन के उच्चतर मूल्यों और आदर्शों को लेकर भारतीय पत्रकारिता का समारंभ हुआ था वह विलुप्त हो गया। नई-नई दुष्प्रवृत्तियों का जाल सुरसा के मुँह की तरह फैलता गया जिसे भारतीय पत्रकारिता ने खूब उछाला तथा इसे अपनी बौद्धिक कुशलता की सफलता माना। दूरदर्शन संस्कृति ने भी जिस प्रकार भारतीय सामाजिक मूल्यों पर प्रहार किया उसका दुष्प्रभाव भी भारतीय पत्रकारिता पर पड़ा।

▶ भारतीय पत्रकारिता का समारंभ

1.3.3 भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885 ई.) आधुनिक हिन्दी गद्य के जनक माने जाते हैं। इस समय तक गद्य इस योग्य हो चुका था कि वह जनता की चित्तवृत्तियों को नये रूप-रंगों में रचनात्मक स्तर पर रूपान्तरित कर सके। हिन्दी निबन्धों को ठेठ हिन्दी का ठाठ कहा जा सकता है। भारतेन्दु के व्यक्तित्व में अक्खड़पन और मस्ती भरी हुई थी। वे इतिहास प्रसिद्ध अमीचन्द के वंशज और काशी के सुप्रसिद्ध रईस गोपालचन्द्र के पुत्र थे। वे 'जो घर जारै आपना चलै हमारे साथ' के अनुयायी थे। अन्तर्विरोध उनमें हैं- एक तरह से वे अन्तर्विरोध के पुंज हैं- ये विशिष्ट भी थे और सामान्य भी, राजभक्त भी थे, देशभक्त भी, सनातनी वैष्णव भी, आडम्बर विरोधी भी, कर्मकाण्ड समर्थक भी, ईश्वरवादी और निरीश्वरवादी भी, परम्परावादी भी थे, आधुनिक भी।

▶ आधुनिक हिन्दी गद्य के जनक

▶ हिन्दी-गद्य-साहित्य के विकासक्रम

हिन्दी-गद्य-साहित्य के विकासक्रम में भारतेन्दु युग के गद्य-साहित्य का महत्व और मूल्य असाधारण है। इसी युग में हिन्दी-प्रदेश में आधुनिक जीवनचेतना का उन्मेष हुआ। मध्यमवर्गीय सामाजिक परिवेश में साहित्य रचना का जो रूप उभरा, उनमें कहीं-कहीं सामन्तीय संस्कारों का अवशेष लक्षित अवश्य होता है। किन्तु वह टूटने के क्रम में है। रचनागत प्रतिपाद्य की दृष्टि से यह बहुत बड़ा परिवर्तन था। यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश शासन व्यवस्था की दृढ़ता के बावजूद उसके प्रति विरोध का भाव प्रत्येक साहित्यकार के मन में विद्यमान है। देश और समाज के हित की भावना से भी प्रभावित है। साहित्य सर्जन की दृष्टि से हिन्दी गद्य की प्रायः सभी विधाओं का सूत्रपात इसी युग में हुआ, विशेष रूप से निबन्ध और नाटक-इन दो विधाओं में लेखकों को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। उपन्यासों में सामाजिक जीवन के स्पन्दन का स्वर भी इसी युग में सुनाई पड़ने लगा। सब मिलाकर भारतेन्दु काल का साहित्य व्यापक जागरण का सन्देश लेकर आया और भाषा के स्वरूप विकास में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस युग में न केवल हिन्दी गद्य का स्वरूप स्थिर हुआ, बल्कि उसके शुद्ध साहित्योपयोगी और व्यवहारोपयोगी रूपों की पूर्ण प्रतिष्ठा भी हुई। इस प्रकार भाषा और साहित्य दोनों जीवन की गति के साथ जुड़ गये। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और प्रसार की गति भी तीव्र हुई, जिससे जीवन के विविध क्षेत्रों में हिन्दी के प्रयोग की परम्परा आगे बढ़ी। किसी भी भाषा के इतिहास में इतनी अल्प अवधि में होने वाली यह प्रगति गर्व की बात मानी जाएगी।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही हिन्दी गद्य को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने बिना यह विचार किये हुए कि यह शब्द उर्दू का है या संस्कृत का, अपनी भाषा में इस आधार पर प्रयोग किया कि वह साधारण जनता के द्वारा व्यवहृत है। कालान्तर में पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने व्याकरणिक अशुद्धियों को दूर करते हुए हिन्दी गद्य को परिमार्जित और परिष्कृत करने का प्रयास किया। विराम चिन्हों के सम्यक प्रयोग से भी उन्होंने लोगों को परिचित कराया और इस प्रकार हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं अन्य अनेक विद्वानों ने हिन्दी गद्य को वर्तमान अवस्था तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान किया। इस प्रकार हिन्दी गद्य की यह धारा अनेक सोपानों से गुज़रती हुई आज तक अपने विभिन्न रूपों में अविरल बह रही है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. 1857 की राज्यक्रान्ति एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. भारत में हिन्दी पत्रकारिता का उदय कब और कैसे हुआ?
3. 19 वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता के बारे में टिप्पणी लिखिए।
4. भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास - रामस्वरूप चतर्वेदी
2. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार - द्वारिका प्रसाद सक्सेना
3. हिन्दी निबंध के विकास - डॉ. ओमकांत शर्मा
4. निबंधकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - सं. गणपतिचन्द्र गुप्त

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. गद्य की विविध विधाएँ - मजिदा आजाद
2. हिन्दी गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ - डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया
4. हिन्दी निबंधकार - जयंत नलिन
5. प्रेमचन्द : मूल्यांकन - इन्द्रनाथ मदान
6. हिन्दी में निबंध और निबंधकार - डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त
7. हिन्दी रेखाचित्र - एच एल शर्मा
8. प्रेमचन्द और उनका युग - रामविलास शर्मा

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 4

महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, हिन्दी नवजागरण और सरस्वती, हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का परिचय

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग का परिचय प्राप्त करता है
- हिन्दी नवजागरण के बारे में अवगत होता है
- सरस्वती पत्रिका के बारे में समझता है
- हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का परिचय प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी साहित्य के सर्वांगीण विकास के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी नवजागरण का जो बीजारोपण किया था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से उसे विशाल वटवृक्ष के रूप में साकार किया। आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य के कलात्मक विकास की चिन्ता न करके उसके अभावों की चिन्ता की। 'सरस्वती' के माध्यम से उन्होंने नवीन साहित्यिक आदर्शों की प्रतिष्ठा की। हिन्दी साहित्य के विविध रूपों और शैलियों का विकास हुआ। गद्य-पद्य में खड़ी बोली की पूर्ण प्रतिष्ठा का श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को जाता है। इसी विशिष्ट अवदान के लिए उन्हें 'युग विधायक' और 'युग प्रवर्तक' कहा जाता है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के दो दशकों का काल 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

गरिमामण्डित व्यक्तित्व, छन्द योजना, नवजागरण, वर्णवृत्तों का प्रयोग

Discussion / चर्चा

महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास का आदिकाल है। इसका पहला चरण भारतेन्दु युग है एवं दूसरा चरण द्विवेदी युग। महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्यकार थे जो बहुभाषाविद होने के साथ ही साहित्य के इतर विषयों में भी समान रुचि रखते थे। उन्होंने सरस्वती पत्रिका का लगातार अठारह वर्षों तक संपादन कर हिन्दी पत्रकारिता में एक महान कीर्तिमान स्थापित किया था। वे हिन्दी के पहले व्यवस्थित समालोचक थे, जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकें लिखी थीं। वे खडी बोली हिन्दी की कविता के प्रारंभिक और महत्वपूर्ण कवि थे। आधुनिक हिन्दी कहानी उन्हीं के प्रयत्नों से एक साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकी थी। वे भाषाशास्त्री थे, अनुवादक थे, इतिहासज्ञ थे, अर्थशास्त्री थे तथा विज्ञान में भी गहरी रुचि रखने वाले थे। अंततः वे युगांतर लाने वाले साहित्यकार थे या दूसरे शब्दों में कहे, युगनिर्माता थे। वे अपने चिन्तन और लेखन के द्वारा हिन्दी प्रदेश में नव-जागरण पैदा करने वाले साहित्यकार थे।

- हिन्दी के पहले व्यवस्थित समालोचक

1.4.1 महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग

द्विवेदी युग का नामकरण आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के गरिमामण्डित व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर किया गया। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक के रूप में हिन्दी जगत की महान सेवा की और हिन्दी साहित्य की दिशा एवं दशा को बदलने में अभूतपूर्व योगदान किया। महावीरप्रसाद द्विवेदी सन् 1903 में सरस्वती पत्रिका के सम्पादक बने। इससे पहले वे रेल विभाग में नौकरी करते थे। उन्होंने इस पत्रिका के माध्यम से कवियों को नायिका भेद जैसे विषय छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा दी, काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को त्यागकर खड़ी बोली का प्रयोग करने का सुझाव दिया जिससे गद्य और पद्य की भाषा एक हो सके। द्विवेदी जी ने 'कवि कर्तव्य' जैसे निबन्धों द्वारा कवियों को उनके कर्तव्य का बोध कराते हुए अनेक दिशा निर्देश दिए जिससे विषय-वस्तु, भाषा-शैली, छन्द योजना आदि अनेक दृष्टियों से काव्य में नवीनता का समावेश हुआ। द्विवेदी जी ने भाषा संस्कार, व्याकरण शुद्धि, विराम चिह्नों के प्रयोग द्वारा हिन्दी को परिनिष्ठित रूप प्रदान करने का प्रशंसनीय कार्य किया।

▶ हिन्दी साहित्य की दिशा एवं दशा को बदलने में अभूतपूर्व योगदान

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिन्दी साहित्य में योगदान एक सर्जक के रूप में उतना नहीं है जितना एक विचारक, दिशा निर्देशक, चिन्तक एवं नियामक के रूप में हैं। उनकी प्रेरणा से अनेक कवि सामने आए जो उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े। उनकी विचारधारा का पल्लवन करते हुए इन कवियों ने एक ओर तो नवीन काव्यधारा का श्रीगणेश करते हुए भारतेन्दुकालीन समस्या पूर्ति, रीति निरूपण से हिन्दी कविता को मुक्त किया तो दूसरी ओर खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। भाषा परिष्कार एवं संस्कार का जो कार्य द्विवेदी युग में हुआ वह सदैव स्मरणीय रहेगा।

▶ खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया

1.4.2 हिन्दी नवजागरण और सरस्वती

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल वस्तुतः जागरण का सन्देश लेकर आया। सन् 1857 ई. में हुए प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम ने नवजागरण का बिगुल बजा दिया और भारतीय जनमानस में देशभक्ति, स्वतन्त्रता, राष्ट्रोत्थान, स्वदेशाभिमान की भवनाएँ जाग्रत होने लगीं। भारतेन्दु युग में जहाँ इनका सूत्रपात हुआ, वहीं द्विवेदी युग में ये पल्लवित एवं विकसित हो गई। डॉ. राम विलास शर्मा ने इसीलिए हिन्दी नवजागरण को हिन्दू जाति का जागरण माना है। इस नवजागरण की लहर को जन-जन तक पहुँचाने में 'सरस्वती' पत्रिका का विशेष योगदान है। इसके अतिरिक्त 'प्रभा', 'मर्यादा' पत्रिका को भी यह श्रेय जाता है।

▶ नवजागरण की लहर को जन-जन तक पहुँचाने में विशेष योगदान

सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन सन् 1900 ई. से प्रारम्भ हुआ तथा सन् 1903 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका सम्पादन भार संभाला। द्विवेदी जी ने इस पत्रिका में ऐसे लेखों को प्रकाशित किया जिन्होंने नवजागरण की लहर को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में सरस्वती पत्रिका से उद्धरण देकर इस बात को पुष्ट किया है।

▶ सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन

1.4.3 हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का परिचय

हिन्दी-साहित्य में गद्य का प्रारंभ जितना सरल था, आज उसकी गति उतनी ही तीव्र और जटिल है। उसकी अभिव्यक्ति में इतना विस्तार हुआ है कि स्वतंत्र भारत की राजभाषा बनने की उसकी अर्हता सर्वाधिक सुनिश्चित है। हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास पद्य साहित्य के इतिहास से कम पुराना है। हिन्दी पद्य साहित्य की रचना की शुरुआत अयोध्या प्रसाद खत्री

के समय से प्रारंभ मानी जाती है। हिन्दी पद्य में कई विधाओं में कार्य हुआ है। सबसे ज्यादा रचना हिन्दी कथा में हुई है। इसमें लघुकथाएँ, लंबी कहानियाँ एवं उपन्यास शामिल हैं। गद्य की प्रकृति और उसके विकास को समझने का क्रम आधुनिक साहित्य की समग्र परम्परा को देखने-परखने की प्रक्रिया तो है ही, एक व्यापक स्तर पर वह समूची हिन्दी जाति की मानसिकता को समझने का यत्न भी है। आधुनिक काल में प्रजातांत्रिक आदर्शो के बल पर जीवन-ढाँचा बदलने लगा, तो शिक्षा, प्रशासन, उद्योग, विज्ञान आदि क्षेत्रें में गद्य की अनिवार्यता आई, जिसका कि साहित्य पर भी असर पड़ा।

▶ गद्य की प्रकृति और उसके विकास को समझने का क्रम

हिन्दी साहित्य की विधाओं के अन्तर्गत गद्य, पद्य, नाटक, कहानी, व्याकरण आदि रचना रूप आते हैं। गद्य साहित्य की विधाओं के अन्तर्गत जिन विभिन्न विधाओं का विकास हुआ है वे विधाएँ हैं- कहानी, नाटक, एकांकी, उपन्यास, जीवनी, निबन्ध, आत्मकथा, संस्मरण, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, समालोचना आदि।

1.4.3.1 कहानी

कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति मानव सभ्यता की भाँति प्राचीन है। मनुष्य ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए चाहे कोई भी माध्यम अपनाया हो उसकी पृष्ठभूमि पर कोई न कोई कहानी अवश्य रही है। सभ्यता का विकास, कहानी की कथन प्रणालियों का विकास रहा है। हिन्दी कहानी आधुनिक युग की देन है। इसकी विकास यात्रा का अध्ययन पाँच बिन्दुओं या चरणों के अंतर्गत किया जाता है- पहला चरण प्रेमचंद पूर्व युग (1900-1915 ई.), दूसरा चरण प्रसाद-प्रेमचंद युग (1915-1936 ई.), तीसरा चरण प्रेमचंदोत्तर युग (1936 से 1955 ई.), चौथा चरण नई कहानी (1956 से 1960 ई.) और पाँचवाँ चरण नई कहानी के परवर्ती आंदोलन (1960 ई. से अब तक)। भारतीय साहित्य में कथा, आख्यायिका, गल्प, कहानी, लघु कथा और नई कहानी के नाम से प्रचलित इस विधा की एक दीर्घ परम्परा विद्यमान है। आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य में- सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक आदि कथाएँ रचित हैं। कहानी जीवन या जगत के किसी एक पक्ष का संवेदनात्मक बिम्ब है। इसकी विशेषताओं और गुणवत्ता की अनुभूति की जा सकती है उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

▶ आधुनिक युग की देन

1.4.3.2 नाटक

नाटक को परिभाषित करते हुए बाबू गुलाबराय ने लिखा है कि नाटक में जीवन की अनुकृति को शब्दगत संकेतों में संकुचित करके उसको सजीव पात्रों द्वारा एक चलते- फिरते सप्राण रूप में अंकित किया जाता है। नाटक जीवन की सांकेतिक नहीं है, वरन सजीव प्रतिलिपि है। नाटक में फैले हुए जीवन व्यापार को ऐसी व्यवस्था के साथ रखते हैं कि अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न हो सके। वस्तुतः नाटक अत्यंत ही प्राचीन विधा है। ईसापूर्व तीसरी शताब्दी में आचार्य भरतमुनि ने इस विधा को आधार बनाकर नाट्यशास्त्र लिखा था। नाटक (नाट्य) शब्द की उत्पत्ति 'नट्' धातु से हुई है जिसके नृत्त और अभिनय दोनों अर्थ निकलते हैं। भरतमुनि ने "सम्पूर्ण संसार के भावों का अनुकीर्तन ही नाट्य माना है। एकांकी भी नाट्य साहित्य का ही अंग है। नाटक जहाँ जीवन की सम्पूर्ण घटनाओं का मंचीय चित्रण है एकांकी वहाँ जीवन की एक ही घटना विशेष का मंचन है।"

▶ नाटक जीवन की सजीव प्रतिलिपि है

1.4.3.3 एकांकी

एकांकी आधुनिककालीन गद्य की एक स्वतन्त्र विधा है जो नाटक की भाँति अभिनय से

सम्बन्धित है। इसमें किसी एक घटना या विषय को एक अंक में प्रस्तुत किया जाता है। कुछ आलोचक नाटक के लघु रूप को एकांकी कहते हैं, परन्तु यह भ्रान्त धारणा है। दोनों अलग-अलग विधाएँ अपना स्वतन्त्र शिल्प रखती हैं। वर्तमान हिन्दी एकांकी का शिल्प पाश्चात्य एकांकियों से प्रभावित है। संस्कृत में रूपक एवं उपरूपक के जो अनेक भेद किये गये हैं उनमें से पन्द्रह भेद 'एकांकी' से सम्बन्धित हैं। एक अंक वाली इन नाट्य कृतियों को वहाँ व्यायोग, प्रहसन, भाण, वीथी, नाटिका, ईहामृग, रासक, माणिका आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता रहा है, किन्तु हिन्दी एकांकी का सम्बन्ध संस्कृत के उक्त एकांकियों से नहीं है। एकांकी पश्चिम में अभिनीत किये जाने वाले उन नाटकों को कहा जाता है, जिनमें एक अंक में ही कथा समाप्त हो जाती थी।

▶ नाटक के लघु रूप

1.4.3.4 उपन्यास

उपन्यास शब्द 'उप' अर्थात् समीप, 'न्यास' अर्थात् वस्तु धातु से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु। साहित्य के सन्दर्भ में वह कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही कहानी है उपन्यास कहलाने योग्य है। अंग्रेजी में 'नावेल' शब्द इसके लिए प्रयुक्त होता है। गुजराती में नवलकथा, मराठी में कादम्बरी और बंगला तथा हिन्दी में उपन्यास इसी नावेल के लिए प्रयोग किये जाने वाले शब्द है। उपन्यास विस्तृत गद्यात्मक प्रकथन प्रधान रचना है, जिसमें वास्तविक जीवन का अनुकरण करने वाली घटनाओं और पात्रों का एक व्यवस्थित कथावस्तु के रूप में वर्णन रहता है। हिन्दी साहित्य में आधुनिक 'उपन्यास' का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है जिनमें- सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, मनोवैज्ञानिक, आँचलिक, साम्यवादी, वैचारिक, हास्य, तिलस्मी आदि उपन्यास हैं।

▶ मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु

1.4.3.5 जीवनी

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की विभिन्न विधाओं में से जीवनी भी एक विधा है। यद्यपि यह प्राचीन विधा है तथापि इसका विधिवत साहित्य आधुनिक काल में ही प्राप्त होता है। जीवनी साहित्य को परिभाषित करते हुए किसी विद्वान ने कहा है कि जब किसी लेखक द्वारा किसी महान व्यक्ति के जीवन की घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तब उस रचना को जीवनी कहते हैं। भारतीय साहित्य में जीवनी लिखने की वैसी वस्तुपरक परम्परा नहीं रही है, जैसी कि पाश्चात्य देशों में पायी जाती है। वैसे तो स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले भी हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित कहलायी जाने वाली कुछ कृतियाँ मिल जाती हैं, परन्तु सही अर्थों में जीवनी में निरूपित चरित-नायक के प्रति वस्तुपरक दृष्टिकोण तथा जीवनी लेखन की कलात्मक अभिव्यक्ति का उनमें नितान्त अभाव है।

▶ किसी महान व्यक्ति के जीवन की घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करना

1.4.3.6 निबंध

निबंध गद्य की एक प्रमुख विधा है। निबंध शब्द के निकटतम पर्यायवाची शब्द लेख, सन्दर्भ, रचना, प्रस्ताव, आर्टिकल, कम्पोजिसन, एस्से और आलेख आदि हैं। प्राचीन संस्कृत परंपरा में तार्किक व्याख्या, टीका, भाष्य, समीक्षा, सूत्र आदि से उपजकर निबंध साहित्य का विकसित होना स्वीकार्य किया गया है। लेकिन हिन्दी में निबंध संस्कृत की प्राचीन परंपरा से नहीं बल्कि पाश्चात्य साहित्य की प्रेरणा से आया है। इसको परिभाषित करते हुए कहा गया है कि निबंध लेखक के व्यक्तित्व को प्रकाशित करने वाली ललित गद्य रचना है। निबन्ध

एक छोटा-सा गद्य विधान है जिसमें निबन्धकार जीवन या जगत से सम्बन्धित किसी भी वस्तु या व्यक्ति के प्रति उत्पन्न अपनी मानसिक और बौद्धिक प्रतिक्रियाओं की इस प्रकार निर्बाध अभिव्यक्ति करता है कि वह अधिक से अधिक रोचक, संवेदनशील तथा चमत्कारपूर्ण बन सके।" आज- परिचयात्मक, वर्णनात्मक, कथात्मक, आलोचनात्मक, शोधात्मक, भावात्मक, वैयक्तिक आदि तरह के उपन्यास लिखे जा रहे हैं।

▶ लेखक के व्यक्तित्व को प्रकाशित करने वाली ललित गद्य रचना

1.4.3.7 आत्मकथा

जीवनी और संस्मरण के समान आत्मकथा भी हिन्दी गद्य साहित्य की नवीन और महत्वपूर्ण विधा है। आत्मकथा किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा लिखा गया वह आख्यान, वृत्तान्त या वर्णन है जो वह बड़ी सुन्दरता से अपने जीवन के बारे में व्यक्त करता है। आत्मकथा का शाब्दिक अर्थ है- 'अपनी कथा'। जिस विधा में लेखक स्वयं ही अपना जीवन-वृत्त प्रस्तुत करे, उसे 'आत्मकथा' कहते हैं। कुछ विद्वान इसे 'आत्मचरित्र' भी कहते हैं। आत्मकथा में लेखक निष्पक्ष रूप से अपने गुण-दोषों को सम्यक अभिव्यक्ति करता है और अपने चिन्तन, संकल्प, विकल्प, उद्देश्य और अभिप्राय को व्यक्त करने हेतु जीवन के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों को उजागर करता है। इस साहित्यिक विधा में लेखक अपने वैयक्तिक जीवन के ही खट्टे-मीठे अनुभवों को क्रमानुसार बाह्य सामग्रियों तथा स्मृति के आधार पर लिपिबद्ध करता है। आत्मकथा लिखना लेखक के लिए एक कष्टप्रद कार्य है। इसमें कष्ट का एकमात्र कारण रचनाकार का आत्मकथा में द्रष्टा एवं भोक्ता दोनों बने रहना है। इसमें द्रष्टा के पद से च्युत होने पर लेखक आत्मश्लाघा का शिकार हो जाता है तथा भोक्ता के धर्म से च्युत होने पर आत्मकथाकार की कृति प्राणतत्व से शून्य हो जाती है। आत्मकथा के लेखक को आत्मश्लाघा तथा आत्मशून्यता के बीच से गुज़रना पड़ता है। मानव जीवन में अटूट आस्था का पग-पग पर प्रकट होना आत्मकथा का दूसरा प्रमुख तत्व है। निषेधात्मक दृष्टि वाले, मानव जीवन के प्रति लालसा और मोह न रखने वाले, खण्डित एवं कुण्ठित दृष्टि वाले, कदापि आत्मकथा लिखने में सफल नहीं हो सकते। देश, काल तथा वातावरण की सही पकड़ आत्मकथा का तीसरा तत्व है। उस उच्चता तथा गहराई का अधिकारी देश, काल और वातावरण से कटा व्यक्ति नहीं बन पाता जो आत्मकथा का प्राण होती है। घटना का सूत्र ही कहीं लुप्त न होना आत्मकथा का चौथा तथा अन्तिम तत्व है। घटना-सूत्र कहीं तो प्रधान रूप धारण करता है और कहीं गौण।

▶ लेखक का स्वयं ही अपना जीवन-वृत्त प्रस्तुत करना

1.4.3.8 संस्मरण

हिन्दी साहित्य में संस्मरण एक आकर्षक और आत्मनिष्ठ आधुनिकतम विधा है। जीवनी-परक साहित्य का यह अत्यन्त ललित और लघु कलात्मक अंग है। वास्तव में संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। संस्मरणकार अपनी स्मृति के माध्यम से अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने सम्पर्क में आये हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के विशिष्ट पहलू को कथात्मक शैली में रेखांकित करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। सामान्य व्यक्ति उन क्षणों को भूल जाता है, किन्तु संवेदनशील और भावुक व्यक्ति इन स्मृतियों को अपने हृदय पटल पर अंकित कर लेता है। इन क्षणों की स्मृतियाँ जब कभी उसे आकुल कर देती हैं तभी संस्मरण साहित्य की सृष्टि होती है। संस्मरण के मूल में अतीत की स्मृतियाँ समाहित रहती हैं, जो व्यक्तिगत सम्पर्क का परिणाम होती हैं। उन्हीं स्मृतियों को संस्मरणकार सजीव रूप में प्रस्तुत करता है।

▶ अत्यन्त ललित और लघु कलात्मक अंग

1.4.3.9 रिपोर्ताज

'रिपोर्ताज' फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। यह गद्य की नवीनतम विधाओं में से एक है। जिस रचना में वर्ण्य विषय का आँखों देखा तथा कानों सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाए कि पाठक की हृदय के तार झंकृत हो उठे और वह उन्हें भूल न सके, उसे रिपोतार्ज कहते हैं। रिपोतार्ज रिपोर्ट नहीं है। रिपोर्ट में केवल यथातथ्य वर्णन होता है। रिपोतार्ज में तथ्यों को कलात्मक एवं भावपूर्ण ढंग से लिखा जाता है। इस रचना विधा का जन्म द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुआ और हिन्दी में रिपोतार्ज लेखन की शुरुआत शिवदान सिंह चौहान की रचना 'लक्ष्मीपुरा' से मानी जाती है।

▶ आँखों देखा तथा कानों सुना ऐसा विवरण

1.4.3.10 रेखाचित्र

संस्मरण की भाँति रेखाचित्र भी हिन्दी गद्य साहित्य की नवीन विधा है। यह जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाला शब्द चित्र है। हिन्दी का रेखाचित्र शब्द अंग्रेजी के स्केच (Sketch) शब्द का हिन्दी अनुवाद है। जिस प्रकार चित्रकला में बिना रंगों का प्रयोग किए रेखाओं के माध्यम से रेखाचित्र निर्मित किये जाते हैं, उसी प्रकार जब शब्दों के माध्यम से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को उकेरा जाता है तब उस रचना को रेखाचित्र कहा जाता है। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार- 'रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप विधान है, जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि अपना निजीपन उँडेलकर प्राण-प्रतिष्ठा कर देता है।' रेखाचित्र अपने वर्ण्य विषय का अध्येता, व्याख्याता और सूत्रधार होता है। रेखाचित्र में वैयक्तिक अनुभूति अनिवार्य रूप से रहती है। इसमें व्यक्ति अथवा वस्तु का ऐसा 'क्लोजअप' प्रस्तुत किया जाता है कि उसकी प्रत्येक विशेषता उभर आती है। रेखाचित्र का विषय काल्पनिक न होकर वास्तविक होता है और उसकी आन्तरिक तथा बाह्य विशेषताएँ कलात्मक रूप से अभिव्यक्ति पाती हैं। रेखाचित्र से मिलती-जुलती विधा संस्मरण है, जिसके लिए अंग्रेजी में 'मेमोयर्स' शब्द प्रयोग किया जाता है। महादेवी वर्मा के शब्दों में- 'संस्मरण लेखक की स्मृति से सम्बन्ध रखता है और स्मृति में वही अंकित रह जाता है जिसने उसके भाव या बोध को कभी गहराई में उद्वेलित किया हो।' संस्मरण और रेखाचित्र में अन्तर कर पाना यद्यपि कठिन है तथापि संस्मरण विवरणात्मक होते हैं और रेखाचित्र रेखात्मक, उनमें इतिवृत्त की प्रधानता नहीं होती है।

▶ अपने वर्ण्य विषय का अध्येता, व्याख्याता और सूत्रधार

1.4.3.11 आलोचना

आलोचना का शाब्दिक अर्थ है किसी वस्तु को भली प्रकार देखना। भली प्रकार देखने से किसी वस्तु के गुण दोष प्रकट होते हैं। आलोचना के लिए समीक्षा शब्द भी प्रचलित है। इसका भी लगभग यही अर्थ है। हिन्दी में आलोचना अंग्रेजी के 'क्रिटिसिज्म' शब्द का पर्याय बन गया है। भारतीय काव्य चिंतन के क्षेत्र में सैद्धांतिक या शास्त्रीय आलोचना का विशेष महत्व रहा है। हमारा यह पक्ष अत्यंत समृद्ध और पुष्ट है। हिन्दी में आधुनिक पद्धति की आलोचना का आरम्भ भारतेंदु युग में बालकृष्ण भट्ट और बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन द्वारा लाला श्रीनिवासदास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की आलोचना से माना जाता है। आगे चलकर द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, बाबू श्यामसुन्दर दास, पद्मासिंह शर्मा, लाला भगवानदीन आदि ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किया। हिन्दी आलोचना का उत्कर्ष आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना कृतियों के प्रकाशन से मान्य है। आचार्य शुक्ल के बाद गुलाब

▶ किसी वस्तु को भली प्रकार देखना

राय, नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ नगेन्द्र और डॉ रामविलास शर्मा की हिन्दी आलोचना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

द्विवेदी युग के गद्य-साहित्य के विवेचनात्मक सर्वेक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि इस युग के साहित्य-सृजन का प्रेरक तत्व राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण ही था। भारतेन्दु युग में इस जागरण ने साहित्यधारा को नये पथ पर मोड़ दिया था और साहित्य तथा समाज के अन्तराल को कम किया था। इस युग में जागरण प्रत्येक साहित्य विधा का अन्तर्वर्ती प्रवाह बन गया। निबन्ध हो या आलोचना, कहानी हो या उपन्यास, उसके कलात्मक परिधान को हटा देने पर भीतर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण की चेतना अवश्य लक्षित होती है। इस जागरण ने साहित्य के मूल्यों में परिवर्तन किया। शास्त्रीय रूढ़ियाँ टूटीं, साहित्य का उद्देश्य व्यापक जनसमुदाय को प्रभावित करना और उसे आदर्श जीवन की ओर मोड़ना माना गया। मुद्रण व्यवस्था ने इस उद्देश्य की पूर्ति में योग दिया। साहित्य कुछ रसिकों की वस्तु न रहकर समस्त शिक्षित जनता की वस्तु बन गया। नयी जीवनदृष्टि ने नयी भाषा को माध्यम बनाया। खड़ी बोली पूर्णतः प्रतिष्ठित हुई। साहित्य सृजन की मूल प्रेरणा, समाज सुधार, चरित्र निर्माण या व्यापक राष्ट्रीय हित होने के कारण इस काल की साहित्य कृतियों में कलात्मक निखार तो नहीं आया, किन्तु सभी प्रकार की गद्य विधाओं की विकास परम्परा का आरम्भ अवश्य हो गया। साहित्य का स्वरूप क्रमशः गम्भीर हुआ और उसमें दायित्वबोध जागा। साहित्य को शिष्ट समाज में प्रवेश पाने के योग्य समझा जाने लगा और सब मिलाकर हिन्दी गद्य को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग का परिचय दीजिए।
2. हिन्दी नवजागरण के बारे में टिप्पणी लिखिए।
3. सरस्वती पत्रिका के बारे में लेख लिखिए।
4. हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का परिचय दीजिए।
5. संस्मरण और रेखाचित्र पर टिप्पणी लिखिए।
6. उपन्यास और कहानी का अंतर स्पष्ट कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास - रामस्वरूप चतर्वेदी
2. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार - द्वारिका प्रसाद सक्सेना
3. हिन्दी निबंध के विकास - डॉ. ओमकांत शर्मा
4. निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी - सं. गणपतिचन्द्र गुप्त

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. गद्य की विविध विधाएँ - मजिदा आजाद
2. हिन्दी गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ - डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया
4. हिन्दी निबंधकार - जयंत नलिन
5. प्रेमचन्द : मूल्यांकन - इन्द्रनाथ मदान
6. हिन्दी में निबंध और निबंधकार - डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त
7. हिन्दी रेखाचित्र - एच एल शर्मा
8. प्रेमचन्द और उनका युग - रामविलास शर्मा

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

BLOCK-02

हिन्दी कथा साहित्य

Block Content

Unit 1: हिन्दी कहानी - उद्‌भव और विकास, हिन्दी कहानी का विकास - प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रसाद युग, उत्तर प्रेमचंद युग

Unit 2: नई कहानी, अकहानी, साठोत्तरी कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी, हिन्दी के प्रमुख कहानीकार - प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती (कहानी - 1. आकाशदीप - जयशंकर प्रसाद - विस्तृत अद्ययन (Detailed study)

Unit 3: हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार

Unit 4: प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार - यशपाल, जैनेंद्र कुमार, भीष्म साहिनी, फणीश्वरनाथ रेणु

इकाई : 1

हिन्दी कहानी - उद्‌भव और विकास, हिन्दी कहानी का विकास - प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रसाद युग, उत्तर प्रेमचंद युग

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी कहानी का उद्‌भव और विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- प्रेमचंद पूर्व युग की कहानी के बारे में समझता है
- प्रेमचंद युग,प्रसादयुग अदि समय की कहानी के बारे में अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

साहित्य अनुभूति का आत्मज है। जब भाव और अनुभूति की प्रेरणा मनुष्य के मन और मस्तिष्क में सघन होने लगती है, तब उसके भीतर एक अकुलाहट होती है और यह अकुलाहट उसे अभिव्यक्ति की ओर प्रेरित करती है। सघनतम अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को रोका नहीं जा सकता। अभिव्यक्ति के लिए अपनाये गये माध्यम विविध हैं। कभी तो मनुष्य वाणी के द्वारा अभिव्यक्ति करता है, कभी अपनी आकृति से और कभी संकेतों से। इतना निश्चित है कि व्यक्ति विशेष भावाभिव्यक्ति के दौरान अपनी अभिव्यक्ति को अधिक रोचक, आकर्षक और प्रभावी बनाने का प्रयत्न करता है। अभिव्यक्ति की माध्यम शैली जैसे-जैसे बदलती है, वैसे-वैसे साहित्य के रूप में विधानों की योजना होती है। कहानी ऐसी ही अभिव्यक्ति का विशिष्ट रोचक, आकर्षक, संवेदना प्रवण और प्रभावी रूप है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

कहानी की विकास यात्रा, मौलिक एवं स्वतंत्र सत्ता, सरस्वती पत्रिका, इंदु पत्र

Discussion / चर्चा

मनुष्य की कथा कहने की प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन है, सम्भवतः उतनी ही प्राचीन जितना कि मनुष्य और मानवता। यही कारण है कि मनुष्य और उसके जीवन में जब-जब परिवर्तन हुए तब-तब कहानी के ढंग, उसकी वस्तु और संवेदना में भी परिवर्तन हुआ है। जीवन के समस्त आनन्द, समस्त अंतर्द्वन्द्व और सम्पूर्ण रस कहानी के विस्तृत क्षेत्र में आकर सिमट जाते हैं। आज कहानी विकसित हो चुकी है और साहित्य के अन्तर्गत स्वतन्त्र व्यक्तित्व लेकर आ रही है। यदि लोकप्रियता को कहानी की प्रमुख विशेषता माना जाए तो निश्चय ही आज वह साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक आगे बढ़ गई है। अपने आधुनिक युग में कहानी उपन्यास की अनुजा है और इसके साथ ही साहित्य में विशिष्ट स्थान की अधिकारी है। जहाँ तक कथा साहित्य की उत्पत्ति का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कहना असम्भव भले ही न हो, किन्तु कठिन अवश्य है। इतना निश्चित है कि कहानी का अस्तित्व

अत्यन्त प्राचीन है और वह सर्वकाल और सर्व देशों में हमेशा विद्यमान रही है।

2.1.1 हिन्दी कहानी-उद्भव और विकास

हिन्दी की गद्य विधाओं में कहानी सशक्त विधा बनकर विकसित हुई है। आज कहानी के पाठक अन्य सभी विधाओं की तुलना में सर्वाधिक हैं, यही कारण है कि पत्र-पत्रिकाओं में कहानियों की माँग सर्वाधिक है। यही नहीं अपितु कई पत्रिकाएँ तो केवल कहानी पत्रिकाएँ ही हैं, जो समकालीन कथाकारों की स्तरीय कहानियों के साथ-साथ उभरते हुए कहानीकारों की कहानियाँ भी छापती हैं। विगत 110 वर्षों में हिन्दी कहानी ने जो आशातीत प्रगति की है, वह उत्साहवर्द्धक है। अन्य सभी गद्य विधाओं की अपेक्षा आज की हिन्दी कहानी में युगबोध की क्षमता सबसे अधिक दिखाई पड़ती है।

▶ कहानी की विकास यात्रा

उपन्यास और कहानी दोनों में ही 'कथा' तत्व विद्यमान होता है। अतः प्रारम्भ में लोगों की यह धारणा थी कि उपन्यास और कहानी में केवल आकार का ही भेद है किन्तु अब यह धारणा निर्मूल हो चुकी है। ज्यों-ज्यों कहानी की शिल्पविधि का विकास होता गया, उपन्यास से उसका पार्थक्य भी अलग झलकने लगा। वास्तव में कहानी में जीवन के किसी एक अंग या संवेदना की अभिव्यक्ति होती है, जबकि उपन्यास में जीवन की समग्रता का अंकन किया जाता है। स्पष्ट है कि कहानी की मूल आत्मा 'एक संवेदना या एक प्रभाव' है। कहानी का प्रमुख उद्देश्य भी कम-से-कम शब्दों में उस प्रभाव को अभिव्यक्त करना मात्र है। ब्लेटज हेमिस्टन ने कहानी की परिभाषा देते हुए लिखा है- 'The aim of a short story is to produce a single effect with the greatest economy of words.' हिन्दी के प्रसिद्ध कवि एवं कथाकार अज्ञेय के अनुसार, 'कहानी एक सूक्ष्मदर्शी यंत्र है जिसके नीचे मानवीय अस्तित्व के दृश्य खुलते हैं।'

▶ कहानी की परिभाषा

हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा का प्रारम्भ 1900 ई. के आसपास ही मानना समीचीन है, क्योंकि इससे पूर्व हिन्दी में कहानी जैसी किसी विधा का सूत्रपात नहीं हुआ था। हिन्दी की प्रथम कहानी कौन-सी है? यह एक विवादास्पद प्रश्न है। इस सम्बन्ध में जिन कहानियों का नाम लिया जाता है, वे हैं-

1. रानी केतकी की कहानी - मुंशी इंशा अल्ला खाँ
2. राजा भोज का सपना - शिवप्रसाद सितारेहिन्द
3. इंदुमती - किशोरीलाल गोस्वामी
4. दुलाईवाली - बंगमहिला
5. एक टोकरी भर मिट्टी - माधवराव सप्रे
6. ग्यारह वर्ष का समय - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

▶ प्रथम कहानी

इनमें से प्रथम दो में कहानी कला के तत्व विद्यमान नहीं हैं। अतः उन्हें हिन्दी कहानी की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'इंदुमती' को ही हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है जिसका प्रकाशन 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका में हुआ था, किन्तु शिवदान सिंह चौहान के अनुसार यह कहानी शैक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' का अनुवाद है, अतः मौलिक रचना नहीं कही जा सकती। सरस्वती पत्रिका में ही सन् 1903 में रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' प्रकाशित हुई तथा सन् 1907 में बंगमहिला की 'दुलाई वाली' कहानी छपी। इधर नवीन अनुसन्धानों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि सन् 1901 में 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का प्रकाशन 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक पत्रिका में हुआ था, जिसके

▶ प्रथम मौलिक कहानी

लेखक माधवराव सप्रे थे, अतः यही हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी कही जा सकती है।

2.1.2 हिन्दी कहानी का विकास

हिन्दी कहानी के विकास का अध्ययन करने के लिए हम कथा सम्राट प्रेमचन्द को यदि केन्द्रबिन्दु मान लें, तो उसे चार भागों में विभक्त कर सकते हैं-

1. प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कहानी
2. प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कहानी
3. प्रेमचन्द युगीन हिन्दी कहानी
4. नयी कहानी।

▶ कहानी का विकास क्रम

2.1.3 प्रेमचंद पूर्व युग

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी कहानी (सन् 1900 से 1915 ई.) इस काल में हिन्दी कहानी अपना स्वरूप ग्रहण कर रही थी। उसकी शिल्पविधि का विकास हो रहा था और नये-नये विषयों पर कहानियाँ लिखी जा रही थीं। हिन्दी की प्रथम कहानी के अन्तर्गत जिन कहानियों का उल्लेख किया जा चुका है, उनके अतिरिक्त इस काल में लिखी गयी अन्य प्रसिद्ध कहानियाँ हैं- माधवप्रसाद मिश्र की 'मन की चंचलता', लाला भगवानदीन की 'प्लेग की चुड़ैल', वृंदावनलाल वर्मा की 'राखीबंद भाई' और 'नकली किला', विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'रक्षाबन्धन', ज्वालादत्त शर्मा की 'मिलन'। वस्तुतः 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित कहानियों ने हिन्दी कहानी को एक दिशा प्रदान की और हिन्दी कहानी अपने विकास पथ पर अग्रसर हुई। उक्त सभी कहानियाँ इसी पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। सन् 1909 में काशी से 'इन्दु' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, जिसमें जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ प्रकाशित होने लगी थीं। बाद में इन कहानियों का संग्रह 'छाया' नाम से सन् 1912 में प्रकाशित हुआ। राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानी 'कानों में कंगना' भी इन्दु में सन् 1913 में प्रकाशित हुई। सन् 1918 में काशी से 'हिन्दी गल्पमाला' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसमें प्रसाद जी की कहानियों के अतिरिक्त इलाचन्द्र जोशी एवं गंगाप्रसाद श्रीवास्तव की कहानियाँ भी छपने लगी थीं। प्रेमचन्द जी की कुछ कहानियाँ भी सरस्वती में इस काल में छपने लगी थीं। उपर्युक्त कहानियों में बहुत-सी कहानियों पर भारतीय एवं विदेशी भाषाओं की छाया है। इन कहानियों का विषय प्रेम, समाजसुधार, नीति, उपदेश से जुड़ा हुआ है।

▶ 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित कहानियाँ

हिन्दी कथा-यात्रा के इस प्रथम चरण में कहानी अभी बाल्यावस्था में ही थी। प्रेमचन्द के आगमन से पूर्व हिन्दी कहानी का कोई सशक्त रूप नहीं उभर पाया था, किन्तु अपवाद रूप में गुलेरी जी और प्रसाद जी की कहानियों को लिया जा सकता है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी कहानी का विकास लगभग 1900 ई. से प्रारम्भ हुआ और धीरे धीरे उसका मौलिक स्वरूप एवं स्वतन्त्र सत्ता विकसित हुई। 'उसने कहा था' कहानी को हिन्दी कहानी के विकास के प्रथम सोपान की महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है।

▶ कहानी का विकास का मौलिक स्वरूप एवं स्वतन्त्र सत्ता

2.1.4 प्रेमचंद युग

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी (सन् 1916 से 1936 ई.) प्रेमचन्द हिन्दी के युग प्रवर्तक कहानीकार माने जाते हैं। पहले वे नवाबराय के नाम से उर्दू में लिखते थे। उर्दू में लिखा उनका कहानी संग्रह 'सोजेवतन' 1907 ई. में प्रकाशित हुआ था। स्वातंत्र्य भावना से ओतप्रोत होने के कारण इस कहानी संकलन को अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था। इसलिए 'ज़माना' पत्रिका के संपादक डायनरायन निगम ने छदम नाम प्रेमचंद रखा और कालान्तर में वे हिन्दी में

▶ कथा साहित्य में अमर

'प्रेमचन्द' नाम से लिखने लगे और उनका यह नाम कथा साहित्य में अमर हो गया। उनकी पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' सन् 1916 में प्रकाशित हुई और अन्तिम 'कफन' 1936 ई. में। अतः इस काल को प्रेमचन्द युग कहना समीचीन प्रतीत होता है। प्रेमचन्द ने अपने जीवन काल में लगभग 300 कहानियों की रचना की, जो 'मानसरोवर' के आठ खण्डों में प्रकाशित हुई हैं।

▶ कहानियों की विविध समस्याएँ

प्रेमचन्द की कहानियों में विषय-वैविध्य दिखाई पड़ता है। किसी अन्य कथाकार ने जीवन के इतने व्यापक फलक को अपनी कहानियों में नहीं समेटा, जितना प्रेमचन्द ने। उनकी कहानियाँ अपने परिवेश से, अपने आस-पास के जीवन से जुड़ी हुई हैं। उनकी अधिकांश कहानियों का विषय ग्रामीण जीवन से लिया गया है, किन्तु कई कहानियाँ कस्बे की ज़िन्दगी या स्कूल-कॉलेज से भी जुड़ी हुई हैं। उनकी कहानियों के पात्र हर वर्ग, धर्म, जाति के हैं। कोई हिन्दू है तो कोई मुसलमान, कोई किसान है, तो कोई विद्यार्थी। अपनी कहानियों में उन्होंने विविध समस्याओं को भी उठाया है जमींदारों के द्वारा किसानों के शोषण की समस्या, सूदखोरों के शोषण से पिसते ग्रामीणों की समस्या, छुआछूत की समस्या, रूढ़ि एवं अंधविश्वास, संयुक्त परिवार की समस्या, भ्रष्टाचार एवं व्यक्तिगत जीवन की समस्याएँ आदि।

▶ प्रारम्भिक कहानियों

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों में आदर्श का पुट दिया गया है। 'पंच परमेश्वर', 'आत्माराम', 'प्रेरणा', 'ईदगाह', 'नमक का दरोगा' आदि कहानियों का मूल उद्देश्य है- सच्चे का बोलबाला और झूठे का मुँह काला, जबकि परवर्ती कहानियाँ यथा- 'पूस की रात' और 'कफन' तक आते-आते उनका दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया। अब वे जीवन के यथार्थ से जुड़ गये थे। स्पष्ट है कि उनकी पहले वाली कहानियाँ आदर्शवादी हैं और बाद में लिखी गयी कहानियाँ यथार्थवादी हैं।

▶ प्रेमचन्द की कहानी कला

सन् 1930 से 1936 ई. तक का कालखण्ड प्रेमचन्द की कहानी कला का उत्कर्ष-काल है। इस काल की कहानियों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं जीवन के यथार्थ का चित्रण किया गया है। इन कहानियों में कथानक और घटनाओं को उतना महत्व नहीं दिया गया है, जितना कहानी की मूल संवेदना को पाठकों तक पहुँचाने की ओर ध्यान दिया गया। 'कफन' और 'पूस की रात' इस वर्ग की कहानियाँ हैं। इसमें सच्चाई को नग्न रूप में उजागर किया गया है। हिन्दी की आधुनिक कहानियों को ऐसी कहानियों से बहुत कुछ 'दाय' के रूप में प्राप्त हुआ है, इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

▶ प्रमुख कहानियाँ और समकालीन कहानीकार

प्रेमचन्द की प्रमुख कहानियों में 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी', 'ईदगाह', 'परीक्षा', 'आपबीती', 'सवा सेर गेहूँ', 'आत्माराम', 'सुजान भगत', 'माता का हृदय', 'कजाकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'बड़े भाई साहब', 'नशा', 'ठाकुर का कुआँ', 'ईदगाह', 'लाटरी', 'पूस की रात' और 'कफ़न' के नाम लिये जा सकते हैं। प्रेमचन्द के समकालीन कहानीकारों में पं. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्णदास, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', भगवती प्रसाद बाजपेयी, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल आदि उल्लेखनीय हैं।

2.1.5 प्रसाद युग

इस चरण में जयशंकर प्रसाद ने अवतरित होकर छोटी कहानियों में एक प्रकार से प्राण प्रतिष्ठा कर दी। उनके सम्पर्क और स्पर्श से कहानी कला चरम उत्कर्ष पर पहुँची। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार प्रतिध्वनि, चित्र मंदिर' और 'मधुआ' आदि कहानियों ने एक युग

ला दिया। हिन्दी कहानी द्वितीय चरण में आकर अधिक विकसित हुई और उसने अपनी नई राह दिखाई। कुछ और पत्रिकाओं की आवश्यकता महसूस हुई। 1909 में प्रसाद की प्रेरणा से उनके भान्जे अम्बिका प्रसाद गुप्त ने 'इन्दु' मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। 'इन्दु' पत्र के माध्यम से प्रसाद का व्यक्तित्व और कृतित्व और भी निखर कर आया 'ग्राम' कहानी के साथ ही हिन्दी की मौलिक कहानी-धारा का प्रारम्भ होता है। जयशंकर प्रसाद के कहानी संग्रह है- 'छाया'(1912 ई.), 'प्रतिध्वनि'(1926 ई.), 'आकाशदीप' (1928 ई.), 'आँधी' (1931 ई.) और 'इंद्रजाल' (1936 ई.)। 'छाया' हिन्दी का प्रथम कहानी संग्रह है। प्रसाद के विभिन्न कहानी-संग्रहों की चर्चित कहानियाँ - 'मधुआ', 'ममता', 'नूरी', 'बिसाती', 'घीसू', 'चूड़ी वाली', 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'देवदासी', 'छोटा जादूगर', 'आग', 'चंदा', 'गुलाम', 'रसिया बालम', 'पत्थर की पुकार', 'उस पार का योगी', 'स्वर्ग के खंडहर में', 'खंडहर की लिपि' आदि हैं।

▶ प्रसाद का कृतित्व

प्रसाद मूलतः कवि थे। अतः उनकी कहानियाँ भी भावमय और हृदय को स्पर्श करने वाली हैं। उनकी कुछ कहानियों में बाह्य जगत् की अपेक्षा अन्तर्जगत का रूप झाँक रहा है। इसी कारण वे गम्भीर और अधिक मार्मिक हैं। मनुष्य के जीवन के सुख-दुःख, हास-परिहास, करुणा-स्दन आदि का सफल चित्रण प्रसाद की कहानियों में मिलता है। प्रसाद की कहानियों में अंतर्द्वन्द्व की एक सुन्दर भूमिका है। 'आकाशदीप' कहानी से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार एक रमणी व्यक्ति को प्रेम भी करती है और घृणा भी। 'पुरस्कार' कहानी में राजभक्ति और वैयक्तिक प्रेम का संघर्ष है। 'इन्दु' मासिक पत्रिका के द्वारा कई अन्य कहानी लेखक सामने आये जिसमें विश्वम्भरनाथ जिज्जा, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह उल्लेखनीय हैं। जे.पी. श्रीवास्तव की प्रथम कहानी 'पिकनिक' सम्वत् 1968 में प्रकाशित हुई। यह हास्य रस को साकार करने वाली प्रथम कहानी थी।

▶ कहानियाँ भी भावमय और हृदय को स्पर्श करने वाली है

संवत 1969 में जिज्जा की 'परदेशी' और संवत 1970 में राजा साहब की 'कानों में कंगना' कहानियाँ प्रकाशित हुई, जो आज नयी और प्रसिद्ध हैं। 'इन्दु' ने मौलिक कहानियों के साथ बंगला की अनेक सुन्दर कहानियों के अनुवाद भी प्रकाशित किये जिनसे हिन्दी के उदीयमान लेखकों को मार्ग मिला। इसके पश्चात् विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने कहानी के क्षेत्र में पदार्पण किया। उनकी कहानियाँ प्रायः सामाजिक रहीं और उन कहानियों ने शहरी जीवन के अनेक रूप प्रस्तुत किये। उनकी प्रथम कहानी 'रक्षाबन्धन' सरस्वती में निकली। 1971 में ज्वालादत्त शर्मा और चतुरसेन शास्त्री ने कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया। 1972 में गुलेरी जी की अमर कहानी 'उसने कहा था' सरस्वती में प्रकाशित हुई, जिसे हिन्दी की श्रेष्ठ कहानी ठहराया गया। इससे पूर्व गुलेरी जी दो कहानियाँ और लिख चुके थे- 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धु का काँटा'। सुदर्शन जी का नाम कौशिक जी के साथ ही आता है। सुदर्शन जी की कहानियों के कथानक राजनैतिक आन्दोलन से भी लिये गये। इन्होंने 'न्यायमंत्री' नामक ऐतिहासिक कहानी लिखी। यह इनकी लोकप्रिय कहानी है। 'हार की जीत' कहानी उच्च मानवता का जयघोष करती है। वास्तव में सुदर्शन जी, कौशिक जी और प्रेमचन्द जी को मिलाकर कहानीकारों की एक वृहत्त्रयी बन जाती है।

▶ प्रसाद युग के प्रमुख कहानीकार

2.1.6 उत्तर प्रेमचंद युग

हिन्दी कहानी का तृतीय चरण अर्थात् प्रेमचन्दोत्तर युग जैनेन्द्र के आगमन से प्राप्त हुआ। जैनेन्द्र की कहानियों में युग की नवीन सम्भावनाओं और भावनाओं के दर्शन हैं। भाषा, कहानी

की शैली और तकनीकी हमेशा आपकी अपनी है। उनमें नवीनता सजीवता के साथ-साथ कहानियों का कथानक बिल्कुल सीधा और स्पष्ट है। आपकी प्रथम कहानी 'खेल' विशाल भारत में छपी थी। आपने कहानी को मनोरंजन के धरातल से उठाकर गंभीरता के शिखर पर रख दिया। आपकी कहानियों में पात्र संख्या कम है और समय तथा स्थान निर्वाह पाया जाता है।

▶ प्रेमचन्दोत्तर युग जैनेन्द्र के आगमन से प्राप्त हुआ

अज्ञेय का पहला कहानी संग्रह 'विपथगा' 1937 में प्रकाशित हुआ, जिसके बारे में टिप्पणी करते हुए बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा, 'अपनी प्रत्येक कहानी में वह विद्यमान हैं, एक ऐसे युवक के रूप में जिसमें उत्साह है, दृढ़ता है, आदर्श के लिए मर-मिटने की चाह है, जो हथेली पर जान रखकर उस पर प्रयोग करने में आनंद लेता है, पर जिसमें विवेक का अभाव है, जो बेजान बुड्ढे आदमियों को मयस्सर होता है, उस हिसाबीपन की कमी है, जिस पर दुनियावी आदमी अभिमान किया करते हैं, और फूंक-फूंक कर कदम रखने की उस प्रवृत्ति का नामोनिशान नहीं जो हाथ-पैर बचाकर मूँजी को तरकाने वाले आदमी में पाई जाती है।' अज्ञेय की कहानियों पर व्यक्त की गई यह प्रतिक्रिया आज भले ही अनर्गल अनुभव होती है, यह टिप्पणी उस वक्त के शुद्धतावादी आलोचकों के एकपक्षीय सोच को उद्घाटित करती है।

▶ कहानी कला में विशेष निपुणता

नवीन कहानी लेखकों में यशपाल को भूला नहीं जा सकता। ये क्रान्तिकारी लेखक हैं। प्राचीन धर्मों के अन्धानुकरण वाली प्रकृति से आपका विरोध रहा है। कटु आलोचक के रूप में पुराने रीति-रिवाजों को आपने देखा-परखा है। इनकी भाषा शैली व्यंग्यपूर्ण है। 'अभिशप्त', 'फूलों का कुर्ता', 'उत्तमी की माँ', 'तर्क का तूफान', 'भस्मावृत चिंगारी', 'तुमने क्यों कहा था कि मैं सुन्दर हूँ', 'बीबी जी कहती हैं, मेरा चेहरा रोबीला है' आदि आपके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं।

▶ क्रान्तिकारी लेखक

अश्क की कहानियों में प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा को बल दिया गया है। आपकी सर्वप्रथम विशेषता है सादगीपूर्ण चित्रण। भाषा सरल और रोचकपूर्ण है। 'कांगड़ा को तेली', 'डाची', 'पिंजरा' आदि आपकी जीवन्त कहानियाँ हैं। इनके अतिरिक्त मोहन लाल महतो 'वियोगी', विष्णु प्रभाकर, देवेन्द्र सत्यार्थी, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, वाचस्पति पाठक, पहाड़ी और हंसराज रहबर व सद्गुरुशरण अवस्थी आदि ने भी अच्छी कहानियाँ लिखी हैं।

▶ सादगीपूर्ण चित्रण

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी-कहानी अब प्रेमचन्द-युग से बहुत आगे निकल आयी है। प्रेमचन्द के बाद जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, 'अश्क' आदि लेखकों ने उसे नयी ज़मीन दी थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद अनेक आन्दोलनों के दौर से गुज़रती हुई अब वह यथार्थ से सीधा साक्षात्कार करने में समर्थ है। इस बीच उसने अनेक देशी-विदेशी रचनाकारों के शिल्प-सौन्दर्य से अपने को समृद्ध किया है। अब उसकी कथा-भूमि भी पर्याप्त विस्तृत हो गयी है। गाँव, अंचल, आदिवासी क्षेत्र, कस्बा, नगर, महानगर सभी के जीवन-प्रवाह को वह अपने में समाहित कर चुकी है। कहानीकारों की रचना-दृष्टि भी अब अधिक वैज्ञानिक और सूक्ष्म हो गयी है। अब वह जीवन के बाह्य विस्तार को ही नहीं, अन्तस् के गहन द्वन्द्व को भी मूर्त करने में समर्थ है। आज का कहानीकार जानता है कि औद्योगिक सभ्यता, पूँजीवादी संस्कृति और यंत्रीकरण के बढ़ते प्रभाव और दबाव के बीच मानवीय संवदेना और मूल्यों की रक्षा करने का उसका दायित्व आसान नहीं रह गया है। वह यह भी जानता है कि, न तो मात्र अनुभव को प्रामाणिक मानने से बात बनने वाली है, न विचारधारा-विशेष के प्रति विवेकहीन प्रतिबद्धता से। मनुष्य की ज़िंदगी में जिस तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं और जिस गति से वह बदल रही है, उसे पकड़ना खेल नहीं है। मानवता के प्रति अखण्ड आस्था, समृद्ध विवेक, यथार्थ से सीधे साक्षात्कार, रचनादृष्टि की निर्मलता तथा अपनी समृद्ध परम्परा की सीमा में आधुनिकता के स्वीकार से ही कुछ हो सकता है। नवीनता की झोंक में किसी भी दिशा में विवेकहीन बढ़ाव या अपनी पहचान खोकर आयातित रचना-दृष्टि को आयत करने का गर्व अन्त में व्यर्थ सिद्ध होगा। अपने अनुभव और ज्ञान की इस पूँजी के बल पर आगे बढ़ते हुए कहानीकार के हाथों कहानी का भविष्य सुरक्षित है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी कहानी के उद्भव और विकास पर टिप्पणी लिखिए।
2. हिन्दी कहानी की विकास यात्रा।
3. प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों के बारे में टिप्पणी लिखिए।
4. प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानियों के बारे में आपका विचार स्पष्ट कीजिए।
5. प्रेमचंद युग के प्रमुख कहानीकार।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास - रामस्वरूप चतर्वेदी
2. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार - द्वारिका प्रसाद सक्सेना
3. हिन्दी निबंध के विकास - डॉ. ओमकांत शर्मा
4. निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी - सं. गणपतिचन्द्र गुप्त

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. गद्य की विवध विधाएँ - मजिदा आजाद
2. हिन्दी गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ - डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया
4. प्रेमचन्द और उनका युग - रामविलास शर्मा

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

नई कहानी, अकहानी, साठोत्तरी कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी, हिन्दी के प्रमुख कहानीकार - प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती (कहानी - 1. आकाशदीप - जयशंकर प्रसाद - विस्तृत अध्ययन (Detailed study)

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- नयी कहानी के बारे में परिचय प्राप्त करता है
- कहानी की विभिन्न विधाओं को समझता है
- हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों के बारे में अवगत होता है
- प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती आदि के सामान्य परिचय प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी कहानी के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने निभायी। इस युग-पुरूष ने अपनी कहानियों को विविध शैलियों के माध्यम से साहित्य संसार को सौंपा, इसलिए कहानी साहित्य के शिरोमणियों ने हिन्दी कहानी परम्परा में प्रेमचन्द का स्थान केन्द्रीय महत्व का स्वीकारा। प्रेमचन्द ने अपने जीवन काल में तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं। इन्होंने हिन्दी कहानी को वह श्रेष्ठता प्रदान की जिससे प्रेरणा प्राप्त कर हिन्दी के अन्य कहानिकारों ने हिन्दी कहानी कोष की श्रीवृद्धि की।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अजनबीपन, निरर्थकता बोध, पूंजीवाद, वैश्वीकृत भारत

Discussion / चर्चा

कहानी के इस चरण में वे कहानीकार आते हैं जिसकी कहानियाँ 'नयी कहानी' की संज्ञा प्राप्त कर चुकी हैं। नयी कहानी कुछ विशेष सन्दर्भों की तलाश में जा रही है, बहुत कुछ तालाश कर चुकी है।

2.2.1 नई कहानी

हिन्दी साहित्य की कहानी विधा के अन्तर्गत सामान्य रूप से नयी कहानी का प्रारम्भ 1950 ई. के लगभग माना जाता है। माना जाता है कि 'नयी कहानी' पद का सर्वप्रथम प्रयोग दुष्यंत कुमार ने किया किंतु कुछ लोग इसका श्रेय 'नामवर सिंह' को देते हैं। 1956 ई. में भैरवप्रसाद गुप्त के संपादन में 'नयी कहानी' नाम से एक विशेषांक निकला जिसमें 18 लेखकों की कहानियाँ शामिल की गईं। इसी विशेषांक के आधार पर इन कहानियों को नयी कहानी कहा गया। मधुरेश के अनुसार नयी कहानी का समय मोटे तौर पर 1954 ई. से 1963 ई. की सीमाओं में बाँधा जा सकता है। रामचन्द्र तिवारी ने लिखा- 'सन् 1954 ई. की आगे की कहानी

सन् 1960 तक आते-आते नयी कहानी बन गई।' जितेन्द्र ने नयी कहानी का प्रारम्भ राजेन्द्र यादव से माना है, जबकि नामवर सिंह ने शिवप्रसाद कृत 'दादी माँ' को पहली नई कहानी और निर्मल वर्मा के 1960 में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'परिन्दे' को नयी कहानी की पहली कृति माना। डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित के अनुसार कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव तीनों इस श्रेय के अधिकारी हैं। वास्तव में समूह की मानसिकता किसी भी सशक्त साहित्यिक आन्दोलन के पीछे होती है जो आन्दोलन को बल देकर उसे दीर्घजीवी बनाती है। यह अवश्य है कि प्रत्येक आन्दोलन के कुछ विशेष प्रवक्ता और नेता अवश्य होते हैं। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश जैसे कथाकारों और नामवर सिंह, भैरव प्रसाद गुप्त जैसे आलोचकों ने इन भूमिकाओं को बखूबी निभाया है। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार- 'नयी कहानी सामूहिक रूप से बदले हुए अनुभूति के स्तर पर सामाजिक जीवन की पहचान की कहानी है। इस कहानी में अनुभूति तथा प्रखर बौद्धिक दृष्टि भी है। नयी कहानी जिए हुए जीवन सत्य पर अधिक बल देती है।

▶ सामाजिक जीवन की पहचान

2.2.2 अकहानी

अकहानी आंदोलन का सूत्रपात 1960 के दशक में 'नई कहानी' के विरोध में हुआ। यह फ्राँस के 'एन्टी स्टोरी मूवमेंट' से प्रभावित आन्दोलन है। इस आन्दोलन की कहानियों में जीवन के प्रति अस्वीकार का भाव वैसे ही दिखता है जैसे अकविता की कविताओं में दिखाई पड़ता है। गंगा प्रसाद विमल की 'प्रश्नचिह्न', दूधनाथ सिंह की 'रीछ', रवींद्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', आदि अकहानी के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं।

▶ 'नई कहानी' के विरोध

अकहानी आंदोलन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. जीवन-मूल्यों का तिरस्कार: अकहानी जीवन मूल्यों को चुनौती देती हुई कुछ नए प्रश्न उपस्थित करती है। यही कारण है कि इसमें भाव-बोध के धरातल पर आत्मपीड़न, ऊब, अकेलापन, अजनबीपन, निरर्थकता बोध, विसंगति आदि का चित्रण दिखाई देता है।
2. परंपरा का पूर्ण नकार: अकहानी पुरानी व्यवस्था से कोई संबंध नहीं रखना चाहती। परम्परा के प्रति उसमें गुस्से भरा नकार-भाव दिखाई देता है।
3. अतिशय आधुनिकता: अकहानी, अतिशय आधुनिकता पर जोर देती है और इसी कारण से वह समाज से कट जाती है। अकहानी 'संबंधहीनता' की स्थितियों को उभारती है। इसमें संबंधों के जिस संसार का चित्रण है, वह बहुत भयावह, तकलीफ़देह और निर्मम है।
4. यौन-उन्मुक्तता: अकहानी में पर-पुरुष या पर-स्त्री के साथ संभोग के दृश्यों का वर्णन विस्तार से हुआ है। इसके अतिरिक्त 'अकहानी' के अन्तर्गत समलैंगिक संपर्क तथा पशु संपर्क की कहानियाँ भी लिखी गईं।
5. शिल्पगत अमूर्तता: शिल्प के स्तर पर, अकहानी आंदोलन पारंपरिक शिल्प का विरोध तो करता ही है, साथ ही नए शिल्प के प्रति भी उदासीन है। यह एक शिल्पहीन आंदोलन है।

▶ जीवन मूल्यों को चुनौती देती

2.2.3 साठोत्तरी कहानी

नई कहानी आंदोलन के बाद की कहानी को सामान्यतः समकालीन कहानी कह दिया जाता है। इसके अंतर्गत कई कहानी आंदोलन सीमित या व्यापक रूप में दिखते हैं। साठोतरी कहानी की प्रमुख धारा अकहानी आंदोलन के रूप में 1960 के दशक में फ्राँस के 'एँटी स्टोरी मूवमेंट

▶ अजनबीपन, निरर्थकता बोध

से प्रभावित है। इस कहानी में जीवन के प्रति अस्वीकार, अजनबीपन, निरर्थकता बोध परंपरा का पूर्ण नकार, यौन उन्मुक्तता, शिल्पगत अमूर्तता जैसे तत्व दिखाई देते हैं। दूधनाथ सिंह की 'रीछ' व रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी' प्रमुख हैं।

▶ पूंजीवादी व साम्प्रदायिक शक्तियों के खोखले चरित्र को उजागर किया

इसी प्रकार का एक आंदोलन समानान्तर कहानी का है। आम आदमी को केंद्र में रखकर इस कहानी ने सामन्तवादी, पूंजीवादी व साम्प्रदायिक शक्तियों के खोखले चरित्र को उजागर किया। कमलेश्वर, कामतानाथ व इब्रहिम शरीफ इस धारा के कहानीकार हैं। आठवें दशक में जनवादी कहानी आंदोलन सामने आया। यह कहानी सर्वहारा पर किये जा रहे शोषण का विरोध करती है। असगर वजाहत, सूरज पालीवाल इस प्रकार के प्रमुख कहानीकार हैं।

▶ स्वतंत्र्योत्तर व वैश्वीकृत भारत के सामाजिक-आर्थिक यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है

साठेतरी कहानी के अंतर्गत अन्य धाराओं में प्रमुख रूप से सचेतन कहानी, सहज कहानी व सक्रिय कहानी की चर्चा की जा सकती है। इन कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर व वैश्वीकृत भारत के सामाजिक-आर्थिक यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि साठेतरी कहानी संवेदना व विषय के स्तर पर अनेक विशिष्टताओं व विविधताओं को धारण करती हुई हिन्दी कहानी को एक नई दिशा दे रही है।

2.2.4 सचेतन कहानी

सचेतन कहानी आंदोलन की शुरुआत 1964 ई में 'आधार' पत्रिका से मानी जाती है। इसके प्रवर्तक महीप सिंह हैं। सचेतन कहानी में माना गया कि 'नयी कहानी' तथा 'अकहानी' के दौर की कहानियाँ संत्रास और निरर्थकता-बोध को इतना अधिक दर्शाती है कि जीवन जीने की इच्छा खत्म होने लगती है। सचेतन कहानी संघर्ष और जागरूकता का समर्थन करती है। महीप सिंह के शब्दों में, 'सचेतन एक दृष्टि है। वह दृष्टि जिसमें जीवन जीया भी जाता है और जाना भी जाता है।' मधुरेश के अनुसार, महीप सिंह, मनहर चौहान, योगेश गुप्त और कुलभूषण सचेतन कहानी के प्रमुख कहानीकार हैं जबकि रामचंद्र तिवारी मधुकर सिंह, योगेश गुप्त, मनहर चौहान, कमल जोशी, हिमांशु जोशी, महीप सिंह को सचेतन कहानीकार मानते हैं।

▶ इसके प्रवर्तक महीप सिंह हैं

2.2.5 समांतर कहानी

सचेतन कहानी की बाद हिन्दी में अकहानी और सहज कहानी आंदोलन भी हुआ। कहानी के विभिन्न आंदोलनों ने साहित्य के विभिन्न मूल्यों में बांट दिया। और कहानी अपने मूल गंतव्य से हट गई उस यथार्थ को प्रस्तुत नहीं कर पा रही थी, जिसको लेकर कहानी ने अपनी विकास यात्रा प्रारंभ की थी। आठवीं दशक में कमलेश्वर ने 'सारिका' पत्रिका का संपादन कार्य आरंभ किया उस दौर में लोग आंदोलन के गुट बंदी से आजिज़ आ चुके थे। उस दौर में कमलेश्वर ने लोगों से वादों से मुक्त होकर कहानी लिखने की बात कहीं।कहानी के संदर्भ में वे प्रतिबद्धता को भी नकार देते हैं, और यह भी आह्वान करते हैं कि यह समांतर कहानी पीढ़ी मुक्त कहानी होगी अर्थात् सभी उम्र एवं विचारधारा के लोग एवं लेखकों के साथ मंच साझा करने की बात कही गई। समांतर कहानी के केंद्र में आम आदमी का संघर्ष पूरी शिद्दत के साथ प्रस्तुत किया जाता है। समांतर कहानी नए मनुष्य एवं समाजवादी समाज की स्थापना के संदर्भ में आम आदमी की चिंता को अपने केंद्र में रखकर चलने का दावा प्रस्तुत करती है। यह वह दौर था, जब पूरे देश में जन आंदोलन हो रहे थे, इंदिरा गांधी एक तानाशाही सरकार भी चला रही थी और जन आंदोलन को कुचल रही थी, इसी दौर में जे पी का संपूर्ण क्रांति

का आंदोलन भी हो रहा था, आम आदमी हाशिए पर पड़ चुका था। उसी दौर में कमलेश्वर 'सारिका' पत्रिका के संपादकीय में लिखते हैं 'इतिहास जब नंगा हो जाता है तो संपूर्ण संघर्ष के अलावा कोई विकल्प नहीं रह जाता है यह पूरा देश एक भयंकर दल बन चुका है और इसे दलदल बनाने वाले लोग परकोटों पर जाकर बैठ गए हैं और दलदल में फंस गए आम आदमी मरण का उत्सव मना रहे हैं' अपनी संवेदनशीलता के माध्यम से कमलेश्वर क्रांति के लिए तैयार खड़े दुविधा रहित आम आदमी की बातचीत को कह रहे हैं। समांतर कहानी आंदोलन में 'सारिका' पत्रिका में समांतर कहानी विशेषांक प्रकाशित होता है इस विशेषांक में भीष्म साहनी की वांग्चु, हृदयेश की गुंजल्क, मणि मधुकर की 'विस्फोटक' जैसी कहानियां प्रकाशित होती है। इस प्रकार कहानी में समांतर कहानी के आंदोलन शुरू हो जाता है इतना ही नहीं समांतर कहानी विशेषांक के रूप में विभिन्न भाषाओं की समांतर कहानी के विशेषांक निकाले गए। और साथ ही देशभर में समांतर कहानी पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। और समानांतर कहानी को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया गया। इन कहानियों का केंद्र बिंदु आम आदमी का जीवन संघर्ष है और मनुष्य नए युग के नए प्रश्नों का सामना कर रहा था यह मनुष्य जो संघर्ष रत है, नए मूल्यों की स्थापना की दिशा में भी प्रयासरत है। और इस आम आदमी के संघर्ष को संपूर्णता के साथ प्रस्तुत करना ही समांतर कहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। इसके अन्य प्रमुख कहानीकार गोविंद मिश्र, जितेंद्र भाटिया, इब्रहिम शरीफ, हिमांशु जोशी, स्वदेश दीपक आदि। प्रमुख कहानियों में सतीश जायसवाल की 'जाने किस बंदरगाह पर', कमलेश्वर की जोखिम, जितेंद्र भाटिया की शहादत नामा, पाल भसीन की सौदा, जैसी कहानियां प्रमुख है। समांतर कहानी वास्तव में एक ऐसा आंदोलन था, जिसने भारतीय कथा साहित्य में पुनः आदमी को स्थापित कर दिया और कहानियों को आम आदमी के संघर्ष से जोड़कर नए तेवर एवं नई हलचल पैदा कर दी।

▶ साहित्य के विभिन्न मूल्य

2.2.6 सहज कहानी

सहज कहानी आंदोलन का प्रारंभ 'नई कहानियाँ' पत्रिका से 1968 ई. से माना जाता है। इस आंदोलन के प्रवर्तक अमृतराय थे। यद्यपि उन्होंने कहा है कि यह कोई 'आंदोलन' नहीं है। सहज कहानी का दावा है कि इतने सारे आंदोलनों द्वारा कहानी पर विचारधाराएँ थोपे जाने के कारण वह मूल 'कथा-रस' समाप्त हो गया जो कहानियों का प्राण तत्व माना जाता है। इसलिए सहज विषयों पर सहज भाषा में कहानी लिखना ही सहज कहानी की माँग है। अमृतराय ने 1968 ई. में 'नई कहानियाँ' पत्रिका का प्रकाशन 'इलाहाबाद' से शुरू किया। यह पहले दिल्ली से प्रकाशित होती थी। अमृतराय के शब्दों में, 'कहानी का लक्ष्य अपने कहानीपन को न खोकर जीवन की प्रस्तुति सहज रूप में करते हुए जीवन के कटु सत्यों और व्यवस्था की भ्रष्टता को उजागर करना है।'

▶ सहज भाषा में कहानी लिखना

2.2.7 सक्रिय कहानी

सक्रिय कहानी आंदोलन का प्रारंभ 'मंच' पत्रिका से 1979 ई. से माना जाता है। इसके प्रवर्तक राकेश वत्स हैं। सक्रिय कहानी में माना गया कि कहानीकारों की समस्याओं का निष्क्रिय प्रस्तुतीकरण नहीं करना चाहिये अपितु उनसे लड़ने का हौसला भी पाठक को देना चाहिये। राकेश वत्स के शब्दों में, 'सक्रिय कहानी का सीधा मतलब है, चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समझ और एहसास की कहानी जो आदमी को बेबसी, निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के ख़िलाफ़ खड़ा होने के

▶ चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी

लिये तैयार करने की ज़िम्मेदारी अपने सर लेती है।' सक्रिय कहानी की अवधारणा में जनवादी कहानी और समांतर कहानी की अवधारणा को सम्मिलित किया गया है।

2.2.8 हिन्दी के प्रमुख कहानीकार

▶ प्रमुख कहानीकार

प्रेमचंद, प्रसाद, जैनेन्द्र, अज्ञेय, मोहन राकेश, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती आदि हिन्दी के प्रमुख कहानीकार हैं।

2.2.9 प्रेमचंद

प्रेमचन्द प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यास-लेखक थे। उनका जन्म 31 जुलाई 1880 में वारणासी जिले में लमही गाँव के एक गरीब परिवार में हुआ। उनका असली नाम धनपतराय था। उनको हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ साहित्यकार माना जाता है। 'कलम के सिपाही' नाम से वे जाने जाते हैं। उनकी पाँच वर्ष की आयु में माता का देहान्त हो गया और चौदह वर्ष की आयु में पिता का निधन हो गया। गरीबी और तज्जन्य मुसीबतें काटते हुए दसवीं दर्जा पास किया। उसके बाद प्राइमरी स्कूल में अध्यापक बने। फिर प्राइवट बी.ए. किया। शिक्षा विभाग में डिप्टी इन्सपेक्टर बने। उन्होंने असहयोग आन्दोलन में भाग लेते हुए सरकारी नौकरी छोड दी। आपका जीवन परिश्रम और निष्ठा का था। आपका अध्ययन व्यापक और गहरा था। आप उपन्यास सम्राट और कहानी सम्राट माने जाते हैं। उन्होंने सर्वप्रथम उर्दु में लिखना प्रारंभ किया। 'सोजेवतन' उनकी पहली रचना है। वे नवाबराय नाम से लिखते थे। बाद में वे हिन्दी में आये और 'प्रेमचन्द' के नाम से लिखने लगे।

▶ कलम के सिपाही

प्रेमचन्द ने उपन्यास, निबन्ध तथा कहानियाँ लिखकर हिन्दी साहित्य भण्डार को संपन्न किया। कर्मभूमि, निर्मला, सेवासदन, गबन, गोदान, प्रेमाश्रम, कायाकल्प, प्रतिज्ञा और रंगभूमि आदि उनके उपन्यास हैं। नवनिधि, सप्तसुमन, सप्त सरोज, प्रेम पच्चीसी, प्रेम तीर्थ, पंच प्रसून आदि पुस्तकों में उनकी कहानियाँ संकलित हैं। 'मानसरोवर' नामक पुस्तक आठ भागों में प्रकाशित हुई हैं। संग्राम, काबा और कर्बला, प्रेम की वेदी आदि उनके नाटक हैं। कलम, तलवार, त्याग, दुर्गादास आदि जीवन चित्र हैं। इस प्रकार विविध प्रकार की रचना से प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य की पर्याप्त अभिवृद्धि की।

▶ साहित्य भण्डार को संपन्न किया

प्रेमचन्दजी गाँधीजी के अनुयायी थे। वे गाँधीजी के आदर्शों को मानते थे। उनकी रचनाओं में उर्दू का प्रभाव है। स्थान-स्थान पर मुहावरों का प्रयोग करके उन्होंने अपनी भाषा को अधिक रोचक बना दिया है। उनकी रचनाओं में आवश्यकतानुसार विदेशी शब्दों और संस्कृत की तत्सम शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। गरीब किसानों का चरित्र चित्रण करने में प्रेमचन्द अतिसमर्थ थे। समाज के गहरे विषयों को अत्यन्त सरल तथा मार्मिक शैली में विवेचन करने में वे सफल हुए हैं। सीधे सादे सरल शब्दों में प्रेमचन्द उनकी रचनाओं को संपुष्ट कर दिया है। प्रेमचन्द बडे देशभक्त थे। देशीय आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया। 8 अक्टूबर 1936 ई. में उनका देहावसान हो गया।

▶ उर्दु का प्रभाव

2.2.10 जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद प्रमुख रूप से कवि और नाटककार थे। उनका जन्म सन् 1889 में काशी के एक संपन्न परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम देवी प्रसाद था। केवल सत्रह वर्ष की आयु में ही उनको परिवार का भार उठाना पडा। वे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। बचपन से ही कविता करने में वे तत्पर थे। उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, काव्य, निबन्ध आदि

की रचनाएँ की। 'काननकुसुम', 'प्रेम-पथिक', 'महाराणा का महत्व', 'चित्राधार', 'लहर', 'कामायनी', 'आँसु', 'झरना' आदि उनके काव्य-ग्रन्थ है। 'कल्याणी परिचय', 'राजश्री', 'अजातशत्रु', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'विशाख', 'जयमेजय का नागयज्ञ', 'सज्जन', 'प्रायश्चित' आदि उनके नाटक हैं। 'तितली', 'कंकाल' आदि उनके उपन्यास हैं। 'आँधी', 'इन्द्रजाल', 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप' आदि उनके कहानी संग्रह हैं। 'काव्य और कला' उनके प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह है।

▶ बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार

प्रसादजी के चित्राधार नामक काव्य-ग्रन्थ में खडीबोली और ब्रजभाषा दोनों की रचनाएँ संकलित हैं। इसके द्वितीय संस्करण में केवल ब्रजभाषा की रचनाएँ रखी गई। प्रसाद का दूसरा कविता-संग्रह 'काननकुसुम' है। इसमें खडीबोली की कविताएँ हैं। प्रेम, प्रकृति, सौन्दर्य आदि इन कविताओं का वर्ण्य-विषय है। 'प्रेम-पथिक' छन्दों में लिखा गया एक छोटा-सा खंड काव्य है। यह प्रसादजी की सर्वप्रथम प्रौढ़ कृति है। प्रसाद का 'आँसु', विरह-भावना का काव्य-रत्न है। लोकप्रियता की दृष्टि से 'आँसु' प्रसाद की सबसे महत्वपूर्ण कृति है। कला-सौष्ठव की दृष्टि से 'आँसु' का महत्व बहुत अधिक है। अलंकारिकता, प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता इसकी कलागत विशेषताएँ हैं।

▶ कलागत विशेषताएँ

प्रसाद की काव्य कृतियों में अन्तिम, और सर्वोत्कृष्ट 'कामायनी' है। उनकी इस कृति में जो भव्यता और गरिमा हैं, वह अन्य कृतियों में नहीं है। प्रसादजी को आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ कवि और महाकवि घोषित करने का आधार 'कामायनी' ही है। इसको हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों की गणना में मूर्धन्य स्थान प्राप्त है। 'कामायनी' इस युग की एक अपूर्व अद्वितीय महान काव्य-कृति है। प्रसादजी की शैली विचारात्मक, गम्भीर और उदात्त है। अर्थ-गांभीर्य और माधुर्य उनकी शैली की अपनी विशेषताएँ हैं। प्रकृति- चित्रण प्रसादजी के काव्य की मुख्य विशेषता है। गद्य रचना में उन्होंने खड़ीबोली को स्वीकार किया। पद्य में उनकी भाषा खड़ीबोली और शुद्ध ब्रजभाषा रही। भाषा की दृष्टि से प्रसादजी का साहित्य महत्वपूर्ण है।

▶ विचारात्मक, गम्भीर और उदात्त शैली

2.2.11 अज्ञेय

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म वर्ष 1911 में हुआ था। इनके पिता पण्डित हीरानन्द शास्त्री पंजाब के करतारपुर (तत्कालीन जालन्धर जिला) के निवासी और वत्स गोत्रीय सारस्वत ब्रह्मण थे। भारत की स्वाधीनता की लड़ाई एवं क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्हें 4 वर्षों तक जेल में तथा 2 वर्षों तक घर में नज़रबन्द रखा गया। इन्होंने बी.एस.सी. करने के बाद अंग्रेजी, हिन्दी एवं संस्कृत का गहन स्वाध्याय किया। 'सैनिक', 'विशाल भारत', 'प्रतीक' और अंग्रेजी त्रैमासिक 'वाक्' का सम्पादन किया। अज्ञेय प्रयोगशील नूतन परम्परा के ध्वज वाहक होने के साथ-साथ अपने पीछे अनेक कवियों को लेकर चलते हैं, जो उन्हीं के समान नवीन विषयों एवं नवीन शैली के समर्थक हैं। अज्ञेय उन रचनाकारों में से हैं जिन्होंने आधुनिक हिन्दी साहित्य को एक नया आयाम, नया सम्मान एवं नया गौरव प्रदान किया। हिन्दी साहित्य को आधुनिक बनाने का श्रेय अज्ञेय को जाता है। अज्ञेय का कवि, साहित्यकार, गद्यकार, सम्पादक, पत्रकार सभी रूपों में महत्वपूर्ण स्थान है। अज्ञेय जी नई कविता के कर्णधार माने जाते हैं। ये प्रत्यक्ष का यथावत् चित्रण करने वाले सर्वप्रथम साहित्यकार थे। देश और समाज के प्रति इनके मन में अपार दुःख था।

▶ नूतन परम्परा के ध्वज वाहक

2.2.12 मोहन राकेश

मोहन राकेश का जन्म 1925 को अमृतसर में हुआ था। इनके पिता वकील थे। फिर भी साहित्य और संगीत में उनकी गहरी अभिरुचि थी। राकेश ने संस्कृत और हिन्दी में एम.ए किया। बम्बई, शिमला, जालन्धर और दिल्ली विशविद्यालय में अध्यापन तथा सारिका का संपादन करने के बाद इन्होंने सम्पूर्ण दायित्वों से मुक्त होकर स्वतन्त्र लेखन का कार्य किया। मोहन राकेश ने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, यात्रा विवरण, जीवनी आदि अनेक गद्य विधाओं में उत्कृष्ट रचना की है। नाटक और कथा साहित्य में उनका आधुनिक भाव बोध बड़ी प्रखरता से मुखरित होता है।

▶ आधुनिक भाव बोध

'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे - अधूरे' आदि नाटक हैं। 'अंडे के छिलके' एकांकी और 'क्वार्टर', 'पहचान', 'वारिस' उनकी कहानियाँ है। 'परिवेश', 'बकलमखुद' - निबन्ध संग्रह, 'आखिरी चट्टान तक' - यात्रा विवरण, 'समय सारथी' - जीवन संकलन है। मोहन राकेश स्वतंत्र प्रकृति के स्वाभिमानी व्यक्ति थे। इसलिए व्यवस्था के कठोर अनुशासन को वे हमेशा खटकते रहते थे। यही कारण था कि जीवन में उन्होंने अनेक नौकरियाँ की और उसे छोड़ा। 1972 को हृदय - गति रुक जाने के कारण उनका देहान्त हो गया। 'जानवर और जानवर', 'मलबे का मालिक', 'मवाली', 'आर्द्र' और 'एक और जिन्दगी' उनकी सबसे महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं।

▶ स्वतंत्र प्रकृति के स्वाभिमानी व्यक्ति

2.2.13 कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबती (1925-2019 ई.) अपनी लम्बी कहानी 'मित्रो मरजानी' (इसे लघु उपन्यास भी कहा गया है) के प्रकाशन के साथ हिन्दी-कथा साहित्य में सहसा चर्चित हो उठी थीं। 'मित्रो' के रूप में हिन्दी कहानियों में पहली बार एक ऐसे नारी पात्र की सृष्टि हुई है, जिसमें देहधर्म के उफनते ज्वार के सहज स्वीकार की सम्पूर्ण साहसिकता है। 'बादलों के घेरे' (1980 ई.) आपका एक और कहानी-संग्रह है। इनकी प्रायः सभी कहानियाँ 'नयीकहानी' के दौर की हैं। इनकी एक कहानी 'सिक्का बदल गया' भारत-पाक विभाजन के दर्द को उसकी पूरी-गहनता में उकेरने वाली कहानी है। 'नयीकहानी' के दौर में लिखी जाने पर भी इन कहानियों में नयी कहानियों की रूढ़ियों का कोई प्रभाव नहीं है। आपकी कहानियाँ मानवीय मूल्यों के टूटने के दर्द की कहानियाँ हैं। परिवेश का यथार्थ चित्रण, पंजाब की धरती की गंध और ऊष्मा तथा पात्रों की खुली साहसिक मानसिकता आपकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

▶ मानवीय मूल्यों के टूटने के दर्द की कहानियाँ

आकाशदीप - जयशंकर प्रसाद (कहानी)

प्रसाद की आकाशदीप कहानी विशिष्ट कहानियों में से गिनी जाती है। इस कहानी में एक असफल प्रेम कहानी को अत्यंत मार्मिक ढंग से उकेरा गया है। प्रसाद स्वयं एक आदर्शवादी कवि माने जाते हैं और उनकी यही आदर्शवादिता हमें आकाशदीप कहानी में देखने को मिलती है। आकाशदीप कहानी में जयशंकर प्रसाद की स्वछंदतावादी दृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है। यह नायिका प्रधान प्रेम कहानी है। इसमें समुद्री जीवन को ऐतिहासिक परिवेश में चित्रित किया गया है। कहानी में मानवीय प्रेम को स्पष्ट करते हुए एक आदर्श प्रेम को स्थापित किया गया है। कहानी की नायिका एक त्याग की मूर्ती के रूप में हमारे सामने आती है।

▶ जयशंकर प्रसाद की स्वछंदतावादी दृष्टि

कहानी नाव में बन्दी जनों से शुरू होती हैं जहाँ कहानी की नायिका चम्पा सहित कुछ

जलदस्यु मणिभद्र द्वारा बंदी बने होते है। कुछ ही देर बाद बन्दी खुद को मुक्त कर लेते हैं और मुक्ति का श्रेय जलदस्यु बुधगुप्त को जाता है। मुक्ति उपरांत वे एक द्वीप पर निवास करने लगते हैं, जिस द्वीप का नाम चम्पादीप सुझाया जाता है। यहीं चम्पा और बुधगुप्त का प्रेमालाप प्रारंभ होता है। बुद्धगुप्त चम्पा को परिणय का प्रस्ताव रखता है। परंतु चम्पा परिणय के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है और गुप्त को स्वदेश लौटने को कहती है। चम्पा गुप्त को अपने पिता का हत्यारा समझती है। चम्पा अपने कर्तव्यों के सामने अपने प्रेम का बलिदान कर देती है और आजीवन समुद्री दस्युओं को प्रकाश के लिए दीप प्रज्वलित करती है।

▶ कहानी नाव में बन्दी जनों से शुरू होती है

'आकाशदीप' कहानी में पिता और प्रगाढ़ प्रेमानुभूति का द्वंद्व दिखाई देता है। परस्पर विरोधी मानसिक प्रवृतियों और सघन अंतर्द्वन्द्व का चित्रण प्रसाद की कई कहानियों में मिलता है। मानसिक द्वंद्व के चित्रण में प्रसाद को 'आकाशदीप' कहानी में पूरी सफलता मिली है। प्रसाद की प्रारंभिक कहानियों में प्रेम और करुणा की, त्याग और बलिदान की, दार्शनिकता और काव्यात्मकता का, भावुकता और चित्रात्मकता की प्रधानता रही है परंतु आकाशदीप तक आते आते भावुकता और चित्रात्मकता की जगह मनोविज्ञान महत्वपूर्ण हो जाता है। यह कहानी इतिहास और कल्पना के सुन्दर समन्वय पर आधारित है। भाषा संस्कृत शब्दावली से युक्त शुद्ध साहित्यिक भाषा है। कहानी का उद्देश्य देश-प्रेम और मानव प्रेम को स्पष्ट करना रहा है।

▶ परस्पर विरोधी मानसिक प्रवृतियों और सघन अंतर्द्वन्द्व का चित्रण

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

वर्तमान समय में कहानी एक सर्वप्रसिद्ध साहित्यिक विधा है। इस युग की कहनियों में दौड़-धूप भरी ज़िन्दगी के किसी एक निश्चित पहलू या क्षण की कथा समाहित रहती है। युग की बौद्धिकता और सूक्ष्मचिन्तन की प्रवृत्ति के अनुरूप ही कहानियाँ भी दिन प्रतिदिन सूक्ष्म और बौद्धिक होती जा रही हैं। इनमें प्रतीकात्मकता को विशेष प्रश्रय दिया जा रहा है। कहानियों की कोई निश्चित दिशा भी नहीं हैं। कहानीकार किसी भी घटना या अनुभूति के किसी भी क्षण को लेकर, संवेदनात्मक स्तर पर चित्रित करने के लिए सर्वथा स्वच्छन्द है। पहले की कहानियों की भाँति वर्तमान कहानियों में न तो पात्रों की बहुलता होती है और न ही घटनाओं की। कथावस्तु की सूक्ष्मता और प्रतीकात्मकता की दृष्टि से आये दिन कहानियों की दिशा में नवीन प्रयोग होते देखे जा रहे हैं। वर्तमान कहानी कला नयी कहानियों से भी आगे बढ़कर अकहानी की पदवी पाने को लालायित है। नयी कविता या अकविता की भाँति कहानी भी वर्तमान साहित्यिक प्रयोगों का बहुत बड़ा माध्यम है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों के बारे में टिप्पणी तैयार कीजिए।
2. कहानी की विभिन्न विधाओं को परिचय दीजिए।
3. प्रेमचंद और प्रसाद के बारे में टिप्पणी लिखिए।
4. समान्तर कहानी और सचेतन कहानी का अंतर बताईए।
5. कृष्णा सोबती का परिचय दीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास - रामस्वरूप चतर्वेदी
2. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार - द्वारिका प्रसाद सक्सेना
3. हिन्दी निबंध के विकास - डॉ. ओमकांत शर्मा
4. निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी - सं. गणपतिचन्द्र गुप्त

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. गद्य की विवध विधाएँ - मजिदा आजाद
2. हिन्दी गद्य साहित्य - डॉ. रामचन्द्र तिवारी
3. साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ - डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया
4. प्रेमचन्द और उनका युग - डॉ. रामविलास शर्मा

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 3

हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी उपन्यास के बारे में समझता है
- हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव और विकास के बारे में अवगत होता है
- हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार के बारे में परिचय प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

उपन्यास का उद्‌गम स्थान अति प्राचीन काल से चली आयी हुई कथा-कहानियाँ हैं। मनुष्य में यह एक आदिम प्रवृत्ति रही है कि वह सत्य अथवा काल्पनिक कथाओं को सुनने अथवा सुनाने में मनोरंजन अनुभव करता है। ये कथा-कहानियाँ उसकी कुतूहल वृत्ति को शान्त करती है। कहना न होगा कि कथा-कहानियों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं मनुष्य-समुदाय। जैसे-जैसे मनुष्य की सामाजिक अवस्था में विकास होता गया, वैसे-वैसे इन कथा-कहानियों के प्रस्तुतीकरण के ढंग में भी परिवर्तन होते गये। कुतूहल-वृत्ति की मात्रा आदिम मनुष्य में अधिक थी और फिर धीरे-धीरे वह कम होती गयी। आज का मनुष्य उन 'दैविक' अथवा प्रकृति सम्बन्धी बातों से स्तम्भित नहीं होता जो किसी दिन आदिम मनुष्य को कौतूहल में डाल देती थी। कहने का अभिप्राय यह है कि वर्तमान युग में, बौद्धिकता ने, मनुष्य की कुतूहल-वृत्ति को कम कर दिया है, अतः आज वे ही कथा-कहानियाँ समाज में प्रचलित हो सकती हैं, जिनके पीछे बौद्धिक धरातल है। उपन्यास, वर्तमान में मनुष्य की इसी बौद्धिक क्षुधा को तृप्त करता है। वह मनुष्य के विकास के साथ-साथ विकसित होने वाली कथा-कहानी की परम्परा का एक सुगठित रूप है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

'भाग्यवती', 'परीक्षा गुरु', मनोरंजन, जासूसी उपन्यास, औपन्यासिक तत्व

Discussion / चर्चा

उपन्यास गद्यलेखन की एक विधा है। उपन्यास का अर्थ होता है-सामने रखना। अर्थात् उपन्यास वह विधा है जिसमें मानव जीवन के किसी तत्व को उक्ति उक्त रूप में समन्वित कर रखा जाये। उपन्यास को मानव जीवन का प्रतिबिंब भी कह सकते है। वस्तुतः उपन्यास में एक विस्तृत कथा होती है जो अपने भीतर अन्य गौण कथाएँ समेटे रहती हैं। इस कथा के भीतर समाज और व्यक्ति की विविध अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ, अनेक प्रकार के दृश्य और घटनाएँ और बहुत प्रकार के चरित्र हो सकते हैं और यह कथा विभिन्न शैलियों में कही जा सकती है। उपन्यासों में, साहित्य के पूर्ववर्ती रूपों की तुलना में कहीं अधिक। न केवल कहानियाँ ही अधिक व्यक्तिगत हैं, बल्कि उन्हें पढ़ने का अनुभव भी अधिक व्यक्तिगत है। जहाँ

महाकाव्य, कविता और कहानी कहने के समान रूपों को सार्वजनिक रूप से पढ़ने या दर्शकों के रूप में उपभोग करने के लिए डिज़ाइन किया गया था, उपन्यास व्यक्तिगत पाठक के लिए अधिक तैयार किए गए हैं।

2.3.1 हिन्दी उपन्यास

उपन्यास किसी भी साहित्य की एक लोकप्रिय विधा है। प्रेमचंद्र ने उपन्यास के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि, मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूं। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।

बाबू गुलाब के अनुसार, "उपन्यास जीवन का चित्र हैं, प्रतिबिंब नहीं। जीवन का प्रतिबिंब कभी पूरा नही हो सकता है। मानव-जीवन इतना पेचीदा है कि उसका प्रतिबिंब सामने रखना प्रायः असंभव है।

उपन्यासकार जीवन के निकट से निकट आता हैं, किन्तु उसे भी जीवन में बहुत कुछ छोड़ना पड़ता है, किन्तु जहाँ वह छोड़ता हैं वहाँ अपनी ओर से जोड़ता भी हैं।"

▶ विभिन्न विद्वानों के मत

श्यामसुन्दर दास के अनुसार, "उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा हैं।"

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उदय अंग्रेजी उपन्यास के बाद हुआ लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इससे पहले भारत में उपन्यास जैसी विधा नहीं थी। संस्कृत, पालि, प्राकृत अपभ्रंश आदि में अनेक नीति कथाएँ मिलती हैं जिनमें उपन्यास विधा के अनेक तत्व मिलते हैं। लेकिन हम उनको उपन्यास नहीं कह सकते। वास्तव में, उपन्यास का विकास पहले यूरोप में हुआ। बाद में बांग्ला के माध्यम से यह हिन्दी साहित्य में आयी। लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु'(1888) इंशा अल्ला खाँ द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी' तथा श्रद्धा राम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' आदि कुछ ऐसी रचनाएँ हैं जिन्हें हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना जाता है।'

▶ उपन्यास का विकास यूरोप में हुआ

2.3.2 हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम

हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम को तीन भागों में बांटा जा सकता है।

1. प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास
2. प्रेमचंदयुगीन हिन्दी उपन्यास
3. प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

आधुनिक काल में विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी उपन्यास के विकास का श्रेय अंग्रेजी एवं बंगला उपन्यासों को दिया जा सकता है क्योंकि हिन्दी में इस विधा का श्रीगणेश अंग्रेजी एवं बंगला उपन्यासों की लोकप्रियता से हुआ। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में प्रकाशित एक निबन्ध 'उपन्यास-रहस्य' में इस बात को स्वीकार किया है कि उपन्यास के प्रचलन, विकास एवं सृजन का श्रेय पश्चिमी देशों के लेखकों को ही है जिनसे प्रेरणा लेकर हिन्दी में भी उपन्यास रचना की जाने लगी है। बालकृष्ण भट्ट ने भी इसकी पुष्टि करते हुए लिखा, 'हम लोग जैसा और बातों में अंग्रेजों की नकल करते जाते हैं, उपन्यास का लिखना भी उन्हीं के दृष्टान्त पर सीख रहे हैं।' हिन्दी में उपन्यास का आरम्भ भी अंग्रेजी से अनूदित उपन्यासों से माना जाता है। सन् 1853 ई. में वंशीधर द्वारा थॉमस डे के लोकप्रिय उपन्यास 'सैण्डफोर्ड एण्ड मर्टन' का अनुवाद किया गया तथा डॉ. जानसन के

▶ उपन्यास के प्रचलन, विकास एवं सृजन का श्रेय पश्चिमी देशों के लेखकों को ही है

उपन्यास 'रासेलास' का हिन्दी अनुवाद सन् 1879 ई. में किया गया।

हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा है। इस सम्बन्ध में, जिन दो उपन्यासों का नाम लिया जाता है, वे हैं- श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' (सन् 1877 ई.) तथा लाला श्रीनिवासदास द्वारा रचित 'परीक्षा गुरु' (सन् 1882 ई.)। इनमें से प्रथम उपन्यास में सुधारवादी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है तथा द्वितीय उपन्यास में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठ प्रमाणित करते हुए उपदेशवृत्ति का आधार ग्रहण किया गया है।

हिन्दी का प्रथम उपन्यास कौन सा है इस सम्बन्ध में निम्न नामों का उल्लेख विद्वानों ने किया है:

1. परीक्षा गुरु (1882 ई.) - लेखक लाला श्री निवासदास।
2. देवरानी जेठानी की कहानी (1870 ई.) लेखक पं. गौरीदत्त।
3. निस्सहाय हिन्दू (1890 ई.) - लेखक राधाकृष्णदास।
4. भाग्यवती (1877 ई.)- श्रद्धाराम फुल्लौरी।

▶ हिन्दी का प्रथम उपन्यास

यदि कालक्रम की दृष्टि से विचार करें तो 'भाग्यवती' (1877 ई.) हिन्दी का पहला उपन्यास है, किन्तु इसमें औपन्यासिक तत्व पूर्णतः विद्यमान नहीं हैं जबकि 'परीक्षा गुरु' (1882 ई.) में औपन्यासिक तत्व हैं अतः 'परीक्षा गुरु' को ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी का पहला उपन्यास माना है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्वयं लाला श्रीनिवासदास अपनी रचना 'परीक्षा गुरु' को उपन्यास नहीं मानते।

▶ हिन्दी उपन्यास के विकासक्रम

भारतेन्दु युग में ही ऐसी स्थिति बनने लगी थी कि लेखकों को एक नई विधा की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। दरअसल वे अपनी पूरी-पूरी बात खुलकर नहीं कह पा रहे थे। कविता, निबन्ध, नाटक, प्रहसन आदि साहित्य की अन्यान्य विधाएँ युगीन चेतना को पूरी तरह प्रस्तुत करने में असफल साबित हो रही थीं। ऐसी दशा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ध्यान उपन्यास विधा की तरफ गया। वे बंगला उपन्यासों से परिचित थे और उसी तर्ज़ पर हिन्दी में भी उपन्यास लेखन चाहते थे। उनके प्रयास से उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और कुछ उपन्यास हिन्दी में भी लिखे गए। वे खुद भी उपन्यास लिखना चाहते थे,पर शुरुआती पृष्ठ ही लिख सके। उन्होंने अपने उपन्यास का नाम रखा था- एक कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' परम्परा बंगला के प्रभाव से प्रारम्भ हुई। भारतेन्दु युग में ही उपन्यास लेखन की नींव रखी जा चुकी थी, पर उसे प्रेमचन्द युग में सही रूपाकार और व्यापकता मिली। प्रेमचन्द के लेखन के सम्बन्ध में हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा दुःख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं,तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।"

▶ भारतेन्दु युग में ही उपन्यास लेखन की नींव रखी जा चुकी थी

2.3.3 हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास

आधुनिक हिन्दी साहित्य में उपन्यास नामक विधा का जो रूप प्राप्त हुआ है वह प्राचीन संस्कृत साहित्य से किसी भी प्रकार से संबंधित नहीं माना जाता। उपन्यास का उद्भव और विकास यूरोप से हुआ है। हिन्दी का प्रथम उपन्यास इसे स्वीकार किया गया है इस संदर्भ में लाला श्रीनिवास द्वारा रचित 'परीक्षा गुरु' इंशा अलला खाँ रचित 'रानी केतकी की कहानी' और श्रद्धा राम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' आदि आरंभिक उपन्यास है। आजकल यह गद्य विधा काफी लोकप्रिय हो चुकी है।

▶ उपन्यास का उद्भव और विकास यूरोप से हुआ

1. प्रेमचंद पूर्व युग

भारतेंदु से पूर्व श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवती' नामक उपन्यास लिखा जिसमें बीज रूप से उपन्यास के सभी गुण दिखाई दिए। हिन्दी में बांग्ला उपन्यासों के अनुकरण पर श्रीनिवास दास ने 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास लिखा। आगे चलकर राधा कृष्ण दास ने 'निस्सहाय हिंदू', बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी', 'एक अजान एक सुजान' उपन्यास लिखा लेकिन इस काल में अनुवाद की ओर अधिक ध्यान दिया गया। द्विवेदी युग में उपन्यास लेखन जोर पकड़ने लगा। अनुवाद की प्रवृत्ति तो अभी भी विद्यमान थी विशेषकर देवकीनंदन खत्री द्वारा रचित उपन्यास 'चंद्रकांता' काफी लोकप्रिय हुआ लोगों ने इस उपन्यास को पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। किशोरी लाल गोस्वामी ने तो इस प्रकार के जासूसी और पुलिस उपन्यासों का ढेर लगा दिया। अयोध्या सिंह उपाध्याय के दो उपन्यास 'हिन्दी का ठठ' तथा 'अधखिला फूल' उपन्यास लिखे।

▶ देवकीनंदन खत्री द्वारा रचित उपन्यास 'चंद्रकांता' काफी लोकप्रिय हुआ

2. प्रेमचंद युग

उपन्यास जगत में प्रेमचंद का आगमन एक विशेष उपलब्धि मानी जाती है उन्होंने तिलस्मी और जासूसी की पिटारी को बंद कर हिन्दी उपन्यासों को मुक्त किया और सामान्य जनजीवन से उपन्यास को जोड़ा। प्रेमचंद ने उपेक्षित नारी जाति तथा मज़दूरों और किसानों की व्यथा कथा का यथार्थ रूप में वर्णन किया। अब उपन्यासों की स्वस्थ परंपरा का प्रचलन होने लगा। कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, देशकाल, भाषा की दृष्टि से उपन्यास लिखे जाने लगे। 'सेवासदन', 'निर्मला', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'गबन', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि', 'गोदान' आदि प्रेमचंद के उपन्यास हैं। दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति, रिश्वतखोरी, असहयोग आंदोलन, किसानों पर भी प्रेमचंद ने अनेक उपन्यास लिखे। गोदान प्रेमचंद का ही नहीं अपितु हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। उपन्यासकार ने ग्राम जीवन के संदर्भ में ज़मींदारी प्रथा पर प्रकाश डाला है। गोदान का होरी भारतीय किसान का प्रतिनिधि पात्र है उसी के द्वारा प्रेमचंद ने किसानों की स्थिति को दर्शाया है। और उपन्यासकारों में विश्वंभर नाथ शर्मा, जयशंकर प्रसाद, वृंदावनलाल वर्मा, सियाराम शरण गुप्त आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। 'माँ', 'भिखारिणी', 'इरावती', 'कंकाल', 'तितली', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी' इस समय के और उपन्यास हैं। वर्मा ने सामाजिक उपन्यास लिखे हैं, जयशंकर प्रसाद ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे।

▶ गोदान हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है

3. प्रेमचन्दोत्तर युग

इस युग में हिन्दी उपन्यास का अत्यधिक विकास हुआ। इसमें सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक उपन्यास काफी संख्या में लिखे गए। आचार्य चतुरसेन शास्त्री इस युग के उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास', 'वैशाली की नगर वधू' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। दूसरे प्रमुख साहित्यकार हैं पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', 'चंद हसीनों के खतूत', 'दिल्ली का दलाल', 'बुधवा की बेटी' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। भगवतीचरण वर्मा ने चित्रलेखा उपन्यास लिख कर हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'भूले बिसरे चित्र', 'सबहिं नचावत राम गोसाई' आदि इनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं। अब उपन्यासकार व्यक्ति विशेष के बारे में भी रुचि लेने लगे। परिणाम स्वरूप मनोविश्लेषणात्मक की परंपरा का श्री गणेश हुआ। जोशी ने 'सन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'पर्दे की रानी', 'निर्वासित' आदि उपन्यास लिखे। इसी परंपरा को आगे बढ़ाकर जैनेंद्र कुमार ने भी 'सुनीता', 'सुखदा', 'त्याग पत्र' आदि उपन्यास लिखे। इनके बाद में

सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय' द्वारा रचित 'शेखर एक जीवनी' मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। मार्क्सवादी चिंतन से प्रभावित लेखकों में यशपाल, राहुल, सांकृत्यायन आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड', 'देशद्रोही', 'दिव्या' आदि यशपाल जी के प्रगतिवादी उपन्यास हैं। जिन पर मार्क्सवाद के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। वहीं यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच' स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात के भारत का वर्णन करता है, कहा जाए तो देश विभाजन की कथा इसके अंदर है। राहुल जी के उपन्यास 'योद्धा', 'सिंह सेनापति', 'मधुर', 'स्वप्न', 'विस्मृत यात्री' आदि उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इसके अलावा उपेंद्र नाथ अश्क, रांगेय राघव आदि उपन्यासकारों के नाम गिनाए जा सकते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चंद्रलेखा'। इसके बाद आंचलिक उपन्यासों की परंपरा शुरू हुई। इस क्षेत्र में फणीश्वर नाथ रेणु, नागार्जुन, उदय शंकर भट्ट, अमृतलाल नागर, देवेंद्र सत्यार्थी आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। हिन्दी उपन्यास लेखन में आशातीत वृद्धि हुई इस युग में नई पीढ़ी के उपन्यासकार सामने आए। आधुनिक पीढ़ी के उपन्यासकारों में मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, श्री लाल शुक्ला, श्रीमती मन्नू भंडारी, लक्ष्मीनारायण लाल, आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं।

▶ भगवती चरण वर्मा के 'चित्रलेखा' उपन्यास ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नई दिशा दी

2.3.4 हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार

श्रद्धाराम फुल्लौरी एवं लाला श्रीनिवासदास के उपन्यासों के अतिरिक्त इस काल में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, जासूसी उपन्यासों की रचना अधिक हुई है, जिनका जनजीवन से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। तिलस्मी उपन्यासों में यद्यपि प्रेम चित्रण का अवसर भी आ गया है, किन्तु उपन्यासकारों का मूल उद्देश्य रहस्य-रोमांच की ऐयारी एवं तिलस्मी दुनिया में ले जाकर पाठकों को चमत्कृत करना मात्र रहा है। इस काल के प्रमुख उपन्यासकारों में पण्डित बालकृष्ण भट्ट को माना जा सकता है। इनके लिखे तीन उपन्यास 'रहस्यकथा' (1879 ई.), 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886 ई.) तथा 'एक अजान सौ सुजान' (1892) उल्लेखनीय हैं। इनके उपन्यासों का मूल स्वर सुधारवादी एवं उपदेशमूलक है।

▶ उपन्यासकारों का मूल उद्देश्य पाठकों को चमत्कृत करना मात्र रहा है

भारतेन्दु जी के मित्र ठाकुर जगमोहन सिंह ने 'श्यामा स्वप्न' नामक एक उपन्यास की रचना सन् 1888 में की। इसका प्रमुख प्रतिपाद्य राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण रीतिकालीन पद्धति पर करना रहा है। लज्जाराम मेहता ने सुधारवादी ढंग पर 'धूर्त रसिकलाल' (1899 ई.), 'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी' (1899 ई.), 'बिगड़े का सुधार' (1907 ई.) तथा 'आदर्श हिन्दू' (1907 ई.) इन चार उपन्यासों की रचना की। इनमें दुर्व्यसनों एवं सामाजिक बुराइयों के परिणामों को चित्रित कर पाठकों को उपदेश दिया गया है। राधाकृष्ण दास ने 'गोवध' की समस्या का निवारण करने हेतु 'निस्सहाय हिन्दू' (1890 ई.) नामक उपन्यास लिखा।

▶ राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यासकारों में जिस उपन्यासकार का नाम सर्वाधिक आदर से लिया जाता है वे हैं बाबू देवकीनन्दन खत्री। इन्होंने तिलस्मी एवं ऐयारी उपन्यासों की रचना करके पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन किया। ऐसा कहा जाता है कि देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही बहुत से अहिन्दी भाषियों ने हिन्दी सीखी। इनके लिखे प्रसिद्ध उपन्यास हैं- 'चन्द्रकान्ता' (1891 ई.), 'चन्द्रकान्ता सन्तति', 'काजर की कोठरी', 'भूतनाथ', 'कुसुम कुमारी', 'नरेन्द्र मोहिनी', 'वीरेन्द्र वीर' आदि। इन उपन्यासों में घटनाओं का संयोजन इतनी कुशलता से किया गया है कि पाठक की कुतूहल वृत्ति अंत तक जाग्रत रहती है और वह अंत

▶ पाठकों का भरपूर मनोरंजन

तक उपन्यास के जादू में बँधा रहता है। भले ही साहित्यिक दृष्टि से ये उपन्यास उच्च कोटि के न हों, किन्तु पाठकों को बाँधने की इनकी शक्ति बेजोड़ है। खत्री जी के उपन्यासों ने पाठकों का भरपूर मनोरंजन किया है इसमें दो राय नहीं है।

जासूसी उपन्यासों का श्रीगणेश करने का श्रेय हिन्दी में गोपालराम गहमरी को दिया जा सकता है। वे अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास लेखक आर्थर कानन डायल से बेहद प्रभावित थे। गहमरी जी के उपन्यासों में प्रमुख हैं- 'सरकटी लाश' (1900 ई.), 'जासूस की भूल' (1901 ई.), 'जासूस पर जासूसी' (1904 ई.), 'गुप्त भेद' (1913 ई.), 'जासूस की ऐयारी' (1914 ई.) आदि। इन उपन्यासों ने विशुद्ध मनोरंजन का ही कार्य किया है।

▶ हिन्दू समाज की कुरीतियों पर प्रहार

जासूसी उपन्यासों में किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'जिन्दे की लाश', 'तिलस्मी शीशमहल', 'लीलावती', 'याकूती तख्ती' आदि उल्लेखनीय हैं। गोस्वामी जी ने कुछ सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं जिनमें समाज सुधार पर विशेष बल दिया गया है। द्विवेदीयुगीन उपन्यासकारों में अयोध्यासिंह उपाध्याय का नाम भी आदर से लिया जाता है। उनके लिखे दो उपन्यास हैं 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (1899 ई.) तथा 'अधखिला फूल' (1907 ई.)। प्रथम उपन्यास में हिन्दू समाज की कुरीतियों पर प्रहार किया गया है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी उपन्यास साहित्य आधुनिक युग की देन है। आधुनिक युग में शुरू होकर उपन्यास साहित्य ने जिस ऊँचाई को प्राप्त किया है, अन्य गद्य विधाओं ने नहीं। इसका सीधा-सा कारण है कि उपन्यास में रचनाकार को अपनी बात कहने का अवकाश मिलता है। सामाजिक हलचलों के साथ चलने वाली गद्य की यह अनोखी विधा है। आज यह नए-नए रूपों में पुष्पित-पल्लवित हो रही है। इस क्षेत्र में कई उपन्यास पौराणिक विषय को आधुनिक सन्दर्भ देते हुए लिखे गए तो कई आधुनिक विषय को भिन्न-भिन्न स्वरूप देते हुए। समकालीन समय में काशीनाथ सिंह, मंजूर एहतेशाम, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, विनोदकुमार शुक्ल, मनोहरश्याम जोशी, संजीव, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी, जया जादवानी, मधु कांकरिया आदि उपन्यास लेखन में सक्रिय हैं। समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य आदिवासी विमर्श को भी अपने केन्द्र में रखता है। इन उपन्यासों में आदिवासियों का जंगल-जमीन से जुड़ाव, उन्हें जंगल-ज़मीन से दूर करने के सरकारी पैतरों और उनकी अस्मिता से जुड़े प्रश्न उठाए गए हैं।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा पर टिप्पणी लिखिए।
2. हिन्दी उपन्यास के उद्भव और विकास के बारे में अपना मत प्रकट कीजिए।
3. हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकारों के बारे में टिप्पणी तैयार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार - द्वारिका प्रसाद सक्सेना
2. हिन्दी निबंध के विकास - डॉ. ओमकांत शर्मा
3. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास - रामस्वरूप चतर्वेदी
4. निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी - सं. गणपतिचन्द्र गुप्त

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. गद्य की विवध विधाएँ - मजिदा आजाद
2. हिन्दी गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ - डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया
4. प्रेमचन्द और उनका युग - रामविलास शर्मा

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 4

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार - यशपाल, जैनेंद्र कुमार, भीष्म साहिनी, फणीश्वरनाथ रेणु

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- प्रेमचंद युगीन हिन्दी उपन्यास के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास के बारे में अवगत होता है
- हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार के बारे में समझता है
- यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, भीष्म साहिनी, फनीश्वरनाथ रेणु आदि उपन्यासकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

उपन्यास हिन्दी गद्य की एक आधुनिक विधा है। इस विधा का हिन्दी में प्रादुर्भाव अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव स्वरूप हुआ। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इससे पहले भारत में उपन्यास जैसी विधा थी ही नहीं। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि में अनेक नीति कथाएँ तथा आख्यान मिलते हैं जिनमें उपन्यास विधा के अनेक तत्व मिलते हैं। लेकिन हम उनको उपन्यास नहीं कह सकते। सच्चाई तो यह है कि इस विधा का उद्भव और विकास पहले यूरोप में हुआ। बाद में बांग्ला के माध्यम से यह विधा हिन्दी साहित्य में आयी।

Keywords / मुख्य बिन्दु

युगप्रवर्तक, कलात्मक अभिव्यक्ति, पददलित, आशा-आकांक्षा, राष्ट्रीय आंदोलन, कृषक समस्या

Discussion / चर्चा

2.4.1 प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास

प्रेमचंदयुगीन हिन्दी उपन्यासकारों में 'प्रेमचंद' (1880- 1936 ई.) अपनी महान प्रतिभा के कारण युगप्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। वस्तुतः सही अर्थो में उन्होंने ही हिन्दी उपन्यास शिल्प का विकास किया। उनके उपन्यासो में पहली बार सामान्य जनता की समस्याओं की कलात्मक अभिव्यक्ति की गयी थी और जनजीवन का प्रामाणिक एवं वास्तविक चित्र पाठकों को देखना सुलभ हुआ था। प्रेमचंद के उपन्यास राष्ट्रीय आंदोलन, कृषक समस्या, मानवतावाद, भारतीय संस्कृति, शोषण, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, आदि विविध विषयों से सम्बन्धित हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रेमचंद का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, 'प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज़ थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुःख- सुख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल

- प्रेमचंद के उपन्यास विविध विषयों से सम्बन्धित हैं

सकता।'

प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यासों में हैं- सेवासदन (1918 ई.), प्रेमाश्रम (1922 ई.), रंगभूमि (1925 ई.), कायाकल्प (1926 ई), निर्मला (1927 ई.) गबन (1931 ई.), कर्मभूमि (1933 ई.) और गोदान (1935 ई.)।

प्रेमचंद ने हिन्दी कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से ऊपर उठाकर जीवन के साथ जोड़ने का काम किया। वस्तुतः 'सेवासदन' के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी उपन्यास को नई दिशा प्राप्त हो गयी। इस उपन्यास में उन्होंने विवाह से जुड़ी समस्याओं-दहेज प्रथा, कुलीनता का प्रश्न, पत्नी का स्थान आदि को उठाया है किन्तु इन्हें प्रस्तुत करने का ढंग पूर्ववर्ती उपन्यासों से एकदम अलग है। 'निर्मला' में उन्होंने दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया है। कृषक जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण उन्होंने 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' में किया है। 'गोदान' उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा जाता है। ग्रामीण जीवन का ऐसा यथार्थ एवं प्रामाणिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ कि इसे सर्वत्र सराहना प्राप्त हुई है। समाज में व्याप्त छुआछूत एवं साम्प्रदायिकता की समस्या को भी उन्होंने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी है। इस प्रकार प्रेमचंद के उपन्यास जीवन के विविध पहलुओं से जुड़े हुए हैं। वे हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार माने जाते हैं। विषयवस्तु एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से प्रेमचंद के समकक्ष हिन्दी का कोई अन्य उपन्यासकार को खड़ा नहीं किया जा सकता। प्रेमचंद के उपन्यासों में विषय की विविधता एवं व्यापकता के साथ-साथ चरित्रों का स्वाभाविक विकास दिखाया गया है। उनके उपन्यासों में राजनीतिक समस्याओं का निरूपण भी किया गया है। 'रंगभूमि' में शासक वर्ग के अत्याचारों का चित्रण है तो 'कर्मभूमि' में स्वतंत्रता संग्राम की एक झलक है। 'गबन' में उन्होंने स्त्रियों के आभूषण प्रेम के दुष्परिणामों का चित्रण किया है तो 'कायाकल्प' 'पुनर्जन्म' से सम्बन्धित है। प्रेमचंद के उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता है- आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, जिसके कारण वे पाठकों में अति लोकप्रिय हुए हैं। भाषा प्रयोग में वे अपने समकालीन सभी उपन्यासकारों से श्रेष्ठ हैं और इस दृष्टि से वे एक मानदण्ड बन गये हैं। अपनी इन विशेषताओं के कारण ही वे हिन्दी उपन्यास में एक नये युग का सूत्रपात कर सकने में सफल हुए हैं।

▶ हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार

प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', वृंदावन लाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, जी.पी. श्रीवास्तव आदि प्रमुख हैं। 'प्रसाद' जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने काव्य, नाटक आदि क्षेत्रों में सफलता पाने के साथ-साथ उपन्यासों की रचना करके भी ख्याति अर्जित की। उन्होंने 'कंकाल' (1929 ई.) 'तितली' (1934), नामक 'उपन्यासों' की रचना की। 'इरावती' नामक एक अधूरा उपन्यास भी उन्होंने लिखा है जिसे वे अपनी अकाल मृत्यु के कारण पूरा नहीं कर सके। 'कंकाल' में प्रसादजी ने व्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थन किया है जबकि 'तितली' के द्वारा उन्होंने प्रेम के आदर्श स्वरूप की व्याख्या की है साथ ही इसमें ग्रामीण समस्याओं का भी चित्रण किया गया है। प्रसाद के उपन्यासों में नाटकीयता अधिक है साथ ही भाषा का अलंकृत प्रयोग भी है। चरित्रांकन उतना सूक्ष्म नहीं है जितना प्रेमचंद के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।

▶ 'प्रसाद' जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे

कौशिक जी (1891-1946 ई.) के दो प्रसिद्ध उपन्यास है- 'भिखारिणी' और 'माँ'।

'भिखारिणी' उपन्यास में उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह की समस्या को कथानक का आधार बनाया है तथा 'मां' उपन्यास में उन्होंने मध्यमवर्गीय परिवार का चित्रण करते हुए वेश्यालयों के वातावरण को प्रस्तुत किया है। प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकारों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री एक प्रतिभासम्पन्न उपन्यासकार थे। उन्होंने इतिहास पुराण से कथानकों का चयन करने के साथ-साथ काल्पनिक पात्रों के द्वारा सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन करने वाले उपन्यास भी लिखे। 'वैशाली की नगर वधू', 'वयं रक्षामः', 'सोमनाथ', 'आलमगीर', 'सोना और खून', 'रक्त की प्यास', 'आत्मदाह', 'अमर अभिलाषा', 'मंदिर की नर्तकी', 'नर मेध', 'अपराजिता' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

▶ आचार्य चतुरसेन शास्त्री एक प्रतिभासम्पन्न उपन्यासकार थे

'उग्र' जी के उपन्यासों में सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश किया गया है। समाज की यथार्थ एवं नग्न तस्वीर उनके उपन्यासों में उपलब्ध होती है। वे हिन्दी के प्रथम विवादास्पद उपन्यासकार कहे जा सकते हैं क्योंकि उनके उपन्यासों में समाज के उस वर्ग का चित्रण है जो पतित वर्ग है यथा-वेश्या वर्ग। उनकी सपाटवयानी अधकचरे नवयुवकों की रुचि को विकृत करने के दोष से बच नहीं पायी है। उग्रजी के कुछ प्रसिद्ध उपन्यास हैं- 'चंद हसीनों के खतूत' (1927 ई.), 'दिल्ली का दलाल' (1927 ई.), 'बुधुआ की बेटी' (1928 ई.) शराबी (1930 ई.) 'सरकार तुम्हारी आंखों में' (1936 ई.), 'जीजाजी' (1944 ई.) तथा 'फागुन के दिन' (1955 ई.)। ऋषभचरण जैन 'उग्र' जी की परम्परा को विकसित करने वाले उपन्यासकार कहे जा सकते हैं। उनके उपन्यासों की विषयवस्तु उग्रजी की भांति व्यभिचार, वेश्यालय, मदिरालय, रोमांस तक सीमित है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं-दिल्ली का व्यभिचार, दुराचार के अड्डे, वेश्यापुत्र, चम्पाकली, मास्टर साहब, मयखाना, चांदनी रात और गदर।

▶ 'उग्र' जी के उपन्यासों में सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश किया गया है

प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यास 'आदर्शवादी' परम्परा के उपन्यास कहे जा सकते हैं। विदा (1929 ई., विजय (1937 ई.), विकास, विसर्जन, 'वेकसी का मजार' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। अन्तिम उपन्यास में उन्होंने आखिरी मुगल बादशाह बहादुरशाह के चरित्र को 1857 ई. की क्रांति के परिप्रेक्ष्य में उजागर करने का प्रयास किया है। वृंदावनलाल वर्मा हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार माने जाते हैं। 'गढ़कुण्डार' (1929 ई.), 'विराटा की पद्मिनी' (1936 ई.), 'झांसी की रानी' (1946 ई.), 'मृगनयनी' (1950 ई.), 'टूटे कांटे' (1954 ई.), 'माधवजी सिन्धिया' (1957 ई.) आदि उपन्यासों में उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों को चरित नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। 'संगम' (1928 ई.), 'लगन' (1929 ई.), 'प्रत्यागत' (1929 ई.) और 'कुण्डलीचक्र' (1932 ई.) उनके सामाजिक उपन्यास हैं। प्रसिद्ध कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी कुछ उपन्यास लिखे जिनमें से प्रमुख हैं 'अप्सरा' (1931 ई.), 'अलका' (1933 ई.), 'निरुपमा' (1936 ई.) 'प्रभावती' और 'कुल्लीभाट'। निराला के उपन्यासों में भावुकता एवं काव्यात्मकता का समावेश हुआ है। इनमें नारी समस्याओं का निरूपण प्रमुख रूप से हुआ है तथा शिल्प की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं है।

▶ प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यास 'आदर्शवादी' परम्परा के उपन्यास कहे जा सकते हैं

संक्षेप में प्रेमचंदयुगीन उपन्यास में विषय वैविध्य एवं शिल्पगत नवीनता दिखाई पड़ती है। उपन्यासकारों ने एक ओर तो सामाजिक समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया दूसरी ओर ऐतिहासिक कथानकों पर नवीन दृष्टि से विचार करते हुए मनोरंजक एवं सुरुचिपूर्ण उपन्यासों की रचना की। इस समय तक हिन्दी उपन्यास का क्षेत्र व्यापक हो गया था और वह मानवीय सम्बन्धों को उजागर करने वाला एक महत्वपूर्ण दस्तावेज बन गया था। राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना से उपन्यास का क्षितिज इस

काल में अत्यन्त विस्तृत हो गया। विषय व्यापकता के अतिरिक्त अब चरित्र-चित्रण में भी उपन्यासकार अधिक कुशल हो गये। मानव-चरित्र का सूक्ष्म अंकन करने में वे निष्णात हो गये। घटना-संयोजन भी अब अधिक कुशलता से किया जाने लगा तथा अनावश्यक विस्तार से मुक्ति पा ली गयी। प्रेमचंद के रूप में हिन्दी साहित्य में एक ऐसे महान कलाकार ने अपना योगदान किया, जिसने कालजयी रचनाएँ देकर साहित्य की गरिमा बढ़ाई। निश्चित रूप से हिन्दी उपन्यास के विकास का द्वितीय चरण 'प्रेमचंद' जैसे महान उपन्यासकार के कारण महत्वपूर्ण बन गया है।

▶ प्रेमचंदयुगीन उपन्यास में विषय वैविध्य एवं शिल्पगत नवीनता दिखाई पड़ती है

2.4.2 प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्द के उपरान्त हिन्दी उपन्यास किसी एक निश्चित देश की ओर अग्रसर नहीं हुआ अपितु उसकी विविध धाराएँ अनेक दिशाओं की ओर प्रवाहित हुई। विषय की दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का वर्गीकरण निम्न वर्ग बनाए जा सकते हैं:

1. मनोविश्लेषणवादी उपन्यास
2. साम्यवादी (प्रगतिवादी) उपन्यास
3. ऐतिहासिक उपन्यास
4. आंचलिक उपन्यास
5. प्रयोगवादी उपन्यास

▶ विषय की दृष्टि से उपन्यासों का वर्गीकरण

यदि कालक्रम को दृष्टिगत रखकर प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का वर्गीकरण तीन कालखण्डों में विभक्त कर सकते हैं:

1. 1936 से 1950 तक के उपन्यास
2. 1950 से 1960 तक के उपन्यास
3. 1960 के उपरान्त के उपन्यास

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी एवं अज्ञेय का उल्लेखनीय योगदान है। जैनेन्द्र (1905- 1988 ई.) ने परख (1929 ई.), सुनीता (1935 ई.) और त्यागपत्र (1937 ई.) के द्वारा हिन्दी उपन्यास को एक नई दिशा प्रदान की। उनके कुछ अन्य उपन्यास हैं कल्याणी (1939 ई.), सुखदा (1952 ई.), विवर्त (1953 ई.) और व्यतीत (1953 ई.)। इन उपन्यासों में विभिन्न पात्रों के मन की उलझनों, गुत्थियों एवं शंकाओं का निरूपण कथा के माध्यम से किया गया है। त्यागपत्र में 'मृणाल' के आत्मपीड़न की गाथा का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है, साथ ही अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का चित्रण भी किया गया है। सुनीता में फ्रायड के सिद्धान्तों के आलोक में हरिप्रसन्न के व्यवहार का चित्रण है तथा कल्याणी एक अतृप्त और आधुनिक नारी की कथा है। 'सुखदा' एक कुण्ठाग्रस्त नारी की कहानी है। जैनेन्द्र जी ने आधुनिक समाज में नारी की स्थिति का यथातथ्य निरूपण करने का प्रयास अपने उपन्यासों में किया है।

▶ आधुनिक समाज में नारी की स्थिति का यथातथ्य निरूपण करने का प्रयास

इस परम्परा के दूसरे उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी (1902-1982 ई.) ने उच्चकोटि के लगभग एक दर्जन उपन्यासों की रचना की है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं- संन्यासी (1941 ई.), पर्दे की रानी (1941 ई.), प्रेत और छाया (1945 ई.), निर्वासित (1946 ई.), जिप्सी (1952 ई.) और जहाज का पंछी (1955 ई.)। इन उपन्यासों में जोशी जी ने मानव मन की कुण्ठाओं एवं ग्रन्थियों का सुन्दर विश्लेषण किया है। यद्यपि उनके अधिकांश उपन्यासों की मूल विषय-वस्तु प्रेम एवं रोमांस है तथापि उसका विवेचन मनोविज्ञान के आलोक में किया

गया है। मनोविश्लेषण परक उपन्यासों में अज्ञेय (1911-1981 ई.) द्वारा रचित 'शेखर एक जीवनी' (1941 ई.), 'नदी के द्वीप' (1951 ई.) तथा 'अपने-अपने अजनबी' का महत्वपूर्ण स्थान है। अज्ञेय में मनोविश्लेषण की गहन क्षमता के साथ-साथ सूक्ष्म सौन्दर्य बोध, कला के प्रति ईमानदार चेतना विद्यमान है। 'शेखर एक जीवनी' वैयक्तिक मनोविज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र में एक महती उपलब्धि मानी जा सकती है।

▶ मानव मन की कुण्ठाओं एवं ग्रन्थियों का सुन्दर विश्लेषण

हिन्दी के साम्यवादी उपन्यास वे हैं जिनमें मार्क्सवादी विचारधारा का आधार ग्रहण करके कथानक का ताना-बाना बना गया है। यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त और अमृतराय इसी कोटि के उपन्यासकार हैं। यशपाल ने पार्टी कामरेड (1945), दादा कामरेड, देशद्रोही (1943 ई.), मनुष्य के रूप (1949 ई.), अमिता (1946 ई.), दिव्या (1945 ई.) और 'झूठा सच' (1957 ई.), आदि उपन्यासों में अपने मार्क्सवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी है। झूठा सच देश विभाजन की त्रासदी पर आधारित एक ऐसा उपन्यास है जिसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है। इनके अतिरिक्त भैरव प्रसाद गुप्त ने 'मशाल', 'सती मैया का चौरा', आदि उपन्यासों में मार्क्सवादी चेतना का निरूपण किया है।

▶ तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का सफलतापूर्वक चित्रण

इस युग के महत्वपूर्ण उपन्यास लेखक हैं- भगवती चरण वर्मा और अमृतलाल नागर। वर्मा जी के कई उपन्यास प्रसिद्ध हुए हैं, यथा- चित्रलेखा (1934 ई.), भूले बिसरे चित्र, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सामर्थ्य और सीमा तथा सबहिं नचावत राम गोसाईं। इन उपन्यासों में समकालीन राजनीति एवं समाज से कथानक लिए गए हैं तथा उपन्यासकार ने अपनी पैनी दृष्टि से संयुक्त परिवार की समस्या, शोषण, सत्याग्रह, मिल मालिकों की दुरंगी नीति, पुलिस की धांधली, आदि का सटीक चित्रण किया है। 'चित्रलेखा' में पाप-पुण्य की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। अमृतलाल नागर ने सेठ बांकेमल, अमृत और विष, बूंद और समुद्र, महाकाल, शतरंज के मोहरे, सुहाग के नूपुर, मानस का हंस, खंजन नयन, आदि अनेक उपन्यासों की रचना की है। बूंद और समुद्र उनका श्रेष्ठतम उपन्यास है जिसमें भारतीय समाज की रीति-नीति आचार-विचार, जीवन दृष्टि, मर्यादाओं एवं मान्यताओं का चित्रण कथानक के द्वारा किया गया है। 'मानस का हंस' उनका एक जीवनी परक उपन्यास है जिसमें गोस्वामी तुलसीदास का जीवन वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार 'खंजन नयन' में सूरदास के जीवन को कथानक के रूप में बांधकर सूर की जीवनी को चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

▶ समकालीन राजनीति एवं समाज से कथानक लिए गए हैं

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में बाबू वृन्दावन लाल वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। उनके अतिरिक्त चतुरसेन शास्त्री एवं हजारीप्रसाद द्विवेदी का नाम इस वर्ग में लिया जा सकता है। हजारी प्रसाद जी ने बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचन्द्रलेख, पुनर्नवा और 'अनामदास का पोथा' में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय करते हुए रोचक उपन्यासों की रचना की है। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक वातावरण की सुन्दर प्रस्तुति हुई है। राहुल सांकृत्यायन ने 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे तथा रांगेय राघव ने 'मुर्दो का टीला' नामक ऐतिहासिक उपन्यास में मोहनजोदड़ो के गणतन्त्र का चित्रण किया है।

▶ इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय करते हुए रोचक उपन्यासों की रचना की

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में 'आंचलिक उपन्यास' एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। वे उपन्यास जिनमें किसी विशेष अंचल का चित्रण कथानक के द्वारा किया जाता है, इस वर्ग में

आते हैं। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकारों में सर्वप्रमुख हैं- फणीश्वरनाथ रेणु जिन्होंने 'मैला आंचल' (1954 ई.) तथा 'परती परिकथा' (1957 ई.) नामक उपन्यासों में बिहार के ग्रामीण अंचल के रहन-सहन, रीति-रिवाज, राजनीतिक आस्थाओं, आदि का विशद चित्रण किया है। रेणु के अतिरिक्त अन्य आंचलिक उपन्यासकार हैं- नागार्जुन (रतिनाथ की चाची, बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, दुखमोचन, वरुण के बेटे) उदयशंकर भट्ट (सागर लहरें और मनुष्य), रांगेय राघव (कब तक पुकारूँ), आदि।

▶ किसी विशेष अंचल का चित्रण कथानक के द्वारा किया जाता है

ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर भी कुछ उपन्यास लिखे गए हैं। इनमें प्रमुख हैं- आधा गांव (राही मासूम राजा), अलग-अलग वैतरणी (शिव प्रसाद सिंह) जंगल के फूल (राजेन्द्र अवस्थी), बबूल (विवेकी राय), पानी के प्राचीर (राम दरश मिश्र), रथ के पहिए (हिमांशु श्रीवास्तव)। इन सभी उपन्यासों में आधुनिकीकरण के कारण बदलते ग्रामीण समाज का चित्रण किया गया है। इसी सन्दर्भ में उन उपन्यासों को भी लिया जा सकता है जिनमें व्यंग्यात्मक लहजे में भारतीय समाज के समग्र रूप को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इस दृष्टि से श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' उल्लेखनीय कृति है जिसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत के ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को परत-दर-परत उघाड़ने की कोशिश की गई है। इस उपन्यास की कथाभूमि है बड़े नगर से कुछ दूर बसा हुआ गांव शिवपालगंज, जहाँ की जिन्दगी प्रगति और विकास के तमाम नारों के बावजूद निहित स्वार्थों एवं अवांछनीय तत्वों के सामने घिसट रही है। शिवपालगंज की पंचायत, कालेज की प्रबन्ध समिति और कोऑपरेटिव सोसाइटी के सूत्रधार वैद्य जी साक्षात रूप में वह राजनीतिक संस्कृति है जो प्रजातन्त्र और लोकहित के नाम पर हमारे चारों ओर फल-फूल रही है एवं लोकतांत्रिक मूल्यों का उपहास कर रही है।

▶ आधुनिकीकरण के कारण बदलते ग्रामीण समाज का चित्रण

उषा प्रियम्वदा के उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' एवं 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में भी आधुनिकता बोध का गहरा रूप उभरा है। भीष्म साहनी कृत 'तमस' में विभाजन की मानसिकता एवं उससे लाभ उठाने वाले लोगों को बेनकाब किया गया है। मनोहर श्याम जोशी कृत 'कुरु-कुरु' स्वाहा में युवा पीढ़ी की दिशाहीनता को अभिव्यक्ति दी गई है। उक्त उपन्यासकारों के अतिरिक्त भी सैकड़ों उपन्यासकार नए-नए कथानकों की कल्पना कर सुन्दर उपन्यास लिख रहे हैं। शिल्प की दृष्टि से भी नवीन प्रयोग किए जा रहे हैं। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवां घोड़ा', गिरधर गोपाल का 'चांदनी के खण्डहर' नवीन शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

▶ आधुनिकता बोध का गहरा रूप

सामाजिक चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास 'गली आगे मुड़ती है', मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यास 'उसका घर' और गिरीश अस्थाना के उपन्यास 'धूप छांही रंग' में भी हुई है। आधुनिकता बोध के उपन्यासों में मोहन राकेश कृत 'न आने वाला कल', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई', श्रीकान्त वर्मा का 'दूसरी बार', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स', कमलेश्वर कृत 'डाक बंगला' और 'काली आंधी', गंगा प्रसाद विमल का 'अपने से अलग', सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चांद चाहिए' के नाम लिए जा सकते हैं। अस्तित्ववादी जीवन दर्शन, अनास्था, कुण्ठा, आदि की अभिव्यक्ति इन उपन्यासों में हुई है। नरेश मेहता का उपन्यास 'यह पथ बंधु था' में मूल्यों के प्रति निष्ठावान व्यक्ति को टूटते हुए दिखाया गया है।

▶ सामाजिक चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति

आधुनिक उपन्यासों में विषय-वैविध्य के साथ-साथ शैलियों के विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं। आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली, आदि विविध शैलियों में उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आज उपन्यास का कथ्य जीवन के अधिक नजदीक है, उसमें यथार्थ का पुट अधिक है। मानवीय सम्बन्धों के बदलते रूप को उसमें उजागर करने का प्रयास किया गया है तथा महानगरीय बोध से उत्पन्न मानसिकता को अभिव्यक्ति दी गई है। मन के भीतर की परतों को उधेड़ने का प्रयास भी इन उपन्यासों में है। आधुनिकता बोध से उत्पन्न अकेलेपन, अजनबीपन, यौन विसंगतियाँ, विद्रोह, कुण्ठा एवं मूल्यों का ह्रास आज के उपन्यास के विषय हैं। आज नए मूल्य तलाशने का प्रयास किया जा रहा है और नैतिकता के प्राचीन मानदण्डों की अवहेलना हो रही है। 'सैक्स' एवं रोमानियत को इन उपन्यासों में अधिक स्थान मिल रहा है तथा बदलते परिवेश के कारण परिवर्तित मानसिकता को बड़ी गहराई से व्यक्त किया जाने लगा है। आज के उपन्यास ने चरित्र तो दिए हैं, किन्तु जीवन्त पात्र अर्थात् होरी जैसा पात्र देने में वह सफल नहीं रहा। आवश्यकता इस बात की है कि उपन्यासों में मानव को उसके सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत किया जाए और उसे जीवन के यथार्थ से जोड़ा जाए, इसके अभाव में वह जीवन्त दस्तावेज न बनकर 'गल्पमात्र' बनकर रह जाएगा। अस्तु हिन्दी उपन्यास ने बहुत कम समय में आशातीत प्रगति की है। नए-नए उपन्यासकार नए-नए विषयों को लेकर उपन्यास लिख रहे हैं अतः यह आशा की जा सकती है कि हिन्दी उपन्यास का भविष्य मंगलमय है। अस्तु, अनेक दोषों के होते हुए भी हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा पर हम सन्तोष कर सकते हैं।

▶ विषय-वैविध्य के साथ-साथ शैलियों के विभिन्न रूप

2.4.3 हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार

यशपाल

प्रेमचंदोत्तर कथाकारों में भी यशपाल का स्थान श्रेष्ठतम है। यशपाल उस कोटि के साहित्यकारों में आते हैं, जो स्थान और समय की सीमाओं का अतिक्रमण कर सार्वकालिक और सार्वभौमिक हो जाते हैं। एक साहित्यकार के रूप में यशपाल की जितनी लोकप्रियता हिन्दी-जगत में है, उतने ही वे हिन्दीतर जगत में भी लोकप्रिय रहे हैं। कम शब्दों में जीवन की वास्तविक घटनाओं एवं स्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने वाले यशपाल जी, अपने विचार, दृष्टिकोण तथा सामाजिक एवं राजनीतिक मान्यताओं के कारण पंजाब के हिन्दी कथा-साहित्य में, एक प्रतिष्ठित स्थान रखते हैं। एक प्रतिबद्ध लेखक के रूप में विख्यात यशपाल, साहित्य को वैचारिक क्रांति का अस्त्र मानते थे। उनका समस्त लेखन उद्देश्यपूर्ण एवं उपयोगी रहा है। यशपाल जी ने स्वयं इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है, "मैं साहित्य को साधन के रूप में मानता हूँ और मेरा ध्येय साहित्य द्वारा क्रांति की प्रवृत्ति और भूमिका तैयार करना ही रहता है।" हिन्दी साहित्य को नई दिशा देने वाले यशपाल ने अपने साहित्य के द्वारा क्रांति की जो मशाल जलाई, वह स्वाधीनता प्राप्ति के साथ-साथ समाज में बदलाव लाने की मशाल थी। स्वाधीनता पूर्व पंजाब में होनेवाली गतिविधियों के यशपाल प्रत्यक्ष द्रष्टा एवं भोक्ता रहे। पंजाब में और पंजाब के बाहर रहकर भी उन्होंने क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाई। एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में उन्होंने जो कुछ देखा, सहा और किया, उन सबको एक साहित्यकार के रूप में अपनी रचनाओं में यथार्थवत् अंकित किया।

▶ उनका समस्त लेखन उद्देश्यपूर्ण एवं उपयोगी रहा है

यशपाल के द्वारा लिखे गए उपन्यासों की संख्या बारह है, जिनमें 'दिव्या', 'देशद्रोही',

'दादा कामरेड', 'झूठा सच', 'अमिता', 'मनुष्य के रूप' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं और उन्होंने लगभग तीन सौ से ज्यादा कहानियाँ भी लिखी हैं, जो 'पिंजरे की उड़ान', 'फूलों का कुर्ता', 'धर्मयुद्ध', 'सच बोलने की भूल' आदि कहानी-संग्रहों में संग्रहीत हैं। 'चक्कर क्लब' उनका प्रसिद्ध व्यंग्य-संग्रह है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'सिंहावलोकन' शीर्षक से संस्मरण और 'गांधीवाद की शवपरीक्षा' नामक निबंध को लिखकर भी विशेष ख्याति अर्जित की। यशपाल का पंजाबी चेतना प्रधान उपन्यास है 'झूठा सच' भाग-1 (वतन और देश) तथा भाग -2 (देश का भविष्य) यशपाल जैसे कालजयी लेखक को उनकी अमर कृतियों के लिए किसी पुरस्कार की भूख नहीं थी। मगर समाज के लिए लिखने वाले इस अमर लेखक के प्रति अपनी श्रद्धा स्वरूप उन्हें कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। 'देव पुरस्कार' (1955), 'सोवियत लैण्ड नेहरु पुरस्कार' (1970), पद्म भूषण (1970) 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' (1971), साहित्य अकादमी पुरस्कार (1976) आदि पुरस्कार इन्हें प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें कई उपाधियाँ भी दी गईं - साहित्यवारिधि, डी. लिट्, साहित्य वाचस्पति आदि।

▶ यशपाल के द्वारा लिखे गए उपन्यासों की संख्या बारह है

2.4.4 जैनेंद्र कुमार

जैनेंद्र के उपन्यासों में 'सुनीता', परख, 'सुखदा' 'त्यागपत्र' तथा 'विवर्त्त' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अधिकांश उपन्यासों में पति पत्नी एवं अन्य पुरुष के पारस्परिक संबंधों का चित्रण किया गया है। सबमें प्रायः एक समान ही चित्रण मिलता है। नायिका प्रायः विवाहिता होती है। अपनी वैयक्तिक कुंठाओं से अति दुखी होती है जिसके परिणामस्वरूप सदैव सुख की तलाश में रहती है। पर पुरुष के संपर्क में आते ही उसे प्रभावशाली व्यक्तित्व समझकर उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। नायिका का पति इस स्थिति से पूर्ण अवगत होते हुए भी चुप्पी साधे सब कुछ धैर्य से सहन करते हुए समय की प्रतीक्षा करता रहता है। प्रारंभ में ऐसा आभास होने लगता है कि नायिका अपने पति का परित्याग कर अपने प्रेमी के साथ पलायन कर जायेगी किंतु अंत तक जाते जाते जैनेंद्र परिस्थिति को संभाल लेते हैं तथा यह निष्कर्ष निकालना चाहते हैं कि पति पत्नी को अन्य व्यक्तियों से संपर्क करने का जितना अवसर मिलता है, जितनी अधिक स्वतन्त्रता मिलती है उतनी चारित्रिक दृढ़ता एवं सबलता में वृद्धि होती है। वास्तव में जैनेंद्र के उपन्यासों में एक ओर रसिकता एवं सरसता विद्यमान है तो दूसरी ओर शुष्कता तथा भावुकता के साथ साथ बौद्धिकता आवश्यकता से अधिक आ गई है।

▶ जैनेंद्र के उपन्यासों में रसिकता एवं सरसता विद्यमान है

2.4.5 भीष्म साहिनी

भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त, 1915 में रावलपिंडी (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ था। इनके पिता अपने समय के प्रसिद्ध समाजसेवी थे जबकि प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता बलराज साहनी इनके बड़े भाई थे। भीष्म साहनी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हिन्दी व संस्कृत में हुई। बाद में उनका दाखिला स्कूल में कराया गया जहाँ उन्होंने उर्दू व अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। 1937 में उन्होंने लाहौर गवर्नमेंट कॉलेज से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया. 1958 में पंजाब विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।भारत पाकिस्तान विभाजन के पूर्व भीष्म साहनी अवैतनिक शिक्षक होने के साथ-साथ व्यापार भी करते थे। विभाजन के बाद उन्होंने भारत आकर समाचारपत्रों में लिखने का काम किया। बाद में भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) से जा मिले। इसके पश्चात अंबाला और अमृतसर में भी अध्यापक रहने के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर बने। 1957 से 1963 तक मास्को में विदेशी भाषा प्रकाशन गृह (फॉरेन लॅग्वेजेस पब्लिकेशन हाउस) में अनुवादक के काम में कार्यरत रहे।

यहाँ उन्होंने करीब दो दर्जन रूसी किताबें जैसे 'टालस्टॉय', 'आस्ट्रोवस्की' इत्यादि लेखकों की किताबों का हिन्दी में रूपांतर किया। 1965 से 1967 तक दो साल में उन्होंने 'नयी कहानियां' नामक पात्रिका का सम्पादन किया। वे प्रगतिशील लेखक संघ और अफ्रो-एशियायी लेखक संघ (एफ्रो एशियन राइटर्स असोसिएशन) से भी जुड़े रहे। 1996 से 97 तक वे साहित्य अकादमी के कार्यकारी समीति के सदस्य रहे।

▶ 'नयी कहानियाँ' नामक पात्रिका का सम्पादन किया

भीष्म साहनी को हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा का अग्रणी लेखक माना जाता है। वे मानवीय मूल्यों के लिए हिमायती रहे और उन्होंने विचारधारा को अपने ऊपर कभी हावी नहीं होने दिया। वामपंथी विचारधारा के साथ जुड़े होने के साथ-साथ वे मानवीय मूल्यों को कभी आंखो से ओझल नहीं करते थे। आपाधापी और उठापटक के युग में भीष्म साहनी का व्यक्तित्व बिल्कुल अलग था। उन्हें उनके लेखन के लिए तो स्मरण किया ही जाएगा लेकिन अपनी सहृदयता के लिए वे चिरस्मरणीय रहेंगे। साहित्यकार भीष्म साहनी स्वाधीनता के आंदोलन से भी जुड़े रहे। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में उन्हें जेल भी जाना पड़ा. विभाजन के समय वह और उनका परिवार पाकिस्तान से अमृतसर आ गया था। इस दौरान उन्होंने विभाजन के हर दर्द को भी महसूस किया। भीष्म साहनी को 1975 में 'तमस' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1975 में ही पंजाब सरकार द्वारा 'शिरोमणि लेखक अवार्ड', 1980 में एफ्रो एशियन राइटर्स असोसिएशन का 'लोटस अवार्ड', 1983 में 'सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड' तथा 1998 में भारत सरकार के 'पद्मभूषण अलंकरण' से विभूषित किया गया।

▶ भीष्म साहनी को हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा का अग्रणी लेखक माना जाता है

भीष्म साहनी की किताबें

उनके उपन्यास तमस पर 1986 में एक फिल्म का निर्माण भी किया गया था। उनकी अन्य रचनाओं में मेरी प्रिय कहानियां, झरोखे, बसंती, मय्यादास की माड़ी, हानूस, कबिरा खड़ा बाजार में, भाग्य रेखा, पहला पाठ, भटकती राख जैसी रचनाएँ शामिल हैं। प्रेमचंद की परंपरा के साहित्यकार भीष्म साहनी के साहित्य में सर्वत्र मानवीय करुणा, मानवीय मूल्य व नैतिकता विद्यमान है। भीष्म साहनी जी ने साधारण एवं व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग कर अपनी रचनाओं को जनमानस के निकट पहुँचा दिया। उनकी कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ है, चीलें, चीफ की दावत, खून की रिश्ता, ओ हारामजादे, अमृतसर आ गया है, त्रास, फैसला, झूमर, मरने से पहले, माता-विमाता, वाङ्चू, आदि।

▶ साधारण एवं व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग

2.4.6 फणीश्वरनाथ रेणु

श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' अप्रतिम गद्य-शिल्पी के रूप में विख्यात हैं। यों लिखना तो उन्होंने 1945 ई. के आस-पास से ही आरम्भ कर दिया था किन्तु ख्याति उन्हें 1954 ई. में 'मैला आँचल' के प्रकाशन के बाद ही प्राप्त हुई। 'मैला आँचल' के प्रकाशन से हिन्दी- उपन्यास के इतिहास में एक नई परम्परा की शुरुआत हुई। इसे आंचलिक उपन्यास कहा गया। निश्चय ही यह उपन्यास अपनी रचना-दृष्टि एवं शिल्प की मौलिकता में अनुपम है। 'रेणु' ने हिन्दी-गद्य की अनेक विधाओं को समृद्ध किया है। 'उपन्यास' और 'कहानी' के अतिरिक्त 'रिपोर्ताज', 'संस्मरण', 'निबन्ध', 'साक्षात्कार', 'स्केच', 'हास्य-व्यंग्य', 'पत्र', 'डायरी', 'नाटक', 'पटकथा', 'अनुवाद', 'टिप्पणी', 'गद्यगीत' आदि अनेक विधाओं में उनकी मौलिकता का साक्षात्कार पर हम चकित रह जाते हैं। 'रेणु' को सर्वाधिक ख्याति उपन्यासकार के रूप में प्राप्त हुई है। इसलिए सबसे पहले हम उनके उपन्यासों पर विचार करना चाहेंगे।

▶ फणीश्वरनाथ 'रेणु' अप्रतिम गद्य-शिल्पी के रूप में विख्यात हैं

'मैला आँचल' (1954 ई.), 'परती परिकथा' (1957 ई.), 'पल्टू बाबू रोड' ('ज्योत्सना' के दिसम्बर, 1959 से दिसम्बर 1960 के अंकों में धारावाहिक रूप में प्रकाशित), 'दीर्घतपा' (1964 ई., परिवर्धित संस्करण 'कलंकमुक्ति' नाम से 1972 में प्रकाशित) 'जुलूस' (1965 ई.) और 'कितने चौराहे' (1966 ई.) 'रेणु' के कुल छः उपन्यास प्रकाशित हैं। रेणु 'रचनावली' 'तीन' में उनका एक अधूरा उपन्यास 'रामरतनराय ' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके सम्बन्ध में 'रेणु रचनावली' के संपादक भारत यायावर ने लिखा है- 'रेणु रामरतन राय नामक एक तस्कर की आत्मकथा के रूप में यह उपन्यास लिख रहे थे। हिन्दी-उपन्यास के क्षेत्र में यह एक बिल्कुल नया विषय होता। इस उपन्यास के उपलब्ध पृष्ठों में भारत नेपाल सीमा के आस-पास का चित्रण बहुत ही बारीकी से हुआ है। रामरतन राय के बचपन के वृतान्त में उस इलाके का पूरा इतिहास बोलता है।' अधूरा प्राप्त होने के कारण इसके विषय में कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता।

▶ रेणु जी 'रेणु रचनावली' आत्मकथा के रूप में उपन्यास लिख रहे थे

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी उपन्यास साहित्य आधुनिक युग की देन है। आधुनिक युग में ही शुरू होकर उपन्यास साहित्य ने जिस ऊँचाई को प्राप्त किया है, अन्य गद्य विधाओं ने नहीं। इसका सीधा-सा कारण है कि उपन्यास में रचनाकार को अपनी बात कहने का अवकाश मिलता है। सामाजिक हलचलों के साथ चलने वाली गद्य की यह अनोखी विधा है। आज यह नए-नए रूपों में पुष्पित-पल्लवित हो रही है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. प्रेमचंद युगीन हिन्दी उपन्यास के बारे में टिप्पणि तैयार कीजिए।
2. प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास के बारे में अपना मत प्रकट कीजिए।
3. हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार के बारे में टिप्पणी लिखिए।
4. यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, भीष्म साहिनी, आदि उपन्यासकारों के बारे में जानकारी दीजिए।
5. फनीश्वरनाथ रेणु के रचानाओं पर लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार - द्वारिका प्रसाद सक्सेना
2. हिन्दी निबंध के विकास - डॉ. ओमकांत शर्मा
3. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास - रामस्वरूप चतर्वेदी
4. निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी - सं. गणपतिचन्द्र गुप्त

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. गद्य की विविध विधाएँ - मजिदा आजाद
2. हिन्दी गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ - डॉ . कैलाश चन्द्र भाटिया
4. प्रेमचन्द और उनका युग - रामविलास शर्मा

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

BLOCK-03

हिन्दी नाटक और निबंध

Block Content

Unit 1: हिन्दी नाटक का विकास एवं प्रमुख नाटककार, प्रसादपूर्व हिन्दी नाटक, द्विवेदी युगीन नाटक, प्रसादयुगीन नाटक, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - नुक्कड़ नाटक, हिन्दी के प्रमुख नाटककार - भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, जगदीशचंद्र माथुर, रामकुमार वर्मा

Unit 2: हिन्दी एकांकी, रंगमंच और विकास के चरण, हिन्दी का लोक रंगमंच

Unit 3: हिन्दी निबंध का विकास एवं प्रमुख निबंधकार, निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी निबंधों के प्रकार विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, आत्मपरक (कविता क्या है - आचार्य रामचंद्र शुक्ल, विस्तृत अध्ययन) (नाखून क्यों बढते हैं - हज़ारीप्रसाद द्विवेदी विस्तृत अध्ययन)

Unit 4: हिन्दी आलोचना का उद्‌भव और विकास, समकालीन हिन्दी आलोचना एवं उसके विविध प्रकार, प्रमुख आलोचक

इकाई : 1

हिन्दी नाटक का विकास एवं प्रमुख नाटककार, प्रसादपूर्व हिन्दी नाटक, द्विवेदी युगीन नाटक, प्रसादयुगीन नाटक, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - नुक्कड़ नाटक, हिन्दी के प्रमुख नाटककार - भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, जगदीशचंद्र माथुर, रामकुमार वर्मा

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी नाटक के बारे में समझता है
- नाटक के विकास के बारे में अवगत होता है
- नुक्कड़ नाटक को समझता है
- हिन्दी के प्रमुख नाटककार के बारे में परिचय प्राप्त करता है
- प्रसादपूर्व हिन्दी नाटक, द्विवेदी युगीन नाटक, प्रसादयुगीन नाटक, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक आदि के बारे में अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी में नाटक लिखने का प्रयास आधुनिक युग में हुआ। क्योंकि इससे पूर्व के हिन्दी नाटकों में नाट्यकला के तत्वों का अभाव है। इसमें अधिकतर नाटकीय काव्य हैं या संस्कृत नाटकों के अनुवाद। प्राणचंद चौहान कृत 'रामायण महानाटक' (1610 ई.) तथा कवि उदय कृत 'हनुमान नाटक' (1840 ई.) पद्यात्मक प्रबंध है, नाट्य रचनाएँ नहीं। अन्य नाटककारों में भारतेंदु जी के पिता गोपालचंद्र (गिरधरदास) ने 'नहुष' (1857 ई.), गणेश कवि ने 'प्रद्युम्न विजय' (1863 ई.) तथा शीतला प्रसाद त्रिपाठी ने जानकी मंगल (1868 ई.) आदि नाटकों की रचना की। 'जानकी मंगल' ही नाट्यगुणों से संपन्न है, जिसका मंचन बनारस में हुआ और इसके एक अभिनेता भारतेंदु खुद थे। परंतु तब तक भारतेंदुजी का 'विद्यासुन्दर' (1868 ई.) नाटक प्रकाशित हो चुका था जो संस्कृत की 'चौरपंचाशिका' कृति के बंगला संस्करण का छाया अनुवाद है। इसीलिए हिन्दी में नाटक लिखने की परम्परा का आरंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र से माना जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यकला, सुधारवादी दृष्टिकोण, नाट्य-शिल्प

Discussion / चर्चा

भारतेन्दु जी ने न केवल हिन्दी में मौलिक नाटकों की रचना की, अपितु उन्होंने दूसरी भाषाओं की श्रेष्ठ नाट्य रचनाओं के अनुवाद भी किये। यही नहीं उन्होंने नाट्य शिल्प पर प्रकाश डालने हेतु 'नाटक' नामक रचना में नाट्य कला के तत्वों का उल्लेख करते हुए नाटककारों को दिशा-निर्देश दिया, जिससे वे जनरुचि के अनुकूल नाटकों की रचना कर सकें। उन्होंने युगीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ऐसे नाटकों की रचना का मार्ग प्रशस्त किया जो भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यकला का समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत करते थे। हिन्दी नाटकों

के विकास की परम्परा का अध्ययन करने हेतु उसे निम्नलिखित कालों में वर्गीकृत किया जा सकता है

▶ हिन्दी नाटकों के विकास की परम्परा

भारतेन्दु युग (सन् 1857 से 1900 ई. तक)

प्रसाद युग (सन् 1900 से 1950 ई. तक)

प्रसादोत्तर युग (सन् 1950 के उपरान्त)

1.भारतेन्दुयुगीन नाटकः भारतेन्दु युग में मौलिक और अनुदित दोनों प्रकार के नाटकों की धूम रही। एक ओर तो दूसरी भाषाओं के श्रेष्ठ नाटक हिन्दी में अनूदित किये गये तथा दूसरी ओर मौलिक नाटकों की भी रचना की गयी। अनूदित नाटक मुख्यतः बंगला, संस्कृत, अंग्रेजों भाषाओं की नाट्य कृतियों पर आधारित हैं। इन अनूदित नाटकों से हिन्दी नाट्य साहित्य को नवीन दृष्टि प्राप्त हुई और हिन्दी में नाट्य-रचना का सूत्रपात हुआ। स्वयं भारतेन्दु जी ने अनूदित नाटकों की रचना की। इनकी सूची निम्नवत् है

▶ भारतेन्दु जी के अनूदित नाटक

1. 'विद्या सुन्दर' - संस्कृत के चौर पंचाशिका के बंगला संस्करण का अनुवाद।
2. 'रत्नावली' - संस्कृत से अनुवाद।
3. 'धनंजय विजय' - संस्कृत से अनुवाद।
4. 'कर्पूर मंजरी' - संस्कृत से अनुवाद।
5. 'पाखण्ड विडम्बन' - संस्कृत के प्रबोध-चन्द्रोदय के तीसरे अंक का अनुवाद।
6. 'मुद्राराक्षस' - संस्कृत नाटककार विशाखदत्त के नाटक का अनुवाद।
7. 'दुर्लभ बंधु' - अंग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर के 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का अनुवाद।

इनके अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने जिन मौलिक नाट्य-कृतियों की रचना की, उनकी सूची इस प्रकार है। 'भारत जननी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'श्री चन्द्रावली नाटिका', 'विषस्य विषमौषधम्', 'भारत दुर्दशा', 'नील देवी', 'अंधेर नगरी', 'सती प्रताप', 'प्रेमजोगिनी'। भारतेन्दु जी के मौलिक नाटकों में विषयों की विविधता है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में उन्होंने धर्म के नाम पर की जाने वाली पशुबलि का विरोध किया है तो 'विषस्य विषमौषधम्' में उन्होंने देशी राजाओं की दुर्दशा का चित्रण किया है। 'भारत दुर्दशा' में अंग्रेजी राज्य में भारत की दुर्दशा का निरूपण किया गया है तथा 'नील देवी' में भारतीय नारी के आदर्श को प्रतिपादित किया गया है। 'अंधेर नगरी' में भ्रष्ट शासन तंत्र पर प्रहार किया गया है, जबकि 'चन्द्रावली' नाटिका में प्रेम-भक्ति को प्रतिष्ठित करने का सुन्दर प्रयास है।

▶ मौलिक नाटकों में विषयों की विविधता

भारतेन्दु जी के नाटकों में सुधारवादी दृष्टिकोण के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई है तथा युगीन समस्याओं को जनता तक पहुँचाने की चेष्टा की गयी है। उनके नाटक जनकल्याण की भावना से ओतप्रोत हैं तथा उनका प्रधान स्वर उपदेशात्मक है। अतीत गौरव एवं ऐतिहासिक श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने का बोध भारतेन्दु युग में ही पड़ गया था, जिसका विकास प्रसादयुगीन नाटकों में दिखाई देता है। भारतेन्दु जी ने अपने समय में दर्शकों की रुचि को परिष्कृत करने का प्रयास किया और पारसी थियेटर की व्यावसायिक मनोवृत्ति से उत्पन्न रुचियों, दृश्यों एवं गीतों का प्रबल विरोध किया। उन्होंने संस्कृत नाट्य कला के साथ-साथ पाश्चात्य नाट्यकला का समन्वय करके हिन्दी नाट्य कला को नवीन दिशा की ओर अग्रसर करने का स्तुत्य प्रयास किया।

▶ जनकल्याण की भावना

▶ भारतेन्दु काल के अन्य नाटककार

भारतेन्दु काल के अन्य नाटककारों में प्रमुख हैं- लाला श्रीनिवास दास, राधाकृष्ण दास, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, गोपालराम गहमरी, किशोरीलाल गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, जी. पी. श्रीवास्तव आदि। लाला श्रीनिवास दास ने चार नाटकों की रचना की 'श्री प्रहलाद चरित्र', 'तप्ता संवरण', 'रणधीर प्रेम मोहिनी' और 'संयोगिता स्वयंवर'। इनमें से 'रणधीर प्रेम मोहिनी' उत्कृष्ट कोटि की रचना है, जिसका नायक अपने शौर्य के बल पर अपनी प्रेमिकाओं को प्राप्त करता है। 'संयोगिता स्वयंवर' उनका ऐतिहासिक नाटक है। राधाकृष्ण दास भारतेन्दु युग के एक अन्य लोकप्रिय नाटककार माने जाते हैं। उनके कुछ प्रसिद्ध नाटकों के नाम हैं 'महारानी पद्मावती', 'धर्मालाप', 'महाराणा प्रताप' (1897 ई.) तथा 'दुःखिनी बाला'। इनमें से 'महाराणा प्रताप' उनका सर्वश्रेष्ठ नाटक है, जिसमें राणाप्रताप के शौर्य का वर्णन करते हुए राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है।

▶ सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य

बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित नाटकों में 'जैसा काम वैसा परिणाम' (1877), 'आचार विएँबन'(1799), 'नल दमयंती स्वयंवर', 'वेणु संहार' विशेष प्रसिद्ध हुए। इन नाटकों में सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य करने के साथ-साथ अतीत गौरव को भी अभिव्यक्त किया गया। राधाचरण गोस्वामी ने प्रहसनों की रचना में नाम कमाया। उनके लिखे प्रहसनों में से कुछ एक के नाम हैं 'तन मन धन श्री गोसाई जी के अर्पण', 'बूढ़े मुँह मुँहासे', 'लोग देखें तमासे'। प्रथम नाटक में धर्म गुरुओं की पोल खोली गयी है तथा द्वितीय नाटक में परस्त्री गमन की बुराइयों को उजागर किया गया है। उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों की भी रचना की, यथा 'अमर सिंह राठौर', 'सती चन्द्रावली' और 'श्रीदामा' (1904 ई.)। इनमें से 'अमर सिंह राठौर' को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

▶ अस्वस्थ परम्पराओं एवं विद्रूपताओं का उजागर

गोपालराम गहमरी ने सामाजिक विषयों को लेकर सफल नाटकों की रचना की। 'देशदशा' में सरकारी कर्मचारियों की धाँधली का वर्णन किया गया है। 'जैसे को तैसा' तथा 'विद्या विनोद' उनके व्यंग्यात्मक नाटक है। भारतेन्दु युग के एक अन्य सशक्त नाटककार के रूप में जी. पी. श्रीवास्तव का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने जिन 'प्रहसनों' की रचना की उनमें 'उलटफेर', 'दुमदार आदमी', 'गड़बडझाला', 'कुर्सी मैन', 'न घर का न घाट का' आदि उल्लेखनीय रचनाएँ मानी जाती हैं। इसी परम्परा में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के नाटकों को रखा जा सकता है। उन्होंने प्रहसनों के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों, अस्वस्थ परम्पराओं एवं विद्रूपताओं को उजागर किया। उनके प्रहसनों में प्रमुख हैं 'चार बिचारे' 'उजबक' आदि।

भारतेन्दु युग के नाटकों में ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक कथाओं को विषय-वस्तु बनाया गया। समाज सुधार, राष्ट्रीय गौरव, अतीव गौरव को नाटकों के माध्यम से दर्शकों तक सम्प्रेषित किया गया। प्रहसनों का मूल उद्देश्य व्यंग्य के द्वारा समाज की कुरीतियों का समापन करना था। आदर्श पात्रों की सृष्टि में इन नाटककारों का विश्वास था तथा नाट्यकला की दृष्टि से वे हिन्दी नाटकों के लिए नवीन मार्ग का अनुसन्धान कर रहे थे। भारतेन्दु जी नाट्यकला में पारंगत थे, क्योंकि उनके नाटक अभिनेय हैं तथा उनमें भारतीय नाट्य कला के तत्वों के साथ-साथ पाश्चात्य नाट्यकला के तत्वों, यथा अंतर्द्वन्द्व, चरित्र चित्रण, कार्य व्यापार आदि का समावेश पाया जाता है। 'रणधीर प्रेम मोहिनी' जैसे नाटक से लाला श्रीनिवासदास ने दुःखान्त नाटकों की रचना प्रारम्भ कर दी थी। भारतेन्दुयुगीन नाटकों में विषयों की विविधता थी, किन्तु 'टेकनीक' में अभी सुधार की आवश्यकता थी। रंग-संकेत भी इन नाटकों में मिलते

हैं, किन्तु वे अधिक प्रभावकारी नहीं हैं। कुल मिलाकर भारतेन्दु युग हिन्दी नाटकों के विकास का प्रथम पड़ाव माना जा सकता है। भारतेन्दु जी इस युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों से हिन्दी के नाट्यकारों के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया और उन्हें नवीन विषयों पर नाटक लिखने की प्रेरणा भी दी।

▶ नाटकों में विषयों की विविधता

द्विवेदी युगीन नाटक

भारतेन्दु युग के नाटकों में जन-जीवन की जिस निकटता का परिचय मिलता है वह प्रस्तुत युग के नाटकों में नहीं। इस युग के नाटककारों को एक तो परम्परागत रंगमंच उपलब्ध नहीं हो सका और दूसरे, इस बीच लगातार मध्य वर्ग की वृद्धि के कारण लोक-जीवन से इनका सहज सम्बन्ध भी टूट गया। इस युग के लेखक आर्यसमाज की नैतिकता तथा गांधी जी की सात्विकता एवं आदर्शवादिता से अत्यन्त प्रभावित हैं। तत्कालीन देशव्यापी सांस्कृतिक और राजनीतिक आन्दोलनों का भी इस युग पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। फलतः सुधारवाद इस युग के समूचे साहित्य का प्रधान स्वर था। इस युग की समस्त साहित्यिक चेतना महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथों में थी। द्विवेदी जी तथा इस काल के अन्य लेखकों ने वस्तु, शैली और भाषा सभी क्षेत्रों में सुधार एवं संस्कार लाने के लिए सक्रिय योग दिया। इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता के कारण मौलिक उद्भावनाओं के लिए बहुत कम अवकाश रह गया, अतः इस युग में नाटकों के अनुवादों की भरमार रही, मौलिक नाटक बहुत कम लिखे गये। भारतेन्दु युग में नाटक साहित्य का विकास जिस तीव्रता से हुआ था उसमें प्रसाद के आगमन से पूर्व तक कुछ भी उन्नति नहीं हुई।

▶ वस्तु, शैली और भाषा सभी क्षेत्रों में सुधार एवं संस्कार लाने के लिए सक्रिय योग

प्रसादयुगीन नाटक

भारतेन्दु जी ने हिन्दी नाट्य साहित्य को जो साहित्यिक भूमिका प्रदान की, उसे कालान्तर में जयशंकर प्रसाद ने पल्लवित किया। हिन्दी नाट्य क्षेत्र में प्रसाद जी का आगमन वस्तुतः युगान्तर प्रस्तुत करता है। प्रसाद जी के समय तक हिन्दी रंगमंच का पूर्ण विकास नहीं हो सका था, फलतः वे ऐसे नाटकों की रचना में प्रवृत्त हुए जो पाठ्य अधिक हैं, अभिनेय कम। प्रसिद्ध समालोचक डॉ. गोपाल राय के अनुसार 'प्रसाद को कठिनाई यह थी कि वे जिस प्रकार के नाटक लिखना चाहते थे, उनके अनुरूप रंगमंच हिन्दी में नहीं था। हिन्दी का शौकिया रंगमंच नितान्त अविकसित था, फलतः प्रसाद ने साहित्यिक रंगमंच की स्वयं कल्पना की और इस मानसिक रंगमंच की पृष्ठभूमि में ही अपने नाटक लिखे। प्रसाद जी अपने काल्पनिक रंगमंच को व्यावहारिक रूप नहीं दे सके, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके नाटक अन्य सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट होने पर भी अभिनय की दृष्टि से सफल न हो पाये।'

▶ नाटकों की रचना में प्रवृत्त हुए जो पाठ्य अधिक हैं, अभिनय कम

प्रसाद जी ऐतिहासिक नाटकों की रचना करने वाले हिन्दी के प्रमुख नाटककार माने जाते हैं। भारत के अतीत गौरव का चित्रण करने के साथ-साथ उन्होंने राष्ट्रीयता का भावना उत्पन्न करने का प्रयास अपने नाटकों के माध्यम से किया है। स्वयं प्रसाद जी अपने नाटक 'विशाख' की भूमिका में स्वीकार किया है 'मेरी इच्छा भारतीय इतिहास व अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।' प्रसाद जी ने अपने नाटकों के विषय बौद्धकाल, मौर्यकाल एवं गुप्तकाल से चुने हैं जो भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है।

▶ ऐतिहासिक नाटकों की रचना करने वाले हिन्दी के प्रमुख नाटककार

प्रसाद जी ने कुल मिलाकर सात ऐतिहासिक नाटकों की रचना की 'विशाख',

'अजातशत्रु', 'राज्यश्री', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'जनमेजय का नागयज्ञ'। इनमें से कलात्मक उत्कृष्टता की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' विशेष महत्वपूर्ण हैं। अपने पाठकों में प्रसाद जी ने अतीत के पट पर वर्तमान का चित्रण किया है तथा इतिहास एवं कल्पना का सन्तुलित समन्वय करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई है। 'ध्रुवस्वामिनी' में प्रसाद जी ने नारी समस्या को प्रस्तुत किया है। तलाक (विवाह मुक्ति) एवं पुनर्विवाह का अधिकार हिन्दू स्त्री को है या नहीं। इस समस्या को बड़े कौशल से उन्होंने प्रस्तुत किया है। प्रसाद जी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों की भूमिका में नाटक की कथावस्तु के ऐतिहासिक स्रोतों तथा अन्य विवरणों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। उन्होंने अपने नाटकों में भारतीय संस्कृति, जातीय गौरव एवं राष्ट्रीयता के गौरवपूर्ण चित्र अंकित किये हैं। उनके नारीपात्र आदर्श भारतीय रमणी के रूप को प्रस्तुत करते हैं।

▶ इतिहास एवं कल्पना का सन्तुलित समन्वय

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटक बेजोड़ हैं। उनमें भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यकला का सन्तुलित समन्वय हुआ। एक ओर तो उनमें कथावस्तु, गीत योजना, रस योजना, उदात्त नायक, विदूषक आदि भारतीय नाट्यकला से लिये गये हैं तो दूसरी ओर कार्य व्यापार, अंतर्द्वन्द्व, संघर्ष एवं व्यक्ति-वैचित्र्य जैसे तत्व पाश्चात्य नाट्यकला से लिये गये हैं। प्रसाद जी के नाटक न तो सुखान्त हैं और न ही दुःखान्त, अपितु वे प्रसादान्त हैं। नायक अंतिम फल का भोक्ता नहीं बन पाता और विषाद की एक छाया पाठकों के मन पर छूट जाती है। उदाहरण के लिए स्कन्दगुप्त नाटक को लिया जा सकता है। स्कन्दगुप्त अपने मार्ग में आने वाली सारी बाधाओं पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त भी अन्त में नायिका देवसेना को प्राप्त नहीं कर पाता। देवसेना यह कहकर उसके विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देती है- 'मेरे इस जीवन के देवता और उस जीवन के प्राप्य क्षमा।' रंगमंचीयता एवं अभिनेयता की दृष्टि से भी प्रसाद जी के नाटक दोषपूर्ण हैं। विस्तृत एवं विश्रृंखलित कथानक, दृश्यों की बहुलता, लम्बे-लम्बे स्वगत कथनों, दार्शनिक उक्तियों एवं संस्कृतगर्भित लाक्षणिक भाषा उनके नाटकों की अभिनेयता में बाधक है। वस्तुतः उनके नाटक पाठ्य अधिक हैं, अभिनेय कम।

▶ नाटक न तो सुखान्त हैं और न ही दुःखान्त, अपितु वे प्रसादान्त हैं

प्रसाद जी प्रयोगधर्मी नाटककार थे। उन्होंने अपने परवर्ती नाटकों में विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से प्रयोग किये और अन्ततः ध्रुवस्वामिनी के रूप में एक ऐसा सशक्त नाटक लिखा जो पूरी तरह अभिनीत किये जाने योग्य है, क्योंकि इसमें वे त्रुटियाँ नहीं हैं जो उनके अन्य नाटकों की अभिनेयता में बाधक मानी गयी हैं। उन्होंने न केवल ऐतिहासिक नाटक लिखे, अपितु 'कामना' नामक नाट्यकृति की रचना भी की जो संस्कृत के 'प्रबोध चन्द्रोदय' शैली की एक अन्योपदेशक रचना है 'एक घूँट' उनका सफल एकांकी है तो 'करुणालय' को गीत नाट्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

▶ प्रयोगधर्मी नाटककार

प्रसाद युग में इतिहास का आधार लेकर अनेक महत्वपुर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की गईं। इस समय के नाटककारों की दृष्टि इतिहास की ओर विशेष रूप से गई क्योंकि यह युग पुनरुत्थान और नवजागरणवादी प्रवृत्तियों से अनुप्राणित था। फलतः जन साधारण में अपने गौरवपूर्ण इतिहास तथा अपनी महान सांस्कृतिक चेतना का संदेश देना इन नाटककारों ने अपना कर्तव्य समझा। इस काल की गौण ऐतिहासिक कृतियों में गणेशदत्त इन्द्र-कृत 'महाराणा संग्रामसिंह' (1911), भंवरलाल सोनी-कृत 'वीर कुमार छत्रसाल' (1923), चन्द्रराज भण्डारी-कृत 'सम्राट अशोक' (1923) ज्ञानचन्द्र शास्त्री-कृत 'जयश्री' (1924) प्रेमचन्द-कृत 'कर्बला' (1928), जिनेश्वर प्रसाद भायल-कृत 'भारत गौरव' अर्थात् 'सम्राट चन्द्रगुप्त' (1928) दशरथ ओझा-कृत 'चित्तौड़

की देवी' (1928) और 'प्रियदर्शी सम्राट अशोक' (1935), जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द-कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा' (1929), चतुरसेन शास्त्री-कृत 'उपसर्ग' (1929) और 'अमर राठौर' (1933) उदयशंकर भट्ट-कृत 'विक्रमादित्य' (1929) और 'दाहर अथवा सिंधपतन' (1943), द्वारिका प्रसाद मौर्य कृत 'हैदर अली या मैसूर-पतन' (1934), धनीराम प्रेम-कृत 'वीरांगना पन्ना' (1933) जगदीश शास्त्री-कृत 'तक्षशिला' (1937) उमाशंकर शर्मा-कृत 'महाराणा प्रताप' आदि को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। इन नाटककारों ने आदर्शवादी प्रवृत्ति के बावजूद स्वाभाविकता का बराबर ध्यान रखा और कल्पना और मनोविज्ञान की सहायता से प्राचीन काल की घटनाओं और चरित्रों को स्वाभाविकता के साथ चित्रित करने की चेष्टा की। पुरानी मान्यताओं तथा अतिलौकिक वर्णनों के स्थान पर वास्तविक कथा-वस्तु को प्रयोग में लाया गया है। सारांश यह है कि इन नाटकों के कथानक महत् हैं, चरित्र सभी दार्शनिक और आदर्शवादी हैं, शैली कवित्वपूर्ण और अतिरंजित है और नाटकों का वातावरण संगीत और काव्यपूर्ण है। ये नाट्य-कृतियाँ हिन्दी नाट्य-कला विकास का एक महत्वपूर्ण चरण पूरा करती हैं।

▶ प्रसादयुगीन अन्य नाटककार

स्वातंत्र्योत्तर नाटक

इस काल के नाटकों को मुख्यतः सामाजिक-सांस्कृतिक, व्यक्तिवादी और राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित नाटकों में बाँटा जा सकता है। स्वतन्त्रता के बाद का यह समय नाटकों के विकास की दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण है कि इस काल में 'संगीत नाटक अकादमी' और 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' की स्थापना ने इसे अनुकूल माहौल उपलब्ध कराया और रंगमंच ने नया रूप ग्रहण किया। इस दौर के सामाजिक-सांस्कृतिक नाटकों में आदर्शोन्मुखी दृष्टि से सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के प्रयास के साथ-साथ आधुनिक जीवन के टूटते हुए मूल्यों की व्याख्या मिलती है। परिवार और सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ चित्रित मिलती हैं, तो व्यक्तिवादी नाटकों में व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व से उत्पन्न स्थितियों का चित्रण मिलता है। मोहन राकेश के प्रमुख नाटक इसी वर्ग के अन्तर्गत रखे गए हैं। उनके तीन प्रमुख नाटकों 'आषाढ़ का एक दिन' (सन् 1958), 'लहरों के राजहंस' (सन् 1963) और 'आधे-अधूरे' (सन् 1969) में व्यक्ति और समाज का यह द्वंद्व प्रमुखता से दृष्टिगत होता है।

▶ 'संगीत नाटक अकादमी' और 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' की स्थापना

राजनीतिक नाटकों में आधुनिक युग के राजनेताओं के आदर्शों, मूल्यों और विश्वासों के पतन का चित्रण बेहद रोचक तरीके से किया गया है। इसके साथ-साथ सत्ताधारी वर्ग द्वारा किए जाने वाले दुराचार, भ्रष्टाचार का चित्रण भी मिलता है। इस काल के नाटकों की प्रमुख विशेषता शिल्प और रंगमंच की दृष्टि से इनका सुदृढ़ होना भी है। नाटक एक दृश्य काव्य है और सम्प्रेषण का एक सशक्त माध्यम भी है। वह प्रेक्षक से अपना तादात्म्य स्थापित करता है। जगदीशचन्द्र माथुर ने जिन नाटकों की रचना की उनमें 'कोणार्क' उनका महत्वपूर्ण नाटक है। डॉ. दशरथ ओझा ने अपनी पुस्तक 'आज का हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव' में लिखा है, "'कोणार्क' के रचयिता ने कुल-रीति भंजक शिल्पी विशु का समयानुसार चरित्र दिखाकर विसंगति नाटककार के रूप में प्रसिद्धि पाई।"

▶ शिल्प और रंगमंच की दृष्टि से सुदृढ़ होना

इस युग के अन्य महत्वपूर्ण नाटककार धर्मवीर भारती हैं। इनका गीति-नाट्य अन्धा-युग (सन् 1955) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह गीति-नाट्य महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से प्रभास-तीर्थ में कृष्ण के देहावसान तक की कथा पर आधारित है। दुष्यंत कुमार का 'एक कंठ विषपायी' (1963) एक महत्वपूर्ण गीतिनाट्य है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने

कई नाटकों की रचना की है। इन नाटकों में 'अन्धा कुआँ' (सन् 1955), 'मादा कैक्टस' (सन् 1959), 'तीन आँखों वाली मछली' (सन् 1960), 'सुन्दर रस', 'सूखा सरोवर' (सन् 1960), 'रक्त कमल' (सन् 1962), 'रात रानी' (सन् 1962), 'दर्पण' (सन् 1963), 'सूर्यमुख' (सन् 1968), 'कलंकी', 'मिस्टर अभिमन्यु' (सन् 1971), 'कर्फ्यू' (सन् 1972) आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं। रंगमंच की दृष्टि से लाल के सभी नाटक अभिनेय है। मोहन राकेश ने रंगमंच और अभिनेयता की दृष्टि कि नाट्यरचना से नाट्यरचना के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। मोहन राकेश इस काल के सबसे महत्वपूर्ण नाटककार हैं। उनके नाटकों ने रंगमंच एवं अभिनेयता को एक नया आयाम दिया। उन्होंने अपने नाटक 'आधे अधूरे' में पति-पत्नी के घिस-घिस कर टूटते सम्बन्धों के अंतर्द्वन्द्व को जिस कलात्मकता से प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र दुलर्भ है।

▶ रंगमंच एवं अभिनेयता को एक नया आयाम

"छायावादोत्तर काल की अन्य नाट्य कृतियों को स्थूल रूप से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- 1.स्वतन्त्र भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार से सम्बद्ध नाटक, 2. पीढ़ीगत संघर्षों का नैतिक मूल्यों से सम्बद्ध नाटक, 3.चीनी आक्रमण से सम्बद्ध नाटक।" पहली श्रेणी के अन्तर्गत चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के न्याय की रात और विनोद रस्तोगी के 'आज़ादी के बाद' तथा 'नया हाथ' नाटक रखे जा सकते हैं। न्याय की रात समाज को तोड़ने वाले तत्वों और स्वयं समाज के द्वन्द्व पर आधारित है। इसलिए इसमें संघर्ष की स्थितियाँ स्वाभाविकता लिए हुए है और विश्वसनीय हैं। थोड़ी कमियों के बावजूद यह रेखांकित करने योग्य नाटक कहा जा सकता है। 'आज़ादी के बाद' नाटक सामाजिक-आर्थिक विषमता और शोषण से मुक्ति के ताने-बाने पर रचा गया है। दूसरी श्रेणी के नाटकों में नरेश मेहता के 'सुबह के घण्टे' और 'खण्डित यात्राएँ' शीर्षक नाटकों तथा मन्नू भण्डारी के 'बिना दीवारों के घर' को रखा जा सकता है। 'खण्डित यात्राएँ' में पुरानी पीढ़ी की तकलीफ़ ज़रूर उभरती है, पर उसका आन्तरिक गढ़न बेहद कमज़ोर है। मन्नू भण्डारी के 'बिना दीवारों के घर' में पति-पत्नी के बीच का तनाव विश्वसनीय लगता है, क्योंकि आज के जटिल समय में पढ़ी-लिखी पत्नी और पति के बीच इस तरह का तनाव पनपना स्वाभाविक है। तीसरी श्रेणी की रचनाओं में शिव प्रसाद सिंह की 'घाटियाँ गूँजती हैं' और ज्ञानदेव अग्निहोत्री की 'नेफा की एक शाम' को रखा जा सकता है। 'घाटियाँ गूँजती हैं' में चीन-भारत-युद्ध का व्यापक फलक लिया गया है, तो 'नेफा की एक शाम' में चीनी आक्रमण के प्रतिरोध में आदिवासियों की एकजुटता की सार्थकता सिद्ध की गई है, लेकिन दोनों ही नाटक बहुत प्रभावशाली नहीं कहे जा सकते।

▶ नाट्य कृतियों को स्थूल रूप

नुक्कड़ नाटक

नुक्कड़ नाटक एक ऐसी नाट्य विधा है, जो परंपरागत रंगमंचीय नाटकों से भिन्न है। यह रंगमंच पर नहीं खेला जाता। सामान्य रूप से इसकी रचना किसी एक लेखक द्वारा नहीं की जाती, बल्कि सामाजिक परिस्थितियों और संदर्भों से उपजे विषयों को इनके द्वारा उठा लिया जाता है। जैसा कि नाम से प्रकट है इसे किसी सड़क, गली, चौराहे या किसी संस्थान के गेट अथवा किसी भी सार्वजनिक स्थल पर खेला जाता है। इसकी तुलना सड़क के किनारे मजमा लगाकर तमाशा दिखाने वाले मदारी के खेल से की जा सकती है। अंतर यह है कि यह नुक्कड़ का मजमा बुद्धिजीवियों द्वारा किसी उद्देश्य को सामने रखकर लगाया जाता है। भारत में आधुनिक नुक्कड़ नाटक को लोकप्रिय बनाने का श्रेय सफदर हाशमी को जाता है। उनके जन्म दिवस 12 अप्रैल को देशभर में राष्ट्रीय नुक्कड़ नाटक दिवस के रूप में मनाया जाता है।

▶ रंगमंच पर नहीं खेला जाता

वैसे तो नाटक और रंगमंच की शुरुआत ही खुले में हुई अर्थात् नुक्कड़ ही वह पहला स्थान था जो नाटकों के खेलने में प्रयोग हुआ। आदिम युग में सब लोग दिन भर काम से थक जाने के बाद मनोरंजन के लिए कहीं खुले में एक घेरा बनाकर बैठ जाते थे और उस घेरे के बीचों-बीच ही उनका भोजन पकता रहता, खान-पान होता और वहीं बाद में नाचना गाना होता। इस प्रकार शुरू से ही नुक्कड़ नाटकों से जुड़े तीन आवश्यक तत्वों की उपस्थिति इस प्रक्रिया में भी शामिल थी- प्रदर्शन स्थल के रूप में एक घेरा, दर्शकों तथा अभिनेताओं का अंतरंग सम्बंध और सीधे-सीधे दर्शकों की रोजमर्रा की जिदंगी से जुड़े कथानकों, घटनाओं और नाटकों का मंचन। मध्यकाल में ही सही रूप में नुक्कड़ नाटकों से मिलती-जुलती नाट्य-शैली का जन्म और विकास भारत के विभिन्न प्रांतों, क्षेत्रों और बोलियों भाषाओं में लोकनाटकों के रूप में हुआ। उसी के समांतर पश्चिम में भी चर्च अथवा धार्मिक स्थलों में इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और स्पेन आदि देशों में ऐसे नाटकों का प्रचलन शुरू हुआ जो बाइबिल की घटनाओं पर आधारित होते थे। आधुनिक युग में जिस रूप में हम नुक्कड़ नाटकों को जानते हैं, उनका इतिहास भारत के स्वाधीनता संग्राम के दौरान कौमी तरानों, प्रभातफेरियों और विरोध के जुलूसों के रूप में देखा जा सकता है। इसी का एक विधिवत रूप 'इप्टा' जैसी संस्था के जन्म के रूप में सामने आया, जब पूरे भारत में अलग-अलग कला माध्यमों के लोग एक साथ आकर मिले और क्रांतिकारी गीतों, नाटकों व नृत्यों के मंचनों और प्रदर्शनों से विदेशी शासन एवं सत्ता का विरोध आरंभ हुआ।

▶ तीन आवश्यक तत्वों की उपस्थिति इस प्रक्रिया में शामिल थी

हिन्दी के प्रमुख नाटककार-भारतेन्दु हरीश्चंद्र

आधुनिक हिन्दी साहित्य का निर्माता उर्दू का ही एक शायर था। उसी ने आधुनिक गद्य को नया रंग-व-ढंग और नयी शैली प्रदान की थी। उसके नाम से हिन्दी साहित्य का एक युग भी जुड़ा हुआ है। उस व्यक्तित्व का नाम भारतेंदु हरीश्चंद्र है और तख़ल्लुस रसा। कहा जाता है कि भारतेंदु ने सर सैयद अहमद ख़ान की उर्दू गद्य की सादगी और बयान की सफ़ाई से प्रभावित हो कर यह ढंग अपनाया था। ये इंस्टिट्यूट गज़ट अलीगढ़ के अहम क़लमकारों में से थे। जिनका उर्दू में एक मज़्मून "हिंदुओं का क़ानून-ए-विरसात" प्रकाशित हुआ था। मगर बाद में उर्दू का यही शायर हिन्दी-उर्दू विवाद में हिन्दी का कट्टर हिमायती और वकील बन गया।

▶ आधुनिक हिन्दी साहित्य का निर्माता

भारतेंदु हरीश्चंद्र 9 सितम्बर 1850 को बनारस में पैदा हुए। उनके पिता का नाम गोपाल चन्द्र गुरु हरदास क़लमी नाम से शायरी करते थे। बचपन में ही माता-पिता का साया सर से उठ गया था। उन्होंने 15 साल की उम्र में अपने माता-पिता के साथ पुरी के जगन्नाथ मंदिर की यात्रा की थी और वह बंगाल की संस्कृति से बहुत प्रभावित थे। यहीं से उन्हें ड्रामे और नॉवेल लिखने की प्रेरणा मिली। भारतेंदु हरीश्चंद्र ने विभिन्न गद्य विधाओं में अहम् कारनामे अंजाम दिये हैं। पत्रकार की हैसियत से भी उनका नाम बहुत अहम् है। उन्होंने 'कविवचनसुधा', 'हरीश्चंद्र मैगज़ीन', 'हरीश्चंद्र पत्रिका' और 'बाला बोधिनी' जैसी पत्रिकाओं का संपादन किया।

▶ पत्रकार की हैसियत से भी उनका नाम बहुत अहम् है

नाटककार के रूप में उनकी पहचान स्थायी है। उनके प्रसिद्ध नाटकों में भारत दुर्दशा, सत्य हरीश्चंद्र, नील देवी और अंधेर नगरी उल्लेखनीय हैं। भारतेंदु एक उम्दा शायर भी थे। उनकी प्रेम सीरीज़ की कविताएँ बहुत मशहूर हैं। भारतेंदु ने बहुत सी उत्कृष्ट रचनाओं के अनुवाद भी किये हैं। भारतेंदु हरीश्चंद्र सुधार आंदोलन से भी जुड़े हुए थे। औरतों की शिक्षा के प्रति

▶ 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन

जागरूकता के लिए 'बाला बोधिनी' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित करते थे। औरतों की शिक्षा से सम्बंधित उनकी कई किताबें हैं। 'नील देवी' नाटक का विषय भी नारी शिक्षा ही है। आधुनिक शिक्षा और तकनीक के वह प्रशंसक थे, इसीलिए मलका विक्टोरिया और प्रिंस ऑफ वेल्स को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

▶ पुनर्रुद्धार आंदोलन के आविष्कार

भारतेंदु हरीश्चंद्र साइंटिफ़िक सोसायटी अलीगढ़ के सदस्य भी थे और सर सैयद अहमद ख़ान के क़रीबी दोस्त भी थे। सर सैयद चाहते थे कि भारतेंदु अलीगढ़ कॉलेज में हिन्दी और संस्कृत के अध्यापन की सेवाएँ दें मगर भारतेंदु ने किसी वजह से सर सैयद के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। मगर वह इंस्टिट्यूट गज़ट के प्रशंसकों में से थे। सर सैयद के नाम एक उर्दू ख़त में इसे लिखा भी है। सर सैयद अकादमी अलीगढ़ में यह ख़त महफ़ूज़ है। सर सैयद अहमद ख़ान जब बनारस कोर्ट जज थे तो भारतेंदु के ख़िलाफ़ एक सैलानी ने रिट दायर की थी। केस सर सैयद की अदालत में था। सर सैयद ने हल्का सा जुर्माना लगाकर उन्हें बरी कर दिया। सर सैयद अहमद ख़ान से गहरे सम्बंध होने के बावजूद भारतेंदु उनके सिद्धांत के विरोधी भी थे। वह उस पुनर्रुद्धार आंदोलन के आविष्कारक थे जिसने अदालतों में उर्दू की जगह हिन्दी की पुरज़ोर वकालत की थी और जिसका गऊ हत्या पर पूरा ज़ोर था।

जयशंकर प्रसाद

▶ भारत के इतिहास में स्वर्ण युग

बहुमुखी प्रतिभा के धनी जयशंकर प्रसाद की हिन्दी साहित्य में ख्याति जितनी कवि के रूप में है, उतनी ही नाटककार के रूप में भी है। उनकी प्रमुख नाट्य कृतियाँ हैं- 'राज्यश्री', 'अज्ञातशत्रु', 'विशाख', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'स्कंदगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी'। उनकी समस्त नाट्य-कृतियों के कथानक इतिहास से लिये गये हैं तथा कथानक का मूल ढाँचा इतिहास और संस्कृति के समन्वय से तैयार किया गया है। उन्होंने भारतीय इतिहास के उसी काल को अपने नाटकों की विषय-वस्तु बनाया जो भारत के इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से जाना जाता है।

▶ नाटकों के विषय बौद्धकाल, मौर्यकाल और गुप्तकाल के इतिहास से चुने हैं

ऐतिहासिक नाटककारों में प्रसाद जी का प्रमुख स्थान है। अपने नाटकों में उन्होंने भारत के अतीत गौरव का चित्रण करने के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने का अनूठा प्रयास किया जो तत्कालीन स्वतंत्रता आन्दोलन की महती आवश्यकता थी। अपने नाटक 'विशाख' की भूमिका में वे अपने मंतव्य को व्यक्त करते हुए लिखते हैं 'मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।' उन्होंने अपने नाटकों के विषय बौद्धकाल, मौर्यकाल और गुप्तकाल के इतिहास से चुने हैं जो भारतीय इतिहास का स्वर्णिम काल है।

प्रसाद जी के नाटक अपनी विषय-वस्तु एवं कलात्मक उत्कृष्टता के कारण चर्चित हैं। स्कंदगुप्त एवं चंद्रगुप्त में उन्होंने राष्ट्रप्रेम एवं भारतीय संस्कृति का निरूपण करते हुए अतीत के पट पर वर्तमान का चित्र अंकित किया तो ध्रुवस्वामिनी में उन्होंने नारी के अधिकारों को प्रस्तुत किया। भारतीय संस्कृति, जातीय गौरव एवं राष्ट्रीयता के स्वर प्रसाद के नाटकों में उपलब्ध होते हैं। प्रसाद जी के नाटकों का शिल्प भी अद्वितीय है। उनके अधिकांश नाटकों में भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यकला का समन्वय है। भारतीय नाटकों में पायी जाने वाली गीत योजना, विदूषक की योजना, कथावस्तु की कार्यावस्थाओं, अर्थप्रकृतियों तथा संधियों

▶ विषय-वस्तु एवं कलात्मक उत्कृष्टता

में विभाजन उनके नाटकों में भी है तो दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों में उपलब्ध अन्तः बाह्य संघर्ष, अंतर्द्वन्द्व, सक्रियता, दृश्य विभाजन भी उनके नाटकों में है। प्रसाद जी के नाटक न तो सुखांत हैं न दुखांत अपितु वे प्रसादान्त हैं।

जगदीशचन्द्र माथुर

▶ हिन्दी रंगमंच को नयी दिशा देने का प्रयास

जगदीशचन्द्र माथुर ने हिन्दी रंगमंच को नयी दिशा देने का प्रयास अपने बहुचर्चित नाटकों के माध्यम से किया। 'कोणार्क' (1951 ई.), 'शारदीया' (1950 ई.), 'पहला राजा' (1969 ई.) तथा 'दशरथनन्दन' (1974 ई.) उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'कोणार्क' नाटक की कथा भुवनेश्वर (उड़ीसा) के कोणार्क मंदिर के साथ जुड़ी हुई है। शिल्पी विशु और शासक के संघर्ष की कथा वस्तुतः प्रभुसत्ता सम्पन्न शासक एवं गरीब शिल्पी की संघर्ष-गाथा है। शिल्पी अपनी कला उस आतंकी शासक के हाथ बेचना नहीं चाहता और अंतः संघर्ष से प्रेरित होकर अपनी रचना का स्वयं विध्वंस कर देता है। 'शारदीया' उनका ऐतिहासिक नाटक है जो मराठों और निज़ाम के बीच हुए युद्ध की पृष्ठभूमि पर आधृत है। राजनीतिक हथकण्डों से युक्त इस नाटक की कथावस्तु कसी हुई है तथा शिल्प में पाश्चात्य एवं भारतीय नाट्यकला का समन्वय किया गया है। 'पहला राजा' पौराणिक पृष्ठभूमि से युक्त होने पर समसामयिक युगीन संदर्भों से जुड़ा हुआ प्रतीकात्मक नाटक है। इस नाटक से लेखक ने विषमतापूर्ण राजनीति एवं शासन तंत्र की असफलताओं को व्यक्त किया है। 'दशरथ नन्दन' रामकथा पर आधृत नाट्यकृति है।

मोहन राकेश

▶ मोहन राकेश के नाटकों का शिल्प बेजोड़ है

मोहन राकेश आधुनिक काल के सशक्त नाटककार माने जाते हैं। यद्यपि उन्होंने केवल चार नाटकों की रचना की, तथापि संख्या में कम होने पर भी उनके नाटक हिन्दी में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनके नाटकों के नाम हैं 'आषाढ़ का एक दिन' (1950 ई.), 'लहरों के राजहंस' (1963 ई.) 'आधे-अधूरे' (1969 ई.) तथा 'पाँव तले की ज़मीन'। इनमें से पहले नाटक में महाकवि कालिदास के प्रेम को नाटक विषय-वस्तु बनाया है, जबकि 'लहरों के राजहंस' में नंद और सुन्दरी की कथा महात्मा बुद्ध के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत की गयी है। राग-विराग और श्रेय प्रेम के अंतर्द्वन्द्व की सफल अभिव्यक्ति इस नाटक में प्रस्तुत की गयी है। सुन्दरी नारी सौन्दर्य को आकर्षण का चरम बिन्दु मानती है और सौन्दर्य के अहं से ग्रस्त है। 'नन्द' अपनी अनिंद्य सुन्दरी पत्नी के प्रति आकृष्ट है किन्तु वह बौद्ध धर्म के प्रति भी आकृष्ट है। अन्ततः जब 'नन्द' बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर मुण्डित मस्तक लिए हुए घर आता है तो उस सौन्दर्यगर्विता सुन्दरी का अहं चूर-चूर हो जाता है। इस नाटक में चित्रित नन्द का व्यक्तित्व आधुनिक भावबोध से युक्त संशयशील मानव का प्रतीक है, जो अनिर्णय की स्थिति में रहने के लिए विवश है। 'आधे-अधूरे' मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बना को प्रस्तुत करने वाला एक सशक्त नाटक है। नायिका 'सावित्री' जिस पूर्ण पुरुष की तलाश में है, वह अपने पति महेन्द्रनाथ में नहीं खोज पाती। वह जिन चार पुरुषों के सम्पर्क में आती है, सबको अधूरा ही पाती है और अन्ततः यह सोचने को बाध्य हो जाती है 'सबके सब एक-से हैं।' मोहन राकेश के नाटकों का शिल्प बेजोड़ है। रंगमंच की दृष्टि से ये पूर्ण सफल नाटक हैं। संवाद, भाषा प्रस्तुतीकरण, दृश्य संकेत, रंग निर्देश, छाया प्रकाश आदि सभी दृष्टियों से वे रंगमंच पर सफलतापूर्वक अभिनीत किये जाने योग्य हैं।

रामकुमार वर्मा

डॉ. रामकुमार वर्मा (15 सितम्बर, 1905 - 5 अक्तूबर, 1990) का जन्म मध्य प्रदेश के सागर जिले में हुआ था। डॉ. वर्मा को हिन्दी एकांकी का जनक माना जाता है और आपको 'एकांकी सम्राट' कहा जाता है। आपकी प्रारंभिक शिक्षा मध्य प्रदेश में हुई। आपकी उच्च शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय से हुई। स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद आप वहीं हिन्दी विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए और बाद में विभागाध्यक्ष पदोन्नत हुए। नाटककार और कवि के साथ-साथ आपने समीक्षक, अध्यापक तथा हिन्दी साहित्येतिहास लेखक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आप गर्व के साथ कहते थे, 'ऐतिहासिक एकांकियों में भारतीय संस्कृति का मेरुदंड-नैतिक मूल्यों में आस्था और विश्वास का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।' आपके काव्य में रहस्यवाद और छायावाद की झलक है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास प्रसिद्ध नाटकों में राष्ट्रनायकों के चरित्रों के सहारे प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को जीवंत करके दर्शकों तथा पाठकों के हृदय में राष्ट्र प्रेम की भावना जागृत करने का प्रयास किया। उनके नाटकों के नायक प्रायः अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राणों की बलि देने को सदा तैयार रहते हैं।

▶ हिन्दी एकांकी का जनक

आपकी कृतियाँ हैं: एकांकी संग्रह : 'पृथ्वीराज की आंखें', 'रेशमी टाई', 'चारुमित्रा', 'विभूति', 'सप्तकिरण', 'रूपरंग', 'रजतरश्मि', 'ऋतुराज', 'दीपदान', 'रिमझिम', 'इन्द्रधनुष', 'पांचजन्य', 'कौमुदी महोत्सव', 'मयूर पंख', 'खट्टे-मीठे एकांकी', 'ललित एकांकी', 'कैलेण्डर का आखिरी पन्ना', 'जूही के फूल'। नाटक : 'विजय पर्व', 'कला और कृपाण', 'नाना फड़नवीस', 'सत्य का स्वप्न'। काव्य : 'चित्ररेखा', 'चन्द्रकिरण', 'अंजलि', 'अभिशाप', 'रूपराशि', 'संकेत', 'एकलव्य', 'वीर हम्मीर', 'निशीथ', 'नूरजहाँ', 'जौहर', 'आकाशगंगा', 'उत्तरायण', 'कृतिका'। आलोचना एवं साहित्येतिहास : 'कबीर का रहस्यवाद', 'इतिहास के स्वर', 'साहित्य समालोचना', 'साहित्यशास्त्र अनुशीलन', 'समालोचना समुच्चय', 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'। सम्पादन : 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास'।

▶ प्रमुख रचनाएँ

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

अपनी विकास यात्रा में हिन्दी नाटक साहित्य भिन्न-भिन्न पड़ावों से गुज़रा है और इस क्रम में अपने युग-बोध और परम्परा को साधते हुए अपने विशिष्ट स्वरूप को विकसित किया है। यदि भारतेन्दु काल के नाटक साहित्य की बात करें, तो उसके समक्ष नाटक साहित्य के स्वरूप के विकास के साथ-साथ हिन्दी रंगमंच के विकास की चुनौती भी थी। पारसी रंगमंच के प्रभावों से अलग एक ऐसे रंगमंच का विकास करना, जो नाटक के साहित्यिक और तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं की अपेक्षाओं पर बराबर खरा उतरता हो- एक कठिन काम था, जिसे भारतेन्दु युग के नाटककारों ने बखूबी निभाया।

द्विवेदी युग, नाटक के इतिहास के लिहाज़ से ज़्यादा महत्वपूर्ण इसलिए भी नहीं कहा जाता कि इस युग ने अपने पहले और बाद के क्रमशः भारतेन्दु और प्रसाद युग जैसा योगदान नहीं दिया। बावजूद इसके नाटक साहित्य के विकास की निरन्तरता की दृष्टि से यह काल महत्वपूर्ण है। प्रसाद युग ने नाटकों में तमाम सम्भावनाओं की पड़ताल करते हुए नाटक के विकास को एक नई ऊर्जा दी। इस पूरी विकास यात्रा में हिन्दी नाटक विभिन्न स्वरूपों में ढलता हुआ आज एक ऐसे पायदान पर खड़ा मिलता है, जहाँ उसके पास संस्कृत नाट्य साहित्य से लेकर पश्चिमि और तमाम भारतीय भाषाओं के नाट्य साहित्य का अनुभव है। रंगमंच से अपने सम्बन्धों को लगातार पुख्ता करता हुआ यह अपने विकास पथ पर अग्रसर है। आज के नाटकों के लेखन में रंगमंच की महत्वपूर्ण भूमिका है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी नाटक के विकास के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. हिन्दी के प्रमुख नाटककारों के बारे में अपना मत प्रकट कीजिए।
3. प्रसादयुगीन नाटक की परिस्थितियों का विवेचन कीजिए।
4. नुक्कड़ नाटक से क्या तात्पर्य है?
5. जयशंकर प्रसाद के बारे में टिप्पणी लिखिए।
6. मोहन राकेश प्रमुख नाटककार है। अपना मत प्रकट कीजिए।
7. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों के बारे में टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी नाटक - डॉ. बच्चन सिंह।
2. समकालीन हिन्दी नाटककार - दिनेश चन्द्र वर्मा।
3. आधुनिक हिन्दी साहित्य - डॉ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - डॉ. गिरीश रस्तोगी।

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - डॉ. इन्द्रनाथ मदान।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

हिन्दी एकांकी, रंगमंच और विकास के चरण, हिन्दी का लोक रंगमंच

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी एकांकी के बारे में समझता है
- हिन्दी रंगमंच से परिचित होता है
- प्रमुख एकांकीकार से परिचित होता है
- हिन्दी के लोक रंग मंच से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

'एकांकी' साहित्य की वह विधा है, जो नाटक के समान अभिनय से संबंधित है और जिसमें किसी घटना या विषय को एक अंक में प्रस्तुत किया जाता है। कुछ आलोचक नाटक के लघु रूप को एकांकी कहते हैं, किन्तु यह भ्रान्त धारणा है। दोनों विधाएँ अपना स्वतन्त्र शिल्प रखती हैं। वर्तमान हिन्दी में एकांकी का शिल्प पाश्चात्य एकांकियों से प्रभावित है। संस्कृत में रूपक एवं उपरूपक के जो अनेक भेद किए गए हैं, उनमें 15 भेद 'एकांकी' से संबंधित हैं। एक अंक वाली इन नाट्य कृतियों को व्यायोग, प्रहसन, भाण, वीथी, नाटिका, ईहामृग, रासक, माणिका आदि अनेक नामों से जाना जाता रहा है, किन्तु हिन्दी एकांकी का संबंध संस्कृत के उक्त एकांकियों से किसी रूप में नहीं जोड़ा जा सकता। एकांकी (One Act Play) पश्चिम में अभिनीत किए जाने वाले उन 'नाटकों' को कहा जाता था, जिनमें एक अंक में ही कथा समाप्त हो जाती थी। वस्तुतः इनका प्रारम्भिक रूप लघु नाटकों जैसा ही था, किन्तु कालान्तर में शिल्पगत अन्तर आने से 'एकांकी' स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ ।

Keywords / मुख्य बिन्दु

नाटकीय कौशल, संकलनत्रय, सामाजिक विसंगतियाँ, पारसी थियेटर, भारत नाट्य समिति, नाट्य मंच

Discussion / चर्चा

एक अंक वाले नाटकों को एकांकी कहते हैं। अंग्रेजी में 'वन एक्ट प्ले' शब्द के लिये हिन्दी में एकांकी नाटक और एकांकी दोनों ही शब्द प्रचलित हैं। पश्चिम में एकांकी विधा प्रथम विश्व युद्ध के बाद प्रचलित व लोकप्रिय हुई। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में एकांकी का प्रचलन बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में हुआ। लेकिन इससे पूर्व भी पूरब और पश्चिम में एकांकी साहित्य का उल्लेख मिलता है। दशरूपक और साहित्यदर्पण में वर्णित व्यायोग, प्रहसन, भाण, वीथी, नाटिका, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रकाशिका, उल्लाप्य, काव्य प्रेखण, श्रीगदित, विलासिका, प्रकरणिका, हल्लीश आदि रूपकों, उपरूपकों को आधुनिक एकांकी साहित्य का पूर्वरूप माना जा सकता है। साहित्य दर्पण में एकांक शब्द का भी प्रयोग हुआ है।

▶ हिन्दी एकांकी

एकांकी एक स्वतंत्र विधा है किसी नाटक का अंश नहीं है। पर्सी वाइल्ड के अनुसार, एकांकी में जीवन की अभिव्यक्ति क्रमिक एवं व्यवस्थित ढ़ंग से होती है। सर्वोच्च अन्विति तथा मितव्ययिता इसकी अनिवार्य विशेषताएँ है। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार, एकांकी नाटक में अन्य प्रकार के नाटकों की अपेक्षा विशेषता होती है। उसमें एक ही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशल से ही कौतूहल का संचय करते हुए चरम सीमा तक पहुँचती है। उसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता। एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द प्राण की तरह आवश्यक रहता है। सेठ गोविन्ददास के अनुसार, एकांकी की रचना एक ही विचार पर होती है। इस विचार का विकास संघर्ष से होता है तथा एकांकी में इसका कोई एक पक्ष ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

▶ सर्वोच्च अन्विति तथा मितव्ययिता

भारतेन्दु द्वारा रचित प्रेमयोगिनी(1875) को हिन्दी का पहला एकांकी माना जाता है। यद्यपि इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। आधुनिक हिन्दी एकांकी साहित्य की प्रथम मौलिक कृति जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित एक घूँट(1929) को माना जा सकता है। इसमें शिल्पगत महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। नाटक की प्राचीन परम्पराओं(संगीत व्यवस्था, संस्कृत नाट्य प्रणाली का विदूषक, स्वगत कथन, आदि) के साथ-साथ आधुनिक एकांकी की विशेषताएँ(स्थल की एकता, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, गतिशील कथानक, आदि) भी देखने को मिलते हैं। पाश्चात्य नाटककारों हैनरिक, इब्सन, गाल्सवर्दी, बर्नार्ड शॉ, आदि का प्रभाव भी इस युग के एकांकीकारों पर पड़ा। एकांकीकारों ने कृत्रिमता व अस्वाभिवकता का बहिष्कार करके सामाजिक, पारिवारिक व दैनिक समस्याओं को एकांकियों का विषय बनाना प्रारंभ किया। नयी समस्याएँ, विचारधारा व गद्यात्मक शिष्ट भाषा का प्रयोग हुआ। संवादों में सजीवता, संक्षिप्तता एवं मार्मिकता की ओर ध्यान दिया गया। प्रहसन, फेंटेसी, गीति नाट्य, ओपेरा, संवाद या सम्भाषण, रेडियो प्ले, मोनोड्रामा आदि नवीन रूपों का विकास इसी समय हुआ।

▶ हिन्दी का पहला एकांकी

हिन्दी एकांकी को एक महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा के स्तर पर पहुँचाने में डॉ. रामकुमार वर्मा का अविस्मरणीय योगदान है। डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा रचित 'बादल की मृत्यु' नामक एकांकी को हिन्दी का पहला आधुनिक शिल्पयुक्त एकांकी कहा गया है। सर्वप्रथम रामकुमार वर्मा के एकांकियों में ही पश्चिमी रचना शिल्प का समग्र रूप से प्रयोग हुआ और आधुनिक हिन्दी एकांकी का स्पष्ट रूप सामने आया। डॉ.वर्मा के महत्वपूर्ण एकांकी संकलन हैं- पृथ्वीराज की आँखें(1936), रेशमी टाई(1941), विभूति(1947), रूप तरंग(1948), कौमुदी महोत्सव(1948), रजतरश्मि(1952) आदि वर्मा जी ने मुख्यतः ऐतिहासिक व सामाजिक नाटक लिखे हैं। संकलन त्रय(स्थान, समय और घटना) का निर्वाह, रंग संकेत का समुचित विधान, कथानक के निरंतर विकास के रहते हुए, उत्सुकता का विधान करते हुए तीव्रता और क्रियात्मकता का संयोजन किया है। धीरे-धीरे अन्य कथाकार भी एकांकी लिखने लगे।

▶ आधुनिक शिल्पयुक्त एकांकी

प्रसिद्ध नाटककार सेठ गोविंददास ने विविध रूपी एकांकी लिखे। एक दृश्य वाले, एकाधिक दृश्य वाले, एकपात्रीय, बहुपात्रीय, यथार्थमूलक, सामाजिक, भावात्मक तथा विचारात्मक अनेक प्रकार के एकांकी लिखे। सेठ गोविंददास द्वारा रचित विटमेन, अधिकार लिप्सा, वह मरा क्यों नहीं, हंगर स्ट्राइक, कंगाल नहीं, ईद और होली, सच्चा जीवन प्रसिद्ध एकांकी हैं। पं.उदयशंकर भट्ट के एकांकी भी नवीन शैली व धारा के परिचायक हैं। स्त्री हृदय, समस्या का अंत, धूमशिखा, अंधकार और प्रकाश, आदिम युग, पर्दे के पीछे, चार एकांकी, अभिनव

▶ विविध रूपी एकांकी

एकांकी, दो अतिथि, असली नकली प्रसिद्ध एकांकी हैं। आपके एकांकी रूपक के रूप में आकाशवाणी से प्रसारित होते रहे हैं। मत्स्य गंधा, विश्वामित्र, राधा आपके भाव नाट्य हैं।

▶ जीवन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति

उपेन्द्रनाथ अश्क ने जीवन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति एकांकियों में की है। सामाजिक विसंगतियों, रूढ़ियों, गलत मान्यताओं को व्यंग्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। आपने कठोर वास्तविकता की सच्चाई को एकांकियों में जैसा का तैसा अभिव्यक्त किया है, आप न तो कोई समाधान देते हैं ना ही उत्पन्न प्रश्नों के उत्तर। आपके प्रसिद्ध एकांकी हैं- जोंक, समझौता, घड़ी, छठा बेटा, लक्ष्मी का स्वागत, विभा, तौलिये, आदिमार्ग, तूफान से पहले, आदि। पं. लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अशोक वन, प्रलय के पंख, एक दिन, नारी का रंग, स्वर्ग में विप्लव, कावेरी में कमल आदि एकांकियों के माध्यम से वस्तुवादी, यथार्थमूलक जीवन दर्शन का प्रतिपादन किया है।

▶ विचार प्रधान और घटना प्रधान एकांकी

जगदीश चन्द्र माथुर द्वारा रचित एकांकी विचार प्रधान और घटना प्रधान होते हुए भी मंचीय विशेषताओं से पूर्ण हैं। आपके प्रमुख एकांकी हैं- भोर का तारा, मेरी बाँसुरी, रीढ़ की हड्डी, मकड़ी का जाला, कलिंग विजय, आदि। आपके एकांकी अभिनेय हैं और मंचों पर अभिनीत किये जाते रहे हैं। आपने एकांकियों में रंग संकेतों का विधान किया है। विष्णु प्रभाकर जी ने अनेक प्रकार के एकांकी लिखे हैं- सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, मनोवैज्ञानिक, हास्य-प्रधान। आपने शिल्प की दृष्टि से मंचीय और रेडियो एकांकी भी लिखे हैं। आपके प्रसिद्ध एकांकी हैं- माँ का हृदय, संस्कार और भावना, रक्त चंदन, माँ बाप, टूटते परिवेश आदि। मोहन राकेश ने नाटकों की भाँति एकांकी में भी नये-नये प्रयोग किये। आपके एकांकी कौतूहल और जिज्ञासा से शुरू होते हैं और कथानक चरमोत्कर्ष पर समाप्त होता है, आगे नहीं जाता। अण्डे के छिलके, सिपाही की माँ, प्यालियाँ टूटती हैं, बहुत बड़ा सवाल आपके प्रसिद्ध एकांकी हैं।

▶ नये-नये प्रयोग

हिन्दी की अन्य विधाओं के समान एकांकी विधा में भी नये-नये प्रयोग किये गये। मंचीय एकांकी के अतिरिक्त ध्वनि एकांकी, ओपेन एयर एकांकी, चित्र एकांकी(टेलीविजन पर दिखाये जाने वाले), आदि। कुछ बेमानी(एब्सर्ड) नाटक भी लिखे गये। जिनमें प्रमुख हैं- मम्मी ठकुराइन(डॉ. लक्ष्मी नारायण), ढ़ोल की पोल(ध्वनि नाटक-चिरंजीत), आदमखोर(ओपेन एयर एकांकी-राजेंद्र), सुअर बाड़े का जमादार(गली एकांकी- कंचन कुमार) आदि। अति आधुनिक युग में लिखे जा रहे अधिकांशतः एकांकियों में प्रायः गीतों का अभाव होता है, प्रकाश का जमकर प्रयोग किया जाता है, पर्दों की जरूरत बहुत कुछ समाप्त हो गयी है, संवाद अत्यंत कसे हुए और चुटीले हैं, चित्र एकांकियों में अब पहाड़ी नदी की चंचलता, सड़कों पर भागती कारें, समुद्र में चलते यान आदि दिखाये जाते हैं।

भारतेन्दु युग में भी एकांकी लिखे गए, किन्तु वे नाटक अधिक हैं, एकांकी कम। आधुनिक एकांकी का आरम्भ वास्तव में डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकी लेखन से होता है। इन्होंने ऐतिहासिक विषयों पर 'कौमुदी महोत्सव', 'चारुमित्रा' जैसे लोकप्रिय एकांकी लिखे। इसके साथ ही भुवनेश्वर (कारवाँ, ताँबे के कीड़े), उदयशंकर भट्ट (पर्दे के पीछे, आज का आदमी), उपेन्द्रनाथ अश्क (लक्ष्मी का स्वागत, सूखी डाली), विष्णु प्रभाकर (प्रकाश और परछाईं) उल्लेखनीय एकांकी लेखक हैं। मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, अश्क, भारतभूषण अग्रवाल रेडियो एकांकी के क्षेत्र में भी बहुत लोकप्रिय रहे हैं। लक्ष्मीनारायण लाल ने सामाजिक

जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति और रंगमंच की दृष्टि से सफल अनेक एकांकियों की रचना की है जिनमें 'ताजमहल के आँसू', 'पर्वत के पीछे', 'दूसरा दरवाजा' उल्लेखनीय है। आधुनिककाल में एकांकी विधा, लेखन और रंगमंच दोनों ही दृष्टि से समृद्ध हो रही है। रंगमंच में प्रकाश-ध्वनि के विशेष प्रभाव से एकांकी की प्रभावशीलता बढ़ी है। प्रतीकात्मक रंगमंच व्यवस्था की भी नई-नई शैलियाँ विकसित हुई हैं।

▶ आधुनिक एकांकी का आरम्भ

रंगमंच और विकास के चरण

भारत में रंगमंच की प्राचीन परम्परा रही है जिसका प्रमाण हमें 'नाट्यशास्त्र' (भरतमुनि) में मिलता है। इसमें नाटक और रंगमंच से सम्बन्धित सभी पक्षों पर गम्भीर और विस्तृत दृष्टि से विचार किया गया है। भारतेन्दु के समय से पूर्व रंगमंच की अन्य शैलियाँ स्वांग, नौटंकी आदि मिलती है। रामलीला तथा रासलीला के रूप में रंगमंच की सुदीर्घ परम्परा भी रही है। भारतेन्दु के समय असाहित्यिक और युगचेतना से असम्पृक्त लोकरंग की परम्परा थीं। साथ ही शुद्ध मनोरंजन वाली पारसी थियेटर कम्पनियाँ थी। 'इन्द सभा' नाटक के सफल मंचन से अनेक पारसी थियेटर कम्पनियाँ अस्तित्व में आईं। इनमें 'हिन्दू हैमेटिक कोर' पहली पारसी नाटक कम्पनी थी जिसने पहला हिन्दुस्तानी नाटक 'राजा गोपीचन्दर' 26 नवम्बर, 1853 को खेला नारायण प्रसाद बेताब, राधेश्याम कथावाचक ने पारसी थियेटर के लिए नाटक लिखे। पारसी रंगमंच एक ओर नौटंकी और स्वांग जैसी लोक नाट्य मंच की परम्परा से प्रभावित था, तो दूसरी ओर पाश्चात्य रंगमंच से।

▶ नाटक के सफल मंचन

पारसी रंगमंच की मूल्यहीनता और मर्यादाहीनता के विरोध में हिन्दी रंगमंच की अनेक संस्थाएँ आईं, जिनमें भारत सेन्टर (कानपुर), हिन्दी नाट्य मण्डली तथा हिन्दी नाट्य समिति (प्रयाग) भारतेन्दु नाट्य समाज (कलकत्ता), भारतेन्दु नाट्य मण्डली (काशी) आदि भारतेन्दु रंगमंच के प्रति विशेष जागरूक थे। उनके नाटकों में पर्दो, अभिनय संकेतों, वेशभूषा, प्रकाश योजना तथा नेपथ्य संगीत के बारे में पर्याप्त निर्देश मिलते हैं। द्विवेदी युग में नाटक और रंगमंच दोनों की पर्याप्त उदासीनता के कारण पारसी थियेटर कम्पनियाँ फिर फलने-फूलने लगीं।

▶ रंगमंच की संस्थाएँ

जयशंकर प्रसाद ने 'रंगमंच' लेख में अपनी रंगमंच दृष्टि का परिचय दिया है। उनके नाटक पारसी रंगमंच से काफी प्रभावित हैं जैसे-नाटकों में गीतिविधान, रोमांचक दृश्यों की योजना आदि। कहा जाता है कि प्रसाद के नाटकों में संस्कृत रंगमंच की आत्मा और पारसी रंगमंच का शरीर है। आधुनिककाल में रंगमंच का बहुविधि विस्तार हुआ है। पृथ्वी थियेटर, जननाट्य संघ (इप्टा), राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, म. प्र. सरकार का भारत भवन का रंगमंच आदि उल्लेखनीय है। बीसवीं सदी में ही लोक रंगमंच के प्रति विशेष रूझान दिखाई पड़ता है।

▶ रंगमंच के प्रति विशेष रूझान

हिन्दी का लोक रंगमंच

हिन्दी रंगमंच संस्कृत, लोक एवं पारसी रंगमंच की पृष्ठभूमि का आधार लेकर विकसित हुआ है। ध्यातव्य है कि भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में 'नाट्य' शब्द का प्रयोग केवल नाटक के रूप में न करके व्यापक अर्थ में किया है जिसके अंतर्गत रंगमंच, अभिनय, नृत्य, संगीत, रस, वेशभूषा, रंगशिल्प, दर्शक आदि सभी पक्ष आ जाते हैं। भारत में संस्कृत रंगमंच की पृष्ठभूमि में चले जाने के बाद भी लोक रंगमंचों की परंपरा अत्यंत सुदृढ़ रही। नौटंकी, रासलीला,

रामलीला, स्वांग, नकल, खयाल, यात्रा, यक्षगान, नाचा, तमाशा आदि लोकप्रिय लोक-नाट्य रूप रहे हैं। इसी प्रकार पारसी रंगमंच की भी हिन्दी रंगमंच के विकास में ऐतिहासिक भूमिका है। बलवंत गार्गी हिन्दी रंगमंच का सूत्रपात पारसी रंगमंच से ही मानते हुए कहते हैं कि 'जिस समय बंगाल में 1870 में व्यवसायिक थिएटर की नींव रखी जा रही थी, तब कुछ पारसी मुंबई में नाटक और ललित कलाओं में रुचि लेने लगे। परिणाम यह हुआ कि पारसियों ने व्यवसायिक हिन्दी नाटक की स्थापना करने में पहल की' इस बात का समर्थन प्रसिद्ध नाट्य समीक्षक नेमिचंद्र जैन तथा अन्य विद्वान भी करते हैं।

▶ संस्कृत,लोक एवं पारसी रंगमंच की पृष्ठभूमि का आधार

हिन्दी रंगमंच का प्रारंभ 1853 ईसवी में नेपाल के माटगांव में अभिनीत 'विद्याविलाप' नाटक से माना जाता है। किंतु यह नेपाल तक ही सीमित रह गया। वस्तुतः हिन्दी रंगमंच का नवोत्थान 1871 ईसवी में स्थापित 'अल्फ्रेड नामक मंडली' से हुआ। जिसने भारतेंदु और राधाकृष्ण दास के नाटकों का मंचन प्रस्तुत किया। राधेश्याम कथावाचक इस मंडली के प्रमुख नाटककार थे। इस मंडली के मंच पर स्त्री चरित्रों की भूमिका पुरुष पात्र ही किया करते थे, इसी बीच कोलकाता के 'मॉर्डन थिएटर' ने मुंबई की 'पारसी रंगमंच' की 'इम्पीरियर' आदि अनेक नाटक कंपनियों को खरीदकर कोलकाता को रंगमंच का केंद्र बना दिया। इन संस्थाओं के एकीकरण के कारण नारायण बेताब, आगा हश्र, तुलसीदत्त शैदा, हरिकृष्ण जौहर आदि अनेक नाटककारों का संगम स्थल कोलकाता का 'मॉडर्न थिएटर' हो गया। मुंबई और कोलकाता के इन रंगमंच के एकीकरण ने हिन्दी रंगमंच के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया।

▶ हिन्दी रंगमंच के विकास में अभूतपूर्व योगदान

हिन्दी रंगमंच के विकास में 'भारतेंदु नाटक मंडली' (1906) की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस मंडली ने लगभग डेढ़ दर्जन नाटकों का मंचन किया जिसमें 'सत्य हरिश्चंद्र', 'सुभद्रा हरण', 'चंद्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' प्रमुख है। इस नाटक मंडली ने भारतेंदु युगीन नाटकों के साथ-साथ प्रसाद के नाटकों को भी सफलतापूर्वक मंचित कर हिन्दी के अपने स्वतंत्र रंगमंच के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। जयशंकर प्रसाद के नाटकों को मंचित कर इस संस्था ने सिद्ध किया कि प्रसाद के नाटक पूर्णतः अभिनेय है। आगे चलकर काशी हिंदू विश्वविद्यालय की 'विक्रम परिषद' की स्थापना 1939 ईस्वी में हुई थी। इसने नाटकों में स्त्री पात्र के लिए स्त्रियों द्वारा ही अभिनय की परंपरा डाली।

▶ हिन्दी के अपने स्वतंत्र रंगमंच के विकास का मार्ग

हिन्दी रंगमंच के विकास में काशी के पश्चात इलाहाबाद के रंगमंच का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यहाँ के महत्वपूर्ण नाट्य मंच 'आर्य नाट्य सभा', 'श्री राम लीला नाटक मंडली' तथा 'हिन्दी नाट्य समिति' थे। कानपुर की संस्थाओं ने भी हिन्दी रंगमंच को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यहाँ के प्रमुख नाट्य मंच है- 'भारत नाट्य समिति' और 'भारतीय कला मंदिर'। वर्तमान समय में कानपुर की 'कानपुर अकादमी ऑफ ड्रामेटिक आर्ट्स' तथा 'एँबेसडर' संस्थाएँ समकालीन नाटकों के मंचन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। बिहार में 'पटना नाटक मंडली' (1876) तथा 'अमेच्योर ड्रामेटिक एसोसिएशन' उल्लेखनीय नाट्य मंच रहे है।

▶ रंगमंच के विकास में इलाहाबाद के रंगमंच का योगदान

भारतेंदु युग

भारतेंदु युग में व्यापक पैमाने पर न सिर्फ नाट्य-लेखन हुआ बल्कि उनके मंचन के लिए भी प्रेरणा मिली। स्वयं भारतेंदु नाट्य लेखन एवं अभिनय के केंद्र में एक संस्था की तरह कार्यशील थे। भारतेंदु से पूर्व भी पारसी रंगमंच व्यवसायिक स्तर पर सक्रिय था। भारतेंदु ने सक्रिय होकर

पारसी रंगमंच के समानांतर एक अव्यवसायिक रंगमंच का आरंभ किया। भारतेंदु ने हिन्दी रंगमंच के विकास में परंपरा और आधुनिकता का समन्वय करते हुए संस्कृत नाट्य परंपरा के महत्वपूर्ण तत्वों को लोक नाट्य परंपरा के साथ समन्वित करते हुए अपनी विशिष्ट प्रतिभा से हिन्दी के अपने रंगमंच के विकास को तीव्र गति प्रदान की। उन्होंने पश्चिम की ग्रीक परंपरा को भी सीमित मात्रा में समाविष्ट किया। भारतेंदु ने अपने नाटकों को अधिकाधिक अभिनेय बनाए जाने पर बल दिया। उन्होंने अपने नाटकों में पात्र योजना, भाषा, संवाद योजना में रंग संकेतों के माध्यम से अभिनेता का भी ध्यान रखा।

▶ रंगमंच के विकास को तीव्र गति प्रदान की

पारसी थियेटर

आज यह बात अधिक उदारता से स्वीकार की जाने लगी है कि हिन्दी रंगमंच के विकास में पारसी रंगमंच की भूमिका को कम करके नहीं आंका जा सकता। पारसी थियेटर शुद्ध व्यवसायिक थियेटर था, इसलिए उसने अपनी मौलिक रंग पद्धतियों का विकास किया। इसमें अंग्रेजी की तुलना में भारतीय लोक रंग, शेरो-शायरी, उर्दू मिश्रित संवाद, भावुकता का आवेग, अतिनाटकीयता, गीत-संगीत की बहुलता, नृत्य, चमत्कारिक, ध्वनि-प्रभाव आदि पर अत्यधिक बल दिया गया।

पारसी रंगमंच की मूल विशेषताएँ निम्नलिखित थीं -

1. रंगमंच को व्यवसायिक रूप देकर प्रतिष्ठित करना और वेतन आधारित अभिनेताओं से कार्य कराना अर्थात् रंगकर्म की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करना।
2. पूरी हिन्दीभाषी जनता से संरक्षण प्राप्त करना और साहित्य व रंगमंच की दूरी को समाप्त करना।
3. रंगमंच की प्रवृत्ति के अनुकूल भाषा एवं अभिनय शैली पर बल देना।

▶ पारसी थियेटर शुद्ध व्यवसायिक थियेटर था

द्विवेदी युग एवं छायावाद युग राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के चरण थे जिसमें राष्ट्रीय संस्कृति एवं मर्यादा पर अधिक बल होने के कारण पारसी रंगमंच की व्यवसायिक पद्धतियों की तीव्र भर्त्सना की गई। लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में 'हिन्दी ने अतिशुद्धि एवं अर्थ - भावना के कारण पारसी रंगमंच को हिन्दी का अपना नहीं माना और रंगमंच दर्शक, रंगमंच - नाटक, विषयवस्तु - नाटक, पाठक - दर्शक, व्यवसाय - साहित्य के बीच करीब पचास वर्षों का भयानक अंतराल पैदा कर दिया।' किंतु पारसी रंग शैली को जनमानस में इतनी लोकप्रियता प्राप्त थी कि उससे भारतेंदु एवं प्रसाद अप्रभावित नहीं रह सके। दोनों ने पारसी रंगमंच की प्रतिक्रिया में लिखा लेकिन दोनों ने उसकी रंग - शैली, अभिनय - शैली और गीत संगीत के प्रभावों को जाने अनजाने ग्रहण किया है।

▶ पारसी रंगमंच की व्यवसायिक पद्धतियों की तीव्र भर्त्सना

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

एकांकी एक ऐसी विधा है, जिसका निरन्तर विकास हो रहा है। आधुनिक संचार माध्यमों में क्रान्ति आ जाने से एकांकी के स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। अब रेडियो और टी. वी. के लिए भी एकांकी लिखे जा रहे हैं। रेडियो एकांकियों में विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण ध्वनि के माध्यम से किया जाता है। आज हिन्दी में उच्च स्तर के रेडियों रूपक प्रतियोगितात्मक स्पर्धा के कारण लिखे जा रहे हैं। संक्षेप में, हिन्दी एकांकी विकास पथ पर अग्रसर है और उसके विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ, दिखाई दे रही हैं। विषय वस्तु की व्यापकता, वैचारिकता एवं शैलीगत विविधता के कारण हिन्दी एकांकी लोकप्रिय विधा के रूप में विकसित हुआ है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी एकांकी के बारे में टिप्पणी लिखिए ।
2. हिन्दी रंगमंच पर टिप्पणी लिखिए ।
3. प्रमुख एकांकीकार का परिचय दीजिए ।
4. पारसी थियेटर क्या है?
5. रंगमंच और विकास के बारे में लिखिए।
6. रंगमंच की विकास यात्रा पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास - डॉ. दशरथ ओझा
2. रंगमंच और नाटक - डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - डॉ. इन्द्रनाथ मदान।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल
6. गद्य की विविध विधाएँ - मजिदा आजाद

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 3

हिन्दी निबंध का विकास एवं प्रमुख निबंधकार, निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी निबंधों के प्रकार - विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, आत्मपरक (कविता क्या है - आचार्य रामचंद्र शुक्ल, विस्तृत अध्ययन) (नाखून क्यों बढते हैं - हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - विस्तृत अध्ययन)

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी निबंध के बारे में जानकारी प्राप्त होता है
- हिन्दी निबंध के विकास से अवगत होता है
- निबंधों के प्रकार को समझता है
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल का परिचय प्राप्त होता है
- हजारी प्रसाद द्विवेदी के बारे में जानकारी प्राप्त होती है

Background / पृष्ठभूमि

स्वतन्त्र एवं प्रतिष्ठित साहित्यिक विधा के रूप में 'निबन्ध साहित्य' का उदय हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग की देन है। आधुनिक काल में देश में राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों में हलचल, मुद्रण के अभूतपूर्व प्रयोग और पत्र-पत्रिकाओं के व्यापक प्रचार-प्रसार की स्थिति बनी। इनके बीच भारतेन्दु मण्डल के लेखकों ने पहली बार हिन्दी में निबन्ध विधा का प्रयोग किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध को गम्भीर तथा सुविचारित स्वरूप प्रदान किया, तो आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने ललित निबन्धों के द्वारा इस विधा को नई ऊँचाई दी। आज निबन्ध का दायरा इतना व्यापक हो गया कि ज्ञान विज्ञान के कई रूप इसके भीतर समाहित हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

कलात्मक निबन्ध, वस्तुनिष्ठ निबन्ध, रागात्मक सम्बन्ध

Discussion / चर्चा

हिन्दी में निबन्ध-कला का विवेचन प्रायः द्विवेदी काल के बाद हुआ है। हिन्दी के आलोचकों तथा निबन्धकारों ने इसके स्वरूप, तत्व, महत्व, उद्देश्य, शैली आदि पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार से निबन्ध में 'बुद्धि के साथ-साथ हृदय की भावात्मकता का भी योग रहता है।' उनके मतानुसार निबन्ध में व्यक्तिगत विशेषताओं का प्रतिपादन इस प्रकार होता है कि विभिन्न निबन्धों में एक ही वस्तु तथा विषय से सम्बन्ध रखने वाले अनेक भाव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक निबन्धकार अपने विषय को अथवा एक ही विषय को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखता है, जिससे वैविध्य के साथ-साथ वैशिष्ट्य उत्पन्न हो जाता है जो शैली का प्रमुख तत्व है।

- बुद्धि के साथ-साथ हृदय की भावात्मकता

बाबू श्यामसुन्दर दास (1875-1944 ई.) निबन्ध को आख्यायिका तथा गीति-काव्य के मध्य

की वस्तु स्वीकार करते हैं। उनका विचार है कि, 'निबन्ध एक साहित्यिक ललित गद्य रचना है जिसमें लेखक किसी भाव या विचार अथवा वस्तु आदि के वर्णन को सजीव शैली में प्रस्तुत करता है।' डॉ. गुलाबराय (1888-1963 ई.) ने निवन्ध को परिभाषित करते हुए लिखा है- 'निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।' पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (1906-1982 ई.) के अनुसार 'निबन्ध प्रबन्ध की अपेक्षाकृत लघु रचना है, जिसमें लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट प्रदर्शित होता है, भाषा में कसावट होती है तथा निगूढ़ होता है। उनके विचार से निबन्ध में ज्ञानात्मक अवयव तथा विचार का प्राधान्य होता है तथा वह बुद्धिजनित और व्यवसायात्मक होता है। वे उसे वाङ्मय का शास्त्रपक्ष कहते हैं। उनका विचार है कि निबन्धों में काव्य तथा काव्य में निबन्ध के तत्वों का समावेश नहीं होना चाहिए, क्योंकि दोनों की कला एक-दूसरे से अलग है।

▶ प्रबन्ध की अपेक्षाकृत लघु रचना

डॉ. जयनाथ 'नलिन' ने निबन्ध की परिभाषा इस प्रकार दी है- 'निबन्ध गद्य काव्य की वह मर्यादित विधा है जिसमें लेखक के स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों की सरल सजीव अभिव्यक्ति होती है।' डॉ. नलिन ने निबन्धों को स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सजीव एवं मर्यादित प्रकाशन माना है। डॉ. कृष्ण लाल के अनुसार- 'भावों एवं विचारों की प्रधानता तथा रमणीयता के योग द्वारा जिस नवीन साहित्यिक विधा का प्रचलन आधुनिक युग में हुआ उसे निबन्ध साहित्य की संज्ञा प्रदान की गई है।' अतः कहा जा सकता है कि निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सरल, सजीव और सीमित कलेवर में मर्यादित निबन्धन है। इसका स्वरूप ललित होना चाहिए।

▶ स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सजीव एवं मर्यादित प्रकाशन

हिन्दी निबंध का विकास एवं प्रमुख निबंधकार

हिन्दी निबंध के विकास को चार भागों में बाँटा गया है-

1. भारतेन्दु युग
2. द्विवेदी युग
3. शुक्ल युग
4. शुक्लोत्तर युग

1. भारतेन्दु युग (1868 ई. से 1900 ई.)

गद्य की अन्य विधाओं के साथ ही भारतेन्दु युग से हिन्दी निबंध का सूत्रपात एवं विकास होता है। इस युग के निबंधकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, श्रीनिवासदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी गद्य के जन्मदाता हैं। वे इस युग के प्रतिभा सम्पन्न निबंधकार हैं। उन्होंने समाज, राजनीति, धर्म, इतिहास, साहित्य आदि विविध विषयों पर निबंध रचना की है। इनके यात्रा संबंधी निबंध भी विशेष महत्व रखते हैं। जिन्दादिली, आत्मीयता एवं व्यंग्यात्मकता भारतेन्दु के निबंध-साहित्य की विशेषताएँ हैं।

▶ हिन्दी निबंध का सूत्रपात एवं विकास

बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहे जा सकते हैं। भट्ट जी 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका के सम्पादक थे। इनके निबंध भट्ट निबंधमाला, भट्ट निबंधावली तथा साहित्य सुमन संग्रहों में संकलित हैं। विचारात्मक एवं भावात्मक दोनों प्रकार के निबंधों की रचना में भट्ट जी

सफल रहे हैं। प्रतापनारायण मिश्र इस युग के स्वच्छन्द एवं मस्तजीवी निबंधकार हैं। इनके निबंध, ब्राह्मण पत्रिका, में प्रकाशित होते थे। 'प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली' में इनके निबंध संग्रहीत हैं। मनोरंजन तथा व्यंग्य इनके निबंधों की विशेषताएँ हैं। समग्र रूप से भारतेन्दु युग के निबंधों में हास्य व्यंग्य, देश-प्रेम, समाज सुधार और मनोरंजन जैसी विशेषताएँ प्रधान रूप से पाई जाती हैं।

▶ भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार

2. द्विवेदी युग (1901 ई. से 1920 ई.)

द्विवेदी युग के प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी आचार्य, समीक्षक और निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' के सम्पादक रहते हुए विविध विषयों पर निबंधों की रचना की थी। उन्होंने संस्कृति, साहित्य, समाज, धर्म, शिक्षा, इतिहास आदि विषयों पर विचारात्मक एवं आलोचनात्मक निबंधों की रचना की थी। उनके निबंधों में निबंध-कला के उत्कर्ष के स्थान पर विचारों एवं तथ्यों की प्रधानता है। अतः उनके निबंध बातों का संकलन बन गए हैं। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पद्म सिंह शर्मा, बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्दनारायण मिश्र, श्यामसुन्दरदास, अध्यापक पूर्णसिंह आदि इस युग के प्रसिद्ध निबंधकार हैं। इस युग के निबंधों से निबंध का विचार क्षेत्र व्यापक हुआ है। विचार-प्रधान निबंधों की रचना में इस युग के लेखक को सफलता मिली है, परन्तु भारतेन्दु युगीन आत्मीयता जिन्दादिली तथा सजीवता इस युग के निबंध में नही आयी हैं।

▶ विचारात्मक एवं आलोचनात्मक निबंधों की रचना

3. शुक्ल युग (1921 ई. से 1940 ई.)

शुक्ल युग के निबंधकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल शीर्षस्थ है। आचार्य शुक्ल ने मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबंधों की रचना की है, जो चिन्तामणि (दो भाग) में संगृहीत हैं। शुक्ल जी के निबंध विचारात्मक निबंधों का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इनमें बुद्धि और भाव का सन्तुलित समन्वय मिलता है। 'उत्साह', 'करुणा', 'भय' आदि शुक्ल जी के मनोभाव संबंधी प्रसिद्ध निबंध है। कविता क्या है? आदि इनके साहित्यिक एवं समीक्षात्मक निबंध है। शुक्ल जी की भाषा भावों और विचारों की अभिव्यक्ति में पूर्णतया सक्षम है।

▶ बुद्धि और भाव का सन्तुलित समन्वय

शुक्ल युग के निबंधकारों में बाबू गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, महादेवी वर्मा, राहुल सांकृत्यायन आदि उल्लेखनीय हैं। इन निबंधकारों की अपनी मौलिक विशेषताएँ है। बाबु गुलाबराय ने वस्तुपरक निबंधों की रचना की है। महादेवी के निबंध संस्मरणात्मक है। राहुल के निबंधों में विषय वैविध्य है। सियारामशरण गुप्त के निबंध वैयक्तिक है। इस युग में श्रीराम शर्मा ने आखेट विषयक निबंध लिखे हैं। डॉ. रघुवीर सिंह के भावात्मक निबंध भी प्रसिद्ध हैं। शुक्ल युग के इन निबंधकारों में विचारों की गम्भीरता के साथ साथ भाषा-शैली की प्रौढ़ता भी मिलती है।

▶ भाषा-शैली की प्रौढ़ता

4. शुक्लोत्तर हिन्दी निबंध (1940 ई. से अब तक)

शुक्लोत्तर युग के निबंधकारों में हजारीप्रसाद द्विवेदी अपने ललित निबंधों के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्हें सांस्कृतिक चेतना का निबंधकार माना जा सकता है। प्राचीन और नवीन का सामंजस्य उनकी उल्लेखनीय विशेषता है। 'अशोक के फूल', 'कुटज', 'कल्पलता', 'आलोक पर्व' आदि संग्रहों में द्विवेदी जी के निबंध संगृहीत है। उनकी भाषा प्रौढ़ है और शैली में व्यंग्य-विनोद। इस युग के अन्य निबंधकारों में वासुदेवशरण अग्रवाल, आचार्य नन्ददुलारे

▶ ललित निबंधों के लिए प्रसिद्ध

वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, भगतशरण उपाध्याय, जैनेन्द्र, रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, डॉ. सत्येन्द्र आदि के नाम भी पर्याप्त चर्चित है।

विगत चार दशकों में हिन्दी निबंध के क्षेत्र में कतिपय नई प्रतिभाओं का आविर्भाव हुआ है। इन्होंने ललित निबंध के मार्ग को प्रशस्त किया है। इन निबंधकारों में डॉ. विद्यानिवास मिश्र, धर्मवीर भारती, नामवर सिंह, शिवप्रसाद सिंह, श्रीलाल शुक्ल, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, हरिशंकर परसाई, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने निबंध के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। इन्होंने आचार्य द्विवेदी की सांस्कृतिक साहित्यिक ललित निबंध परम्परा को विकसित किया है। 'छितवन की छाँह', 'कदम की फूली डाल', 'तुम चन्दन हम पानी' आदि मिश्र जी के निबंध संग्रह हैं। इनके निबंधों में अनुभूति और चिन्तन का मेल है और भाषा में लालित्य और प्रवाह है। हरिशंकर परसाई हास्य व्यंग्य प्रधान निबंधों के लिए प्रसिद्ध हैं।

▶ सांस्कृतिक साहित्यिक ललित निबंध परम्परा का विकसित किया

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य की कई विधाओं में साहित्य का सृजन किया जिनमे मुख्य रूप से निबंध, कहानी, आलोचना व इतिहास लेखन शामिल हैं। शुक्लजी के निबन्ध मुख्यतः दो प्रकार के हैं- मनोविकार सम्बन्धी और समीक्षा सम्बन्धी। इसमें पहली कोटि के निबन्ध शुद्ध निबन्ध की श्रेणी में आते हैं और दूसरी कोटि के निबन्ध समालोचना की श्रेणी में। वस्तुतः शुद्ध निबन्ध की दृष्टि से उनके मनोविकार सम्बन्धी निबन्धों को ही रखा जा सकता है जिसमें विषय-विचार के साथ ही उनकी निजता की भी छाप दिखाई पड़ती है। इन निबन्धों में रामचन्द्र शुक्ल गम्भीर मुद्रा त्यागकर बीच-बीच में सहज बातचीत, हास्य- व्यंग्य और मधुर सम्भाषण की अनौपचारिक मुद्रा में दिखाई पड़ते हैं। श्रद्धा-भक्ति, करुणा, लज्जा और ग्लानि, ईर्ष्या आदि निबन्धों में शुक्लजी का सूक्ष्म विश्लेषण और व्यापक अनुभव दृष्टि गोचर होता है।

▶ सूक्ष्म विश्लेषण और व्यापक अनुभव

मनोविकार सम्बन्धी निबन्ध 'चिन्तामणि-1' में, समालोचना सम्बन्धी निबन्ध 'चिन्तामणि-2' में, तथा अन्य निबन्ध 'चिन्तामणि-3' में संगृहीत हैं। 'चिन्तामणि' (भाग एक) की भूमिका में रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- "इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर अपना रास्ता निकालती रही है। बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों पर पहुँची है, वहाँ हृदय थोड़ा-बहुत रमता हुआ अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कहता गया है।" स्पष्ट है कि शुक्लजी के निबन्धों में बुद्धि और हृदय की वृत्तियों का सुन्दर योग हुआ है जिनके कारण उनके निबन्धों में 'ललित उड़ान' के भी यत्र-तत्र दर्शन होते हैं, किन्तु इस कारण उन्हें ललित निबन्धों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। शुक्लजी के निबन्धों में प्रांजल साहित्यिक भाषा का प्रयोग मुख्य विशेषता है। शब्द-चयन, वाक्य-रचना, सादृश्य-विधान सब में उन्होंने अपनी काव्यात्मक रुचि का परिचय दिया है। 'प्रथम पुरुष' की शैली के प्रयोग के कारण उसमें आत्मीयता का बोध होता है।

▶ प्रांजल साहित्यिक भाषा का प्रयोग

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

हजारीप्रसाद द्विवेदी (सन् 1907-1979) स्वातंत्र्योत्तर भारत के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार आचार्य हैं। ललित निबन्ध का सर्वोत्कृष्ट रूप द्विवेदी जी के निबन्धों में ही दिखाई पड़ता है। इनके निबन्धों में पाण्डित्य का बहुत सहज रूप दिखाई देता है। वे इतिहास, पुराण और साहित्य

के गम्भीर विषयों पर लिखते रहे। उन विषयों को वे अपनी यायावरी कल्पना, अप्रासंगिक प्रासंगिकताओं, विषयान्तर, शब्दों और वाक्यों की काव्यमय अनुगूँज और लोकोक्तियों के मार्मिक प्रयोग से अनूठा बना देते थे। इसीलिए उनके निबन्धों में अध्ययन और सर्जन, पाण्डित्य और प्रतिभा, बौद्धिकता और हार्दिकता, शास्त्र और लोक का ऐसा संयोग हिन्दी में दुर्लभ है। द्विवेदी जी के निबन्ध संग्रह हैं- 'अशोक के फूल' (सन् 1948), 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता', 'विचार प्रवाह' और 'कुटज'। उनके यहाँ वृक्ष और फूल भारतीय सांस्कृतिक सन्दर्भ के रूप में प्रस्तुत हैं।

▶ स्वातंत्र्योत्तर भारत के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार

'अशोक के फूल', 'शिरीष के फूल', 'आम फिर बौरा गए हैं', 'कुटज', 'देवदारु' जैसे ललित निबन्धों द्वारा द्विवेदी जी ने हिन्दी निबन्ध को एक नया सांस्कृतिक आयाम प्रदान किया है। इन निबन्धों में द्विवेदी जी ने संस्कृति के किसी-न-किसी एक पक्ष का विवेचन किया है, अथवा अपने व्यक्तित्व की झलक दिखाई है। 'देवदारु' निबन्ध का यह अन्तिम वाक्य 'हजारों वर्षों के उतार-चढाव का ऐसा निर्मम साथी दुर्लभ है' इस बात का साक्षी है। उनके निबन्धों में एक ओर संस्कृत की तत्सम शब्दावली से संपृक्त उदात्त भाषा शैली है, तो दूसरी ओर ठेठ देशज और तद्भव शब्दों से सजी हुई यथार्थ की वर्णन शैली। 'कुटज' निबन्ध का उद्धरण "कुटज क्या केवल जी रहा है? वह दूसरों के द्वार पर भीख माँगने नही जाता; अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता, आत्मोन्नति के हेतु नीलम नहीं धारण करता, दाँत नहीं निपोरता, जीता है और शान से जीता है।" उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है। द्विवेदी जी ने ललित निबन्धों के अलावा विचारपरक, शोधपरक और समीक्षात्मक निबन्ध भी लिखे हैं, जो उनकी विद्वता और सहृदयता के साथ गुलेरी जी के निबन्ध परम्परा की अगली कड़ी जान पडते हैं।

▶ हिन्दी निबन्ध को एक नया सांस्कृतिक आयाम

निबंधों के भेद

हिन्दी आलोचना जगत् निबन्धों के वर्गीकरण को लेकर एकमत नहीं है। शुक्ल जी निबन्धों को तीन प्रकार का विचारात्मक, भावात्मक और वर्णनात्मक मानते हैं। शिवदान सिंह चौहान निबन्धों के केवल दो प्रकार मानते हैं- कलात्मक निबन्ध और वस्तुनिष्ठ निबन्ध। बाबू गुलाबराय ने निबन्ध को चार वर्गों में विभाजित किया (1)वर्णनात्मक, (2) विवरणात्मक, (3) विचारात्मक तथा (4) भावात्मक। इस सन्दर्भ के विभिन्न समीक्षकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। अतः किसी एक मत को स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। कुछ समीक्षक विषय-वस्तु के आधार पर निबन्धों के प्रकारों का वर्णन करते हैं, तो दूसरे शैली के आधार पर उनका भेद स्थापित करते हैं। निबन्ध की सम्पूर्णता तो दोनों ही दृष्टि से विचार करने पर उजागर होगी। विषय एवं शैली की दृष्टि से निबन्धों को छः प्रकार का माना जा सकता है- (1) विचार प्रधान, (2) भाव प्रधान, (3) वर्णन प्रधान, (4) आत्म प्रधान, (5) लालित्य प्रधान, (6) हास्य व्यंग्य प्रधान।

▶ विभिन्न समीक्षकों के भिन्न-भिन्न मत

1. विचार प्रधान निबन्ध

जिन निबन्धों में बुद्धि की प्रधानता हो, उन्हें विचारात्मक निबन्ध कहा जाता है। ऐसे निबन्धों में निबन्धकार का चिन्तन, मनन एवं सजग मस्तिष्क परिलक्षित होता है। इन निबन्धों में विषय का सारगर्भित, तर्कसंगत और विश्लेषण प्रधान प्रतिपादन किया जाता है। इनमें हृदय-पक्ष गौण और बुद्धि-पक्ष प्रधान होता है। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में, "विचारात्मक

निबन्धों में किसी विचारधारा, सामाजिक, साहित्यिक या राजनीतिक समस्या अथवा किसी नवीन तथ्य आदि का प्रतिपादन, विवेचन, विश्लेषण या स्पष्टीकरण किया जाता है।" इन निबन्धों में शब्द-प्रयोग की दृष्टि से दो शैलियाँ होती हैं- व्यास शैली जैसे महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि के निबन्धों में तथा दूसरी समास शैली जैसे शुक्ल जी के निबन्धों में। हिन्दी में कुछ प्रकार के विचारात्मक निबन्धों का प्रवर्तन महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा किया जा चुका था, लेकिन उनकी शैली निर्वैयक्तिक शैली ही रही। शुक्ल जी ने ही सर्वप्रथम सरल गम्भीर, वैयक्तिकता से पूर्ण विचारात्मक निबन्धों का आदर्श प्रस्तुत किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि निबन्ध की उपर्युक्त श्रेणियों में शुक्ल जी के निबन्ध केवल विचारात्मक श्रेणी के ही हैं। यद्यपि उनके विचारात्मक निबन्धों में यथा-प्रसंग कहीं-कहीं वर्णनात्मक, कथात्मक, भावात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक आदि सभी शैलियों के दर्शन होते हैं, लेकिन प्रमुख रूप से उन्होंने अपने गम्भीर विषय प्रधान विचारात्मक निबन्धों में विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक समास शैली का ही प्रयोग किया है। हास्य व्यंग्यपूर्ण शैली के सशक्त प्रयोग द्वारा आभासित होता है कि उनमें व्यंग्यात्मक निबन्ध लिखने की भी अद्भुत क्षमता थी, लेकिन उन्होंने ऐसे निबन्ध लिखने का उद्देश्य नहीं रखा। उनके निबन्ध विचारात्मक निबन्धों का चरमोत्कर्ष उपस्थित करते हैं।

▶ बुद्धि की प्रधानता

2. भाव प्रधान निबन्ध

भाव प्रधान निबन्ध उस विधा का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसका सम्बन्ध लेखक की भावना से ज्यादा होता है। लेखक की रागात्मक वृत्ति इन निबन्धों में आद्योपान्त बनी रहती है। इनमें अनुभूति, मनोवेग, उद्वेगों की उपस्थिति बनी रहती है। बात छोटी सी हो सकती है, लेकिन वह लेखक के मन में उतरकर उसे लिखने के लिए उद्वेलित करती है। निबन्धकार स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए उच्छ्वसित हो उठता है। इन निबन्धों में विचार गौण रहता है तथा हृदय की उदात्त अनुभूतियों, तीव्र भावनाओं और भावुकता का सुन्दर समावेश रहता है। डॉ. जयनाथ नलिन के विचारानुसार, "भावात्मक निबन्ध में हृदय का आग्रह प्रधान है। हृदय का अनुरोध हृदय सुनता है। इसमें भाव- रागात्मक तत्व का अधिकार सभी तत्वों पर रहता है। इसमें भाव के पश्चात् कल्पना और कल्पना के बाद विचार तत्व आएगा। तर्क, युक्ति, कार्य-कारण का इसमें बहिष्कार रहेगा। हृदय, जो आनन्द-विषाद, आकर्षण-विकर्षण, ममता-विरक्ति, किसी पदार्थ, दृश्य, स्थान या व्यक्ति के प्रति अनुभव करता है, कलाकार वही सब कुछ अपनी रचना में भर देता है। अनुभूतियाँ जितनी भी गहन और सघन होंगी, भाव जितने भी तीव्र और आकुल होंगे, प्रकाशन जितना भी स्पष्ट और निश्छल होगा, उसी अनुपात से निबन्ध सफल कहा जाएगा।"

▶ अनुभूति, मनोवेग, उद्वेगों की उपस्थिति

3. वर्णन प्रधान निबन्ध

वर्णन प्रधान निबन्ध वर्णनात्मक कहलाता है। इस प्रकार के निबन्ध में विचार, अनुभूति, कल्पना सभी वर्णन को प्राणवान, मोहक, आकर्षक और रसीला बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। ये सभी तत्व साधन बन स्थानगत चित्र उपस्थित करते हैं, यही चित्र निबन्ध में साध्य है। कलाकार की लेखनी या तूलिका की यही सफलता है कि उसके द्वारा जीता-जागता चित्र उपस्थित किया जाए। वर्णन में लेखक का व्यक्तित्व उभरना चाहिए। जिस स्थान, वस्तु, समय, कार्य-कलाप को लेखक प्रस्तुत करे, उसके प्रति पाठक की रागात्मकता जाग्रत हो, उसमें पाठक आनन्द का अनुभव करे। हिमकिरीट शोभा, पर्वत, माधवी निषा ही वर्णन के विषय नहीं, सूखे जंगल, जरा-जीर्ण भिखारिन, सनसनाती काली अमावस, आतप-ताप से झुलसता वृक्ष

भी कलाकार के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं। सद्य-स्नाता सुन्दरी से अधिक महत्व है जरा-जीर्ण भिखारिन का। यह लेखक की ममता की अधिक अधिकारिणी है। उपेक्षित साधारण वस्तु को कला का साध्य बनाना कलाकार की महत्ता है। "वर्णनात्मक निबन्धों में प्रायः भूगोल, यात्रा, वातावरण, ऋतु, तीर्थ, दर्शनीय स्थान, मेले-तमाशे, पर्व-त्योहार, सभा सम्मेलन आदि का वर्णन किया जाता है।"

▶ सभी तत्व साधन बन स्थानगत चित्र उपस्थित करते है

4. आत्म प्रधान निबन्ध

आत्मप्रधान निबन्ध, विचारात्मक या भावात्मक की सीमा में नहीं आता। इसी को प्रमुख आधार मानकर अंग्रेजी साहित्य समीक्षकों ने निबन्ध के दो वर्ग-विषयीगत और विषयगत किए। इन निबन्धों का स्वरूप इतना स्वाधीन, वैयक्तिक, पृथक् और प्राणवान् होता है कि इसमें से किसी की गोद में यह बैठ नहीं पाता, मचल-मचल पड़ता है। भावात्मक एवं विचारात्मक निबन्ध में भी कलाकार अपने 'व्यक्ति' की प्रतिष्ठा करता है, लेकिन इनमें उसका व्यक्ति रहते हुए भी, वह काफी कुछ अलग भी रह सकता है।

▶ कलाकार अपने 'व्यक्ति' की प्रतिष्ठा करता है

5. लालित्य प्रधान निबन्ध

ललित निबन्धों में कमनीय सौन्दर्य तथा सौन्दर्य तत्व की प्रधानता रहती है। भाषा और शैली का लालित्य भी कदम-कदम पर प्रदर्शित होता है। इन निबन्धों में जहाँ एक ओर संस्कृत शास्त्रीय वैभव का उज्ज्वल आलाना दृष्टिगोचर होता है, वहीं दूसरी ओर लोक-जीवन एवं लोक-संस्कृति की चाँदनी भी छिटकती हुई दृष्टिगोचर होती है। ललित निबन्धकार आपबीती सुनाता हुआ पाठकों के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। ललित निबन्ध गद्य काव्य की तरह रोचक एवं मनोरंजक होते हैं, इनमें आत्म-प्रकाशन के लिए व्यापक स्थान होता है। वस्तुतः इन निबन्धों में कहीं संस्मरण का मजा आता है, कहीं रेखाचित्र का-सा आनन्द आता है, कहीं आत्मकथा का रस होता है। प्रभावोत्पादक विचार-परम्परा, हृदय का माधुर्य, भाषा का लावण्य और शैली की रोचकता ललित निबन्ध के प्रमुख लक्षण हैं।

▶ पाठकों के साथ रागात्मक सम्बन्ध

6. हास्य-व्यंग्य प्रधान निबन्ध

आधुनिक हिन्दी निबन्ध का यह भी एक भेद स्वीकार किया गया है। आज की समस्यापूर्ण जिन्दगी में हास्य-व्यंग्य की अपनी महत्ता है। व्यक्ति न खुलकर हँस सकता है और न लड़ सकता है, ऐसी स्थिति में इन निबन्धों की अपनी एक रचनात्मक सार्थकता है। इन निबन्धों में हास्य-व्यंग्य प्रधान शैली में सामाजिक जीवन, राजनीतिक जीवन, धार्मिक जीवन और अन्य क्षेत्रों की विसंगतियों पर ज़ोरदार प्रहार किया जाता है। इस शैली के निबन्धकारों में इन्द्र शंकर मिश्र की 'चिकोटी', श्री वियोगी हरि का 'पगली', प्रभाकर माचवे का 'खरगोश के सींग' आदि विभिन्न निबन्ध संग्रह उल्लेख्य हैं। श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, गोपाल प्रसाद व्यास आदि निबन्धकारों का भी इन हास्य-व्यंग्य प्रधान निबन्धों में महत्वपूर्ण योगदान है।

▶ निबन्धों की अपनी एक रचनात्मक सार्थकता

कविता क्या है-आचार्य रामचंद्र शुक्ल

मनुष्य अपने भावों, विचारों और व्यापारों को लिए 'दूसरे के भावों', विचारों और व्यापारों के साथ कहीं मिलाता और कहीं लड़ाता हुआ अंत तक चला चलता है और इसी को जीना कहता है। जिस अनंत-रूपात्मक क्षेत्र में यह व्यवसाय चलता रहता है उसका नाम है जगत। जब तक कोई अपनी पृथक सत्ता की भावना को ऊपर किये इस क्षेत्र के नाना रूपों और

व्यापारों को अपने योगक्षेम, हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि से सम्बद्ध करके देखता रहता है तब तक उसका हृदय एक प्रकार से बद्ध रहता है। इन रूपों और व्यापारों के सामने जब कभी वह अपनी पृथक सत्ता की धारणा छुटकर अपने आप को बिल्कुल भूल कर विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह मुक्त-हृदय हो जाता है। जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं।

▶ हृदय की मुक्ति की साधना

कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठा कर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है, इस भूमि पर पहुंचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किये रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास के हमारे मनोविकार का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है। जिस प्रकार जगत अनेक रूपात्मक है उसी प्रकार हमारा हृदय भी अनेक-भावात्मक है। इस अनेक भावों का व्यायाम और परिष्कार तभी समझा जा सकता है जब कि इन सबका प्रकृत सामंजस्य जगत के भिन्न-भिन्न रूपों, व्यापारों या तथ्यों के साथ हो जाय। इन्हीं भावों के सूत्र से मनुष्य-जाति जगत के साथ तादात्म्य का अनुभव चिरकाल से करती चली आई है। जिन रूपों और व्यापारों से मनुष्य आदिम युगों से ही परिचित है, जिन रूपों और व्यापारों को सामने पा कर वह नरजीवन के आरम्भ से ही लुब्ध और क्षुब्ध होता आ रहा है, उनका हमारे भावों के साथ मूल या सीधा सम्बन्ध है। अतः काव्य के प्रयोजन के लिए हम उन्हें मूल रूप और मूल व्यापार कह सकते हैं। इस विशाल विश्व के प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष और गूढ़ से गूढ़ तथ्यों को भावों के विषय या आलम्बन बनाने के लिए इन्हीं मूल रूपों में और व्यापारों में परिणत करना पड़ता है। जब तक वे इन मूल मार्मिक रूपों में नहीं लाये जाते तब तक उन पर काव्य दृष्टि नहीं पड़ती।

▶ अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किये रहता है

वन, पर्वत, नदी, नाले, निर्झर, कछार, पटपर, चट्टान, वृक्ष, लता, झाड़, फूस, शाखा, पशु, पक्षी, आकाश, मेघ, नक्षत्र, समुद्र इत्यादि ऐसे ही चिर-सहचर रूप हैं। खेत, ढुर्री, हल, झोंपड़े, चौपाये इत्यादि भी कुछ कम पुराने नहीं हैं। इसी प्रकार पानी का बहना, सूखे पत्तों का झड़ना, बिजली का चमकना, घटा का घिरना, नदी का उमड़ना, मेघ का बरसना, कुहरे का छाना, डर से भागना, लोभ से लपकना, छीनना, झपटना, नदी या दलदल से बांह पकड़ कर निकालना, हाथ से खिलाना, आग में झोंकना, गला काटना ऐसे व्यापारों का भी मनुष्य जाति के भावों के साथ अत्यंत प्राचीन साहचर्य है। ऐसे आदि रूपों और व्यापारों में वंशानुगत वासना की दीर्घ-परंपरा के प्रभाव से, भावों के उद्‌बोधन की गहरी शक्ति संचित है; अतः इसके द्वारा जैसा रस-परिपाक संभव है वैसा कल-कारखाने, गोदाम, स्टेशन, एँजिन, हवाई जहाज़ ऐसी वस्तुओं तथा अनाथालय के लिए चेक काटना, सर्वस्वहरण के लिए जाली दस्तावेज़ बनाना, मोटर की चरखी घुमाना या एँजिन में कोयला झोंकना आदि व्यापारों द्वारा नहीं।

▶ भावों के उद्‌बोधन की गहरी शक्ति

सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ ज्यों-ज्यों मनुष्य के व्यापार बहुरूपी और जटिल होते गये त्यों-त्यों उसके मूल रूप कुछ आच्छन्न होते गये। भावों के आदिम और सीधे लक्ष्यों के अतिरिक्त और-और लक्ष्यों की स्थापना होती गई; वासनाजन्य मूल व्यापारों के सिवा बुद्धि द्वारा निश्चित

व्यापारों का विधान बढ़ता गया। इस प्रकार बहुत से ऐसे व्यापारों से मनुष्य घिरता गया जिनके साथ उसके भावों का सीधा लगाव नहीं। जैसे आदि में भय का लक्ष्य अपने शरीर अपनी सन्तति की ही रक्षा तक था, पर पीछे गाय, बैल, अन्न आदि की रक्षा आवश्यक हुई, यहाँ तक कि होते-होते धन, मान, अधिकार, प्रभुत्व इत्यादि अनेक बातों की रक्षा की चिंता ने घर कर लिया और रक्षा के उपाए भी वासना-जन्य प्रवृत्ति से भिन्न प्रकार के होने लगे। इसी प्रकार क्रोध, घृणा, लोभ अन्य भावों के विषय भी अपने मूल रूपों से भिन्न रूप धारण करने लगे। कुछ भावों के विषय तो अमूर्त तक होने लगे, जैसे कीर्ति की लालसा। ऐसे भावों को ही बौद्धदर्शन में 'अरूपराग' कहते हैं।

▶ वासनाजन्य मूल व्यापारों के सिवा बुद्धि द्वारा निश्चित व्यापारों का विधान

भावों के विषय और उनके द्वारा प्रेरित व्यापारों में जटिलता आने पर भी उनका सम्बन्ध मूल विषयों और मूल व्यापारों से भीतर-भीतर बना है और बराबर बना रहेगा। किसी का कुटिल भाई उसे संपत्ति से एकदम वंचित रखने के लिये वकीलों की सलाह से एक नया दस्तावेज़ तैयार करता है। इसकी ख़बर पाकर वह क्रोध से नाच उठता है। प्रत्यक्ष व्यावहारिक दृष्टि से तो उसके क्रोध का विषय है वह दस्तावेज़ या काग़ज़ का टुकड़ा। पर उस काग़ज़ के टुकड़े के भीतर वह देखता है कि उसे और उसकी सन्तति को अन्न-वस्त्र न मिलेगा। उसके क्रोध का प्रकृत्त विषय न तो वह काग़ज़ का टुकड़ा है और न उस पर लिखे हुए काले-काले अक्षर। ये तो सभ्यता के आवरण मात्र हैं। अतः उसके क्रोध में और कुत्ते के क्रोध में जिसके सामने का भोजन कोई दूसरा कुत्ता छीन रहा है, काव्य दृष्टि से कोई भेद नहीं - भेद केवल विषय के थोड़ा रूप बदलकर आने का। इसी रूप बदलने का नाम है सभ्यता। इस रूप बदलने से होता यह है कि क्रोध आदि को भी अपना रूप कुछ बदलना पड़ता है, वह भी कुछ सभ्यता के साथ अच्छे कपड़े-लत्ते पहनकर समाज में आता है जिससे मार-पीट, छीन-खसौट आदि भद्दे समझे जाने वाले व्यापारों का कुछ निवारण होता है।

▶ सभ्यता

पर यह प्रच्छन्न रूप वैसा मर्मस्पर्शी नहीं हो सकता। इसी से प्रच्छन्नता का उद्घाटन कवि-कर्म का मुख्य अंग है। ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती है, त्यों-त्यों कवियों के लिए यह काम बढ़ता जाएगा। मनुष्य के हृदय की वृत्तियों से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले रूपों और व्यापारों को प्रत्यक्ष करने के लिए उसे बहुत से पर्दों को हटाना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नए-नए आवरण चढ़ते जाएँगे त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी ओर कवि कर्म कठिन होता जाएगा। ऊपर जिस क्रुद्ध व्यक्ति का उदाहरण दिया गया है, वह यदि क्रोध से छुट्टी पाकर अपने भाई के मन में दया का संचार करना चाहेगा तो क्षोभ के साथ उससे कहेगा, 'भाई! तुम यह सब इसीलिए न कर रहे हो कि पक्की हवेली में बैठकर हलवा-पूरी खाओ और मैं बैठा सूखे चने चबाऊँ ; तुम्हारे लड़के दोपहर को भी दोशाले ओढ़कर निकालें और मेरे बच्चे रात को भी ठण्ड में कांपते रहें।' यह हुआ प्राकृत रूप का प्रत्यक्षीकरण। इसमें सभ्यता के बहुत से आवरणों को हटाकर वे मूल गोचर रूप सामने रखे गए हैं जिनसे हमारे भावों का सीधा लगाव है और जो इस कारण भावों को उत्तेजित करने में अधिक समर्थ हैं। कोई बात जब इस रूप में आएगी तभी उसे काव्य के उपयुक्त रूप प्राप्त होगा। 'तुमने हमें नुकसान पहुंचाने के लिए जाली दस्तावेज़ बनाया। इस वाक्य में रसात्मकता नहीं। इसी बात को ध्यान में रखकर ध्वनिकार ने कहा है—'नहिंकवेरितिवृत्तमात्रनिर्वाहेणात्मपदलाभः'।

▶ सभ्यता के विकास के साथ भावनाओं की प्रकटता

देश की वर्तमान दशा के वर्णन में यदि हम केवल इस प्रकार के वाक्य कहते जाएँ कि "हम

मूर्ख, बलहीन, और आलसी हो गए हैं, हमारा धन विदेश चला जाता है, रुपये का डेढ़ पाव घी विकता है; स्त्री शिक्षा का अभाव है" तो यह छंदोबद्ध होकर भी काव्य पद के अधिकारी होंगे। सारांश यह कि काव्य के लिए अनेक स्थलों पर हमें भावों के विषयों के मूल और आदिम रूपों तक जाना होगा जो मूर्त और गोचर होंगे। जबतक भावों से सीधा और पुराना लगाव रखनेवाले मूर्त और गोचर रूप न मिलेंगे तब तक काव्य का वास्तविक ढांचा खड़ा न हो सकेगा। भावों के अमूर्त विषयों की तह में भी मूर्त और गोचर रूप छिपे मिलेंगे, जैसे, यशोलिप्सा में कुछ दूर भीतर चलकर उस आनन्द के उपभोग की प्रवृत्ति छिपी हुई पाएगी जो अपनी तारीफ़ कान में पड़ने से हुआ करती है।

▶ काव्य की वास्तविकता को समझने के लिए भावों के मूल और मूर्त रूपों की खोज

'कविता क्या है' आचार्य रामचंद्र शुक्ल का सबसे महत्वपूर्ण निबंध है। इस निबंध के माध्यम से शुक्ल जी ने अपनी काव्यशास्त्रीय मान्यताएँ प्रस्तुत की है, जिसमें भाषा संदर्भ महत्वपूर्ण है। कविता की भाषा के संदर्भ में शुक्ल जी बिम्ब एवं नाद सौंदर्य पर बल देते हैं। शुक्ल जी अलंकारों एवं कोरे उक्ति वैचित्र्य की अधिकता को कविता के लिये अनावश्यक मानते हैं। वे मूलतः सौंदर्य को आंतरिक वस्तु मानते हैं और कहते हैं कि "सौंदर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है मन के भीतर की वस्तु है।" साथ ही निबंधों को सरस बनाने के लिये कई स्थानों पर विनोद-भाव का समावेश भी किया है। उदाहरण स्वरूप- "बंदर को शायद बंदरिया के मुँह में ही सौंदर्य दिखाई देता होगा, पर मनुष्य पशु-पक्षी, फूल-पत्ते और रेत-पत्थर में भी सौंदर्य पाकर मुग्ध होता है।"

▶ अलंकारों एवं कोरे उक्ति वैचित्र्य की अधिकता को कविता के लिये अनावश्यक है

शुक्ल जी ने 'कविता की भाषा' की विशेषताओं में सर्वप्रथम लाक्षणिकता को महत्व दिया है। उनका मानना है कि कविता हमारे समक्ष सूक्ष्म पदार्थों और व्यापारों को भी गोचर रूप से रखती है, स्थूल रूप में प्रत्यक्ष करती है। अन्य विशेषता उन्होंने नाद- सौस्ठव में देखी है। और कहा कि "(कविता) नादसौष्ठव के लिये संगीत कुछ-कुछ सहारा लेती है।" साथ ही इस बात पर भी ध्यान देते हैं कि भाव को अधिक तीव्रता और पुष्टता प्रदान करने के लिये, केवल चमत्कार उत्पन्न करने के लिये नहीं, वर्णों का सूक्ष्म भेद अपनाया जाना चाहिये।

▶ लाक्षणिकता को महत्व

कविता में व्यंग्य को वे महत्वपूर्ण मानते हैं और वे व्यंग्य करने में माहिर भी हैं। उनकी मान्यता है कि व्यंग्य विषय व्यंजकता को बढ़ा देता है वहीं दूसरी ओर गंभीर से गंभीर विषय को सरस भी बना देता है। उदाहरण के लिये- "खेद के साथ कहना पड़ता है कि बहुत दिनों से" बहुत से लोग कविता को विलास की सामग्री समझते चले आ रहे हैं।..... एक प्रकार के कविराज तो रईसों के मुँह में मकरध्वज रस झोंकते थे, दूसरे प्रकार के कविराज कान में कमरध्वज रस की पिचकारी देते थे, पीछे से तो ग्रीष्मोपचार आदि के नुस्खे भी कवि लोग तैयार करने लगे।

▶ व्यंग्य विषय व्यंजकता को बढ़ा देता है

नाखून क्यों बादते हैं- हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

'नाखून क्यों बढ़ते हैं' यह एक ललित निबंध है। जिसका लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी जी है। इस पाठ के माध्यम से लेखक ने मानव जीवन के विकास का वर्णन किया है। लेखक की छोटी लड़की एक दिन लेखक से प्रश्न करती है। नाखून क्यों बढ़ते हैं? लेखक उस समय कुछ भी उत्तर नहीं दे पाए। नाखून चाहे जितना काटो वे बढ़ते जाते हैं। लेखक के विचार से हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं। बच्चे कुछ दिन तक उसे नहीं कटते तो माता-पिता से उसे डाँट भी सुनना पड़ता है। लेखक कहते हैं कि नाखून क्यों बढ़ते हैं? कुछ लाख वर्ष पहले

▶ मानव जीवन के विकास का वर्णन

मनुष्य जंगली था। तब उसे आत्मरक्षा के लिए नाखूनों की आवश्यकता पड़ती थी। क्योंकि वह उसके अस्त्र थे। दांत भी थे, परंतु नाखून के बाद ही उसका स्थान था। प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ना पड़ता था। फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालियाँ हथियार के रूप में उपयोग होने लगी। उसने हड्डियों के भी हथियार बनाए। इंद्र द्वारा दधीचि मुनि की हड्डियों द्वारा व्रज बनाए जाना इसका उदाहरण है। कुछ समय बाद धातु के हथियार बनाए जाने लगे और अब मनुष्य को नाखूनों की जरूरत नहीं रह गई थी। परंतु वह अब भी बढ़ रहे हैं। मानो प्रकृति मनुष्य को यह याद दिलाना चाहती है कि तुम मूलतः वही जीव हो जो लाखो वर्ष पहले नाखून और दाँतो के सहारे जिंदा रहता था।

▶ मनुष्य की पशुता के प्रतीक

आज मनुष्य अपने बच्चों को नाखून बढ़ाने पर डाँटता हैं परंतु लाखों वर्ष पूर्व काटने पर डाटते थे। नाखून मनुष्य की पशुता के प्रतीक है। इसलिए मनुष्य इसे नष्ट करना चाहता है। लेकिन प्रकृति हमारे नाखून को जिलाए जा रही हैं। पहले का भारतवासी नाखूनों को जम के सँवारना त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुल आदि विभिन्न आकृतियों के नाखून रखते थे। नाखून बढ़ना और अस्त्रों को बढ़ना मूलतः एक ही प्रवृत्ति, पाशविक वृत्ति के प्रतीक है। मनुष्य पशुता का परित्याग कर चुका है। अतः अस्त्र बढाने की प्रवृत्ति भी उसे छोड़ना चाहिए। अंत में लेखक कहता है कि प्राणी शास्त्रियों को मानना है कि एक दिन ऐसा भी आएगा जब ये नाखून अपने आप उसी प्रकार झड़ जाएँगे जैसे मनुष्य की पूँछ झड़ गई हैं। तब शायद मनुष्य के भीतर की पशुता भी लुप्त हो जाएगी।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी निबन्ध ने अपनी समृद्ध परम्परा में अनेक महत्वपूर्ण लेखकों की रचनाएँ प्रस्तुत कीं। आज निबन्ध विधा इतनी व्यापक और विस्तृत हो गई है कि इसके अन्तर्गत इतिहास, समाजशास्त्र, धर्म, समाज, सम्प्रदाय, रंगमंच, सिनेमा, चित्रकला विषय भी समाहित हो गए हैं। इस दिशा में निबन्ध ने काफी विकास किया है। विचारात्मक, भावात्मक, ललित तथा व्यंग्यात्मक निबन्ध इसमें प्रमुख हैं।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी निबंध का विकास एवं प्रमुख निबंधकार के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की निबंध शैली व्यक्त कीजिए।
3. हिन्दी निबंधों के प्रकार लिखिए।
4. विचारात्मक, भावात्मक निबंधों के बारे में लिखिए।
5. वर्णनात्मक, विवरणात्मक निबंधों को व्यक्त कीजिए।
6. आत्मपरक निबंध से क्या तात्पर्य है?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी निबंधकार - जयंत नलिन
2. निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी - सं. गणपतिचन्द्र गुप्त
3. हिन्दी निबंध के विकास - डॉ. ओमकांत शर्मा
4. हिन्दी में निबंध और निबंधकार - डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त
5. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार - द्वारिका प्रसाद सक्सेना

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - डॉ. इन्द्रनाथ मदान।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
6. हिन्दी गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
7. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
8. साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ - डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 4

हिन्दी आलोचना का उद्‌भव और विकास, समकालीन हिन्दी आलोचना एवं उसके विविध प्रकार, प्रमुख आलोचक

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- आलोचना को समझता है
- हिन्दी आलोचना का उद्‌भव और विकास से अवगत होता है
- समकालीन हिन्दी आलोचना से परिचित होता है
- समकालीन हिन्दी आलोचना के विविध प्रकार को समझता है
- प्रमुख आलोचकों का परिचय प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी की विभिन्न विधाओं की तरह आलोचना का विकास भी प्रमुख रूप से आधुनिक काल की देन है। किसी भी साहित्य के आलोचना के विकास की दो प्रमुख शर्तें हैं- पहली कि आलोचना रचनात्मक साहित्य से जुड़ी हो। हिन्दी आलोचना अपने प्रस्थान बिंदु से ही इन दोनों कसौटियों पर खरी उतरती है। 'आलोचना' का शाब्दिक अर्थ है- 'सम्यक् निरीक्षण' अर्थात् मूल्यांकन करना। आलोचना रचनात्मक साहित्य का एक प्रमुख अंग है। 'आलोचना' शब्द 'लुच्' धातु से बना है। 'लुच' का अर्थ है 'देखना'। देखना से अभिप्राय है उसकी व्याख्या करना एवं सम्यक मूल्यांकन करना। अर्थात् किसी वस्तु या कृति का सम्यक् मूल्यांकन आलोचना कहलाती है। इस मूल्यांकन प्रक्रिया में रसास्वाद, विवेचन, परीक्षण, विश्लेषण आदि का योगदान होता है। आलोचना, रचना और पाठक या सहृदय के बीच सेतु का कार्य करती है। यह रचना के मूल्य और सौंदर्य को उद्‌घाटित करती है, पाठक की समझ का विस्तार करती है और कृति को जाँचने-परखने के लिए उसे आलोचनात्मक दृष्टि देती है। रचना के गुण-दोष विवेचन से लेकर उसमें अंतर्निहित सौंदर्य और मूल्य के उद्‌घाटन तक की यात्रा करने वाली आलोचना की भी अनेक पद्धतियाँ हैं जैसे निर्णयात्मक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, ऐतिहासिक आलोचना, सैद्धांतिक आलोचना, व्यावहारिक आलोचना आदि।

Keywords / मुख्य बिन्दु

प्रभावात्मक आलोचना, व्याख्यात्मक आलोचना, निर्णयात्मक आलोचना, शास्त्रीय समीक्षा

Discussion / चर्चा

हिन्दी की विभिन्न विधाओं की तरह आलोचना का विकास भी आधुनिक काल की ही देन है। आलोचना का कर्तव्य साहित्यिक कृति की विश्लेषण परक व्याख्या करना है। साहित्यकार जीवन और अनुभव के जिन तत्वों के संश्लेषण से साहित्य की रचना करता है, आलोचना उन्हीं तत्वों की विश्लेषण करता है। साहित्य में जहाँ राग तत्व की प्रधानता होती है, वहीं आलोचना में बुद्धि तत्व की प्रधानता होती है। आलोचना ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक

परिस्थितियों का आकलन करती है और साहित्य पर उनके पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करती है। व्यक्तिगत रुचि के आधार पर किसी कृति की निंदा या प्रशंसा करना आलोचना नहीं कहलाता है। किसी भी रचना, कृति को व्याख्या या विश्लेषण करने के लिए आलोचना के पद्धति और प्रणाली का महत्व होता है। आलोचना करते समय आलोचक अपने व्यक्तिगत राग-द्वेष, रुचि-अरुचि से तभी बच सकता है। जब आलोचक आलोचना पद्धति का अनुसरण करेगा तभी वह वस्तुनिष्ठ होकर साहित्य के प्रति न्याय कर सकता है। इस दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल को सर्वश्रेष्ठ आलोचक माना जाता है।

▶ आलोचना व्यक्तिगत रुचि के आधार पर नहीं

हिन्दी आलोचना का विकास

हिन्दी की आधुनिक आलोचना का बीज रूप भारतेन्दुयुगीन पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षाओं के रूप में सुरक्षित है। इनमें सर्वप्रथम बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'संयोगिता स्वयंवर' (श्री निवासदास) तथा 'बंग विजेता' (गदाधर सिंह) के अनुवादों की विस्तृत समीक्षा 'आनन्द कादम्बिनी' पत्र में की थी। आलोचना का यह प्रथम रूप रचना के दोष-दर्शन तक सीमित था। बालकृष्ण भट्ट की 'नीलदेवी', 'परीक्षा गुरु' और 'एकान्तवासी योगी' की आलोचनाएँ इसी कोटि की हैं। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में, 'भारतेन्दु युग में हिन्दी आलोचना का सूत्रपात तो हो गया था, किन्तु समीक्षकों में न तो सूक्ष्य काव्य सौन्दर्य विधायक तत्वों को पहचानने की क्षमता थी और न रचना में निहित जीवन- मूल्यों को सौन्दर्य से जोड़कर व्याख्यायित करने की शक्ति।'

▶ आलोचना का बीज रूप

द्विवेदी युग में आलोचना की महत्वपूर्ण पद्धतियाँ विकसित हुईं-शास्त्रीय आलोचना, तुलनात्मक मूल्यांकन, अनुसंधानपरक आलोचना, परिचयात्मक तथा व्याख्यात्मक आलोचना। शास्त्रीय आलोचना में जगन्नाथ प्रसाद भानु की 'काव्य प्रभाकर' तथा लाला भगवान दीन की 'अलंकार मंजूषा' कृतियाँ काव्यांग विवेचन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। तुलनात्मक आलोचना का प्रारम्भ पद्मसिंह शर्मा ने 1907 में बिहारी और सादी की तुलना द्वारा किया। मिश्रबन्धु का 'नवरत्न' इसी पद्धति का आलोचना ग्रंथ है। अनुसंधानपरक आलोचना का विकास 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' से हुआ। मिश्रबन्धु, श्यामसुन्दरदास, जगन्नाथदास रत्नाकर, सुधाकर द्विवेदी इस पद्धति के उल्लेखनीय आलोचक हैं।

▶ आलोचना की महत्वपूर्ण पद्धतियाँ

परिचयात्मक आलोचना का सम्बन्ध मुख्यतः 'सरस्वती' में महावीर प्रसाद द्विवेदी के आलोचनात्मक लेखों से है। व्याख्यात्मक आलोचना का सूत्रपात 'प्रेमघन' भारतेन्दु युग में कर चुके थे। बालमुकुन्द गुप्त ने इसे आगे बढ़ाया। इस आलोचना शैली को प्रौढ़ता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रदान की। द्विवेदी युग में पाश्चात्य समीक्षा कृतियों का हिन्दी में अनुवाद भी किया गया। जगन्नाथ दास रत्नाकर ने- 'समालोचनादर्श', नाम से पोप के 'एस्से ऑन क्रिटिसिज्म'- का पद्यात्मक अनुवाद किया तथा रामचन्द्र शुक्ल ने 'कल्पना- का आनन्द' नाम से एडिसन के 'एस्से ऑन इमेजिनेशन' का अनुवाद किया। हिन्दी आलोचना के आरम्भिक विकास में 'सरस्वती', 'समालोचनादर्श' तथा 'समालोचक' पत्रिकाओं का भी विशेष योगदान रहा है।

▶ आलोचना शैली को प्रौढ़ता

छायावाद युग में आलोचना में पाश्चात्य आलोचना तत्वों का समावेश होने लगा। सैद्धान्तिक आलोचना का विकास इसी युग में हुआ जिसका प्रवर्तन रामचन्द्र शुक्ल के 'काव्य में रहस्यवाद' ग्रन्थ से हुआ। 'साहित्यालोचन' में श्यामसुन्दर दास ने भारतीय और पाश्चात्य

काव्यशास्त्र के तत्वों को समन्वित करने का प्रयास किया। डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' के 'आलोचनादर्श' तथा डॉ. रामकुमार वर्मा के 'साहित्य समालोचना' में व्याख्यात्मक आलोचना शैली का विस्तार हुआ। रामचन्द्र शुक्ल की सैद्धान्तिक आलोचना का अनुसरण करने वालों में कृष्णशंकर शुक्ल तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रमुख हैं। छायावाद की समर्थ आलोचना नन्द-दुलारे वाजपेई, शान्तिप्रिय द्विवेदी और डॉ. नगेन्द्र द्वारा की गई। वस्तुतः इस युग में आलोचना को प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्रमुखतः रामचन्द्र शुक्ल को जाता है।

▶ सैद्धान्तिक आलोचना का विकास

शुक्लोत्तर आलोचना में हजारी प्रसाद द्विवेदी सर्वोपरि हैं। उन्होंने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' द्वारा ऐतिहासिक आलोचना पद्धति की प्रतिष्ठा की। नन्ददुलारे वाजपेई और डॉ. नगेन्द्र ने शुक्लजी की आलोचना की सीमाओं को पहचाना और नया मार्ग तलाशा। डॉ. नगेन्द्र 'रस सिद्धान्त' ग्रन्थ से रसवादी आलोचक बने। मार्क्सवादी आलोचना में शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त और रामविलास शर्मा प्रमुख हैं। मनोविश्लेषणवादी आलोचना के क्षेत्र में अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, देवराज उपाध्याय उल्लेखनीय हैं। आलोचना को नई दिशा की ओर मोड़ने में नामवर सिंह, रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. मैनेजर पाण्डे, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, रमेश कुन्तल मेघ, रघुवंश, लक्ष्मीकान्त वर्मा, नेमिचन्द्र जैन, रामचन्द्र तिवारी आदि उल्लेखनीय हैं।

▶ ऐतिहासिक आलोचना पद्धति

समकालीन हिन्दी आलोचना एवं उसके विविध प्रकार

सातवें दशक के बाद की आलोचना में काफी वैविध्य है। लेकिन आलोचकों के अपने आग्रह, विचार और विविधता के बावजूद यह कोशिश दिखाई देती है कि अंतर्वस्तु और रचना शिल्प की दृष्टि से एक समावेशी और समेकित आलोचना दृष्टि का विकास किया जा सके। इस दौर के आलोचकों में मलयज, बच्चन सिंह, निर्मला जैन, विश्वनाथ त्रिपाठी, परमानन्द श्रीवास्तव, नन्दकिशोर आचार्य, प्रभाकर श्रोत्रिय, अशोक वाजपेयी और मैनेजर पाण्डेय आदि प्रमुख हैं। इनमें से अधिकांश छायावाद को अपनी आलोचना का प्रस्थान बिंदु मानकर समकालीन कविता की 'कुंजी' उसी कृति के भीतर तलाश पर जोर देते हैं। वे आलोचना में 'निर्मम तटस्थता' को अनिवार्य शर्त मानते हैं और स्वयं निर्ममता से अनुपालन भी करते हैं। निर्मला जैन आलोचना के लिए अनुसंधान, पांडित्य, सिद्धांत-निरूपण और इतिहास आदि को आलोचना के लिए उपयोगी मानते हुए ठेठ आलोचना को इनसे अलगाने पर जोर देती हैं। वे वैचारिक आग्रहों से मुक्त रहते हुए छायावाद को 'स्वछंदता का स्वाभाविक पथ' घोषित करती हैं। उन्होंने 'कुरु कुरु स्वाहा', 'जिंदगीनामा' और 'जहाज का पंछी' उपन्यासों के मूल्यांकन में उपन्यास की रचना प्रक्रिया को समझने पर जोर देती हैं।

▶ समावेशी और समेकित आलोचना दृष्टि का विकास

विश्वनाथ त्रिपाठी एक ओर 'लोकवादी तुलसीदास' और 'मीरा का काव्य' में प्रगतिवादी आलोचना की एकांगिकता से बचते हुए भक्तिकाव्य की लोकवादी-जनवादी मूल्य दृष्टि का अन्वेषण करते हैं, तो दूसरी ओर देश के इस दौर में परसाई की व्यंग्य दृष्टि की सार्थकता की खोज करते हुए उनके विचार-चित्रों की समानता मुक्तिबोध के काव्य-बिम्बों से स्थापित करते हैं। परमानन्द श्रीवास्तव मुख्यतः नई कविता के आलोचक हैं और वे कविता में सामाजिक-राजनीतिक संदर्भो और संरचना के स्तर पर आए बदलाव को सजगता से परखते हैं। रमेश चन्द्र शाह सर्जनात्मक समीक्षा पर जोर देते हैं और रचनाकार की सृजन प्रक्रिया का आत्मीय विश्लेषण आवश्यक मानते हैं। लेकिन उनकी आलोचना भाषा की दुरूहता उनकी

आलोचना दृष्टि को बाधित करती है। मैनेजर पाण्डेय का आलोचनात्मक स्वर प्रखर है। उन्होंने यद्यपि आलोचना की कोई सैद्धांतिकी या पद्धति तो निर्मित नहीं की लेकिन उनके समीक्षात्मक लेखों और टिप्पणियों में एक ओर 'कला की स्वायत्तता' और 'आलोचना के जनतंत्र' जैसे मूल्य निरपेक्ष कलावादी मान्यताओं का विरोध करते हैं तो दूसरी ओर वे आधुनिकतावादी और उत्तर संरचनावादी आलोचना दृष्टि और पद्धति का भी विरोध करते हैं। स्वाधीनता के बाद दलित चेतना का विकास भारतीय समाज की एक बड़ी परिघटना है। हिन्दी साहित्य और आलोचना में मोहनदास नैमिषराय, तुलसीराम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ. धर्मवीर, कँवल भारती और श्योराज सिंह 'बेचैन' आदि ने दलित चिंतन की सैद्धांतिकी और सौन्दर्यशास्त्रीय विकास की दिशा में पर्याप्त कार्य किया है।

▶ लोकवादी-जनवादी मूल्य दृष्टि का अन्वेषण

आलोचना के प्रकार

आलोचना दो प्रकार के होते हैं- सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक आलोचना

सैद्धांतिक आलोचना

इसमें साहित्य संबंधी सामान्य सिद्धांतों पर विचार किया जाता है। ये सिद्धांत शास्त्रीय भी हो सकते हैं और ऐतिहासिक भी। शास्त्रीय सिद्धांतों का स्वरूप स्थिर और अपरिवर्तनशील होता है। ऐतिहासिक सिद्धांतों का स्वरूप परिवर्तनशील और विकासात्मक होता है। सैद्धांतिक आलोचना समीक्षा का, उसकी प्रक्रिया-पद्धति के आधार पर किया गया, एक महत्वपूर्ण प्रकार या भेद है। इसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इसमें समस्त काव्यांग, काव्य-तत्व, काव्य हेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेद, काव्य-लक्षण, काव्य-स्वरूप, काव्य-प्रक्रिया, काव्य–त्रिकोण (कवि, समीक्षक, पाठक), काव्य-पद्धतियाँ, काव्य-शिल्प आदि का अध्ययन समाविष्ट रहता है।

▶ सैद्धांतिक आलोचना समीक्षा का, उसकी प्रक्रिया-पद्धति के आधार पर किया गया, एक महत्वपूर्ण भेद है

साहित्यादर्श, जीवन मूल्य एवं मूलभूत सिद्धांतों के अभाव में रचनात्मक साहित्य का असंरक्षण भी सैद्धांतिक आलोचना की उपादेयता को सिद्ध करता है। आचार्य भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' सैद्धांतिक आलोचना का प्राचीनतम ग्रन्थ है। हिन्दी में रीतिकाल के लक्षणग्रन्थ, भारतेंदु हरिश्चन्द्र का 'नाटक' डॉ. श्यामसुन्दर दास कृत 'साहित्यालोचन', रामदरश मिश्र कृत 'काव्यालोचन' आदि सैद्धांतिक समीक्षा के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। साहित्य के सिद्धांतों और मूल्यांकन के निष्कर्ष अथवा मानदंडों को निश्चित करने वाली इस पद्धति को शास्त्रीय समीक्षा भी कहते हैं। 'साहित्य विधा' अथवा 'साहित्यशास्त्र' के रूप में भी इसका प्रचलन है।

▶ सैद्धांतिक समीक्षा के श्रेष्ठतम उदाहरण

जिस प्रकार भाषा-विकास के पश्चात व्याकरण का उदय होता है, उसी प्रकार उत्कृष्ट साहित्य सर्जना के बाद उसका विश्लेषण, व्याख्या एवं सिद्धांत निरूपण आदि जैसे स्वतः स्फूर्त हो जाते हैं- यही सैद्धांतिक आलोचना है। सैद्धांतिक आलोचना के अंतर्गत हम कुछ प्रमुख कवियों एवं उनकी कृतियों को ले सकते हैं। जिनमें उन्होंने सैद्धांतिक समीक्षा पद्धति को अपनी समीक्षा का आधार बनाया है। जो इस प्रकार हैं- लाला भगवानदीन कृत 'अलंकार मंजूषा', जगन्नाथप्रसाद 'भानु' कृत 'छन्द प्रभाकर', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कृत 'रस-कलश', डॉ. श्यामसुन्दर दास कृत 'रूपक रहस्य', डॉ. रसाल कृत 'हिन्दी काव्य-शास्त्र का विकास', डॉ. नगेन्द्र कृत 'रीतिकाव्य की भूमिका', डॉ. भागीरथ मिश्र कृत 'हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास', डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित कृत 'रस-स्वरूप सिद्धांत और विश्लेषण', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'काव्य में रहस्यवाद', 'चिन्तामणि', 'रस मीमांसा', डॉ. गुलाबराय कृत 'सिद्धांत और अध्ययन', 'काव्य के रूप' आदि कवियों एवं समीक्षकों के समीक्षात्मक लेखों में

▶ विश्लेषण, व्याख्या एवं सिद्धांतों के निरूपण

सैद्धांतिक आलोचना की एक विशिष्ट परम्परा देखने को मिलती है।

व्यावहारिक आलोचना

आलोचना की इस प्रणाली के अन्तर्गत सैद्धांतिक आलोचना द्वारा निश्चित किये गये सिद्धांतों की कसौटी पर कृतिविशेष अथवा साहित्य की प्रवृत्ति विशेष का विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाता है। साहित्यिक आलोचना के आधारभूत तत्वों-प्रभाव ग्रहण, व्याख्या तथा निर्णय के आधार पर इस आलोचना के तीन भेद किये जा सकते हैं- प्रभावात्मक आलोचना, व्याख्यात्मक आलोचना और निर्णयात्मक आलोचना। इन आलोचना प्रणालियों की अपनी-अपनी प्रमुख आधारकृत विशेषताएँ होती हैं। जिनमें कहीं-कहीं एकरूपता भी दृष्टि गोचर होती है।

▶ आलोचना प्रणालियों की अपनी-अपनी प्रमुख आधारकृत विशेषताएँ

व्यावहारिक आलोचना का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। सिद्धांतों को कृतियों पर लागू करके अथवा स्वतंत्र कला-विवेक से जब कृतियों की आलोचना की जाती है तब व्यावहारिक आलोचना का रूप खड़ा होता है। इस आलोचना के अन्तर्गत रचना-प्रक्रिया व काव्य (स्रष्टा, समीक्षक व पाठक-वाचक वर्ग) की व्यावहारिक व्याख्या तो हो ही सकती है, साथ ही युग एवं समाज, रचनाकार के निजी जीवन-परिवेश और उसकी मनःस्थिति, समसामयिक युग की रचनाओं अथवा ऐतिहासिक अनुक्रम में रखकर पूर्वयुगीन रचनाओं से तुलना, प्रभाव-निरूपण, गुण-दोषों की विस्तृत व्याख्या, आगमन या निगमन पद्धति से विषय के सोदाहरण विश्लेषण-विवेचन से इस प्रकार की आलोचना का सजीव तथा परिपूर्ण व्यक्तित्व निर्मित होता है। इस आलोचना के अंतर्गत प्रभाववादी, निर्णयात्मक-व्याख्यात्मक, मार्क्सवादी या प्रगतिवादी, मनोविश्लेषणात्मक, तुलनात्मक, शैली वैज्ञानिक आदि आलोचनाएँ आती है।

▶ रचना-प्रक्रिया व काव्य की व्यावहारिक व्याख्या

प्रमुख आलोचक

हिन्दी के प्रमुख आलोचक हैं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेई, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. नामवर सिंह आदि।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी आलोचना को गम्भीर और तर्क विश्लेषण से युक्त कर समृद्ध करने का सर्वप्रथम श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को जाता है। शुक्लजी की आलोचना पद्धति वैज्ञानिक अध्ययन-चिन्तन से पुष्ट और तर्कपूर्ण है। वे रसवादी आलोचक हैं जिसके केन्द्र में लोकमंगल की गहरी आस्था है। शुक्लजी की आलोचना का प्रतिमान रसवाद है, किन्तु यह परम्परागत रसवाद से भिन्न वैज्ञानिक आधार का आधुनिक सिद्धान्त है। 'काव्य में रहस्यवाद' निबन्ध में उन्होंने रस सम्बन्धी अनेक नई स्थापनाएँ की हैं। रस-सिद्धान्त के विरोध का भी उन्होंने 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' निबन्ध में तर्कपूर्ण खण्डन किया है।

▶ वैज्ञानिक अध्ययन-चिन्तन से पुष्ट और तर्कपूर्ण

तुलसी, सूर तथा जायसी पर रामचन्द्र शुक्ल की समालोचनाएँ तथा 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उनकी आलोचना दृष्टि का पता चलता है। 'चिन्तामणि' के निबन्धों में शुक्लजी का गम्भीर अध्ययन और विश्लेषण क्षमता का बोध होता है। कविता में सौन्दर्य, रस, छन्द, अलंकार सभी पर शुक्लजी ने उनके स्वरूप और प्रभाव के साथ विश्लेषण किया है। हिन्दी गद्य साहित्य पर भी शुक्लजी की दृष्टि गयी है जिसमें उन्होंने प्रेमचन्द्र को उपन्यास सम्राट कहा है। ऐसा नहीं है कि शुक्लजी की आलोचना पद्धति पूर्णतः दोषमुक्त है। उनपर प्रायः पूर्वाग्रह

और अनुदारता का आरोप लगाया जाता है। आलोचक रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना, नीति और लोकमंगल पर केन्द्रित रही है। इसी कारण वे तुलसी को छोड़कर कबीर, सूर, जायसी और रीतिकवियों के साथ न्याय नहीं कर सके। छायावाद में लोकपक्ष की दुर्बलता भी शुक्लजी के छायावाद की कटु आलोचना का कारण बनी। अपनी सीमाओं के बावजूद रामचन्द्र शुक्ल ने एक निजी आलोचना-पद्धति का विकास किया और उच्चकोटि के समालोचक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की।

▶ निजी आलोचना-पद्धति का विकास

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेई

प्रसाद, पंत और निराला पर अलग-अलग समीक्षात्मक निबन्ध लिखकर नन्ददुलारे वाजपेई छायावाद के समर्थक आलोचक के रूप में सामने आये। उन्होंने मुख्यतः छायावाद के प्रति रामचन्द्र शुक्ल के पूर्वाग्रहों और उनकी सीमाओं को उद्घाटित किया। साथ ही अत्यंत तर्कपूर्ण और प्रामाणिक ढंग से छायावाद के सामाजिक सन्दर्भ की व्याख्या की। 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य-नए प्रश्न', 'कवि निराला' आदि उनकी प्रमुख समीक्षात्मक कृतियाँ हैं।

▶ प्रमुख समीक्षात्मक कृतियाँ

नन्ददुलारे वाजपेई ने रस की अलौकिकता को पाखण्ड कहते हुए रसवाद पर अकर्मण्यता का आरोप लगाया। आधुनिक समीक्षा के लिए वे रसवाद को बहुत उपयोगी नहीं मानते। उनकी दृष्टि में आधुनिक समीक्षक कवि का मानसिक और कलागत विकास देखने का प्रयास करता है और उसके व्यक्तित्व और परिवेश से परिचित होकर संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करता है। यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि वाजपेई ने रस का खण्डन न करके 'रसवाद' का खण्डन किया है। शुक्लजी ने रस को मनोवैज्ञानिक भूमि पर प्रतिष्ठित किया था, वाजपेईजी ने उसके विस्तार का आग्रह किया है।

▶ रसवाद पर अकर्मण्यता का आरोप

नन्ददुलारे वाजपेई को प्रायः छायावादी, स्वछंदतावादी, सौष्ठववादी, अध्यात्मवादी समीक्षक कहा गया है जो इस तथ्य का सूचक हैं कि उनकी आलोचना पर किसी वाद का अधिकार नहीं रहा है। काव्य-समीक्षा के प्रतिमान के रूप में मुख्यतः दो बातों को उन्होंने विशेष महत्व दिया है- भावात्मक निष्पत्ति और रूपात्मक सौन्दर्य। उनके अनुसार, 'वाद कोई भी हो, कविता की संवेदनाएँ कैसी हैं, किस कोटि की हैं- उसका बाह्य और अन्तरंग सौन्दर्य हमारी चेतना और सौन्दर्य दृष्टि को किस रूप में और किस कारण प्रभावित करता है मेरे लिए इतना ही ज्ञातव्य है।'

▶ भावात्मक निष्पत्ति और रूपात्मक सौन्दर्य

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

आचार्य द्विवेदी, शुक्ल संस्थान के आलोचक होने के बावजूद अपने मानवतावादी दृष्टिकोण और ऐतिहासिक पद्धति के कारण रामचन्द्र शुक्ल से अलग हैं। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में उन्होंने पहली बार आलोचना की ऐतिहासिक पद्धति की प्रतिष्ठा की। द्विवेदीजी का मानना है कि 'किसी ग्रन्थकार का स्थान निर्धारित करने के लिए क्रमागत सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जातीय सातत्य को देखना आवश्यक है जिसके लिए आलोचक को अपनी जातीय परम्परा या सांस्कृतिक विरासत का पर्याप्त बोध होना चाहिए। बोध का अर्थ समझदारी से है, कोरे पाण्डित्य से नहीं।'

▶ आलोचना की ऐतिहासिक पद्धति

कबीर के नए मूल्यांकन में हजारी प्रसाद द्विवेदी की आधुनिकतावादी दृष्टि का भी पर्याप्त योगदान रहा है। उन्होंने कबीर को सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक नैरन्तर्य

▶ आधुनिकतावादी दृष्टि का भी पर्याप्त योगदान

के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने का सफल प्रयास किया। कबीर की भाषागत विशिष्टताओं को भी द्विवेदीजी ने ही पहली बार समग्रता के साथ उजागर करते हुए कबीर को 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है।

▶ आदर्शवादी मानवतावाद

द्विवेदीजी का आधुनिक दृष्टिकोण और नवीन मानवतावाद रावीन्द्रिक (रवीन्द्रनाथ टैगोर) मानवतावाद से प्रभावित है। रूमानियत से सम्पृक्त होते हुए भी वह यथार्थ के निकट हैं, किन्तु इस आधार पर उन्हें यथार्थवादी भी नहीं कहा जा सकता। द्विवेदीजी का मानवतावाद आदर्शवादी मानवतावाद है जो यथार्थ दृष्टि से सम्पन्न है। इसलिए उन्हें न तो शुद्ध रोमान्टिक कहा जा सकता है न शुद्ध यथार्थवादी। 'हिन्दी साहित्य' में सूर-तुलसी की आलोचना और प्रेमचन्द का आकलन उन्होंने मानवतावादी दृष्टि से किया है।

डॉ. रामविलास शर्मा

▶ मार्क्सवादी आलोचना के शिखर पुरुष

रामविलास शर्मा मार्क्सवादी आलोचना के शिखर पुरुष हैं। 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' (1955) पुस्तक से रामविलास शर्मा की आलोचना का गम्भीर, संयमित रूप उजागर होता है। इसके पूर्व उनकी 'प्रेमचन्द', 'भारतेन्दु युग', 'प्रेमचन्द और उनका युग' तथा 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। किन्तु इनमें आलोचना दृष्टि का अपेक्षित संयम, सन्तुलन और विवेक का पैनापन नहीं है, जो 1955 के बाद की कृतियों में दिखाई पड़ता है।

▶ आलोचनात्मक पुस्तकें

सन् 1955 के बाद शर्माजी की आलोचनात्मक पुस्तकों में 'आस्था और सौन्दर्य', 'भाषा और समाज', 'निराला की साहित्य साधना' (तीन खण्डों में), 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और नवजागरण', 'नई कविता और अस्तित्ववाद', 'प्राचीन भारत भाषा परिवार', 'भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद' उल्लेखनीय हैं।

▶ भारतीय जनता के संघर्ष का साहित्य

कहा जाता है कि नई कविता के प्रति शर्माजी का दृष्टिकोण कुछ वैसा ही नकारात्मक है जैसा छायावाद के प्रति रामचन्द्र शुक्ल का था। छायावादी कविता को वे भारतीय जनता के संघर्ष का साहित्य कहते हैं, किन्तु उसके रहस्य-ख्झान का विरोध करते हैं। रामचन्द्र शुक्ल की तरह रामविलास शर्मा की भी अपनी रुचियाँ और पूर्वाग्रह हैं जिसके चलते वे केदारनाथ अग्रवाल की सिद्धान्तवादी सपाट कविताओं की भी सराहना करते हैं अथवा सूरदास के पदों का सम्बन्ध जुलाहों और किसानों की मुक्ति की आकांक्षा से जोड़ते हैं। अमृतलाल नागर को वे महान उपन्यासकार घोषित करते हैं।

▶ प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी तत्वों की पहचान

इसके बावजूद रामविलास शर्मा की हिन्दी आलोचना को महत्वपूर्ण देन यह है कि उन्होंने प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी तत्वों की पहचान करने की दृष्टि दी और हिन्दी साहित्य को नवजागरण और हिन्दी जाति की अस्मिता से जोड़ा। हिन्दी नवजागरण और उसकी परम्परा को समझने के लिए आज भी उनका महत्व है। आलोचना को भाषायी रीतिबद्धता (अर्थात् परम्परागत आलोचना की भाषा) से उन्होंने वैसे ही मुक्त कराया, जैसे निराला ने कविता को छंदों के बन्धन से मुक्त किया था।

डॉ. नगेन्द्र

डॉ. नगेन्द्र मूलतः रसवादी आलोचक हैं। 'रस सिद्धान्त' ग्रन्थ में उन्होंने रस की विशद विवेचना करके उसे पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। रसवाद पर उनका विशेष आग्रह

रहा है। सर्वप्रथम उन्हें छायावादी आलोचक के रूप में प्रतिष्ठा मिली। 'सुमित्रानन्दन पंत', 'साकेत एक अध्ययन' उनकी प्रारम्भिक आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। 'रीतिकाव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता' में नगेन्द्र की रसवादी आलोचना दृष्टि परिपक्व होती है। इसी दृष्टि को केन्द्र में रखकर उन्होंने 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' ग्रन्थ की रचना की।

▶ रसवादी आलोचक

नई कविता तथा आधुनिक उपन्यास कहानी में मूल्यों के विघटन, सांस्कृतिक संकट तथा आधुनिकता के प्रश्नों को लेकर 'नयी समीक्षा : नये सन्दर्भ' में विचार किया गया है। 'भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका' उनका प्रसिद्ध समीक्षात्मक ग्रन्थ है। नगेन्द्र ने व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक आलोचना- दोनों स्तरों पर हिन्दी आलोचना को समृद्ध किया है।

▶ समीक्षात्मक ग्रन्थः नयी समीक्षा नए सन्दर्भ

प्राचीन काव्यशास्त्र ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद करने-करवाने में भी डॉ. नगेन्द्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आचार्य विश्वेश्वर ने उनकी देखरेख में संस्कृत के प्रमुख ग्रंथों का अनुवाद किया। स्वयं नगेन्द्र ने अरस्तू, लोंजाइनस एवं होरेस के प्रसिद्ध ग्रंथों का अनुवाद किया है। यूरोप के प्रतिनिधि आलोचकों के मूल-सिद्धान्तों का एक संकलन भी नगेन्द्र के सम्पादन में प्रकाशित हुआ है।

▶ प्राचीन काव्यशास्त्र ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद

डॉ. बच्चनसिंह के शब्दों में, 'यदि नन्ददुलारे वाजपेई, हजारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ. नगेन्द्र की आलोचनाओं के वृत्त बनाए जाएँ तो वाजपेईजी की स्थिति मध्यवर्ती ठहरती है। उनकी वृत्ति-परिधि एक ओर द्विवेदीजी की वृत्ति-परिधि को स्पर्श करती है, तो दूसरी ओर नगेन्द्र की। द्विवेदीजी और नगेन्द्र की परिधियाँ एक-दूसरे से अछूती रह जाती हैं। द्विवेदीजी की मानवतावादी सिद्धान्तों की समीक्षा में साहित्येतर तत्वों की बहुलता है, वाजपेई भी साहित्यिक मूल्यों पर बल देते हुए भी यथास्थान साहित्येतर मूल्यों का प्रयोग करते हैं, किन्तु नगेन्द्रजी एकान्ततः साहित्यिक सिद्धान्त के पक्षपाती हैं। साहित्येत्तर मूल्यों से उनका सम्बन्ध प्रायः नहीं है।'

▶ साहित्यिक सिद्धान्त के पक्षपाती

डॉ. नामवर सिंह

नामवर सिंह मार्क्सवादी कम प्रगतिशील आलोचक अधिक हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी आलोचना में मार्क्सवादी सिद्धान्तों की पच्चीकारी नहीं की है। उन्हें रामचन्द्र शुक्ल और हजारीप्रसाद द्विवेदी की प्रगतिशील परम्परा में रखा जा सकता है। मार्क्सवादी आलोचक होने के बावजूद उनकी आलोचना दृष्टि भारतीय काव्यशास्त्र और पश्चिमी काव्य शास्त्र से निर्मित होती है। निराला, प्रसाद, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल और मुक्तिबोध के सान्निध्य में उनका रसात्मक बोध पुष्ट हुआ है। उन्होंने व्यावहारिक आलोचना को अधिक महत्व दिया है। नामवर सिंह के आलोचना सिद्धान्तों को 'कविता के नए प्रतिमान', 'छायावाद', 'इतिहास और आलोचना' जैसी कृतियों में देखा-समझा जा सकता है।

▶ व्यावहारिक आलोचना को महत्व

साधारण में असाधारण की परख नामवर सिंह के सूक्ष्म काव्य विवेक का परिचायक है, किन्तु कई बार उनके साहित्यिक निर्णय अत्यन्त विवादास्पद भी हुए हैं। जैसे- निर्मल वर्मा के 'परिन्दे' कहानी संग्रह के बारे में उनके निर्णय, 'कविता के नए प्रतिमान' में भी अनेक काव्य प्रतिमानों पर विवाद रहा है।

▶ साहित्यिक निर्णय अत्यन्त विवादास्पद

वस्तुतः यह विवादास्पदिता ही नामवर की ख्याति का मूल कारण है। प्रतिभाशाली और वाग्विदग्ध आलोचक होने के बावजूद लिखने की अपेक्षा उन्हें व्याख्यान देना अधिक प्रिय रहा

▶ प्रतिभाशाली और वाग्विदग्ध आलोचक

है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के शब्दों में, 'उनके आलोचकीय दबदबे का अधिक श्रेय उनकी वाग्मिता को देना कुछ अनुचित न होगा। उनके भाषणों में अध्ययन आत्म विश्वास, व्यंग्य और विनोद अपने विरोधियों तक को प्रभावित - करने वाला होता है। इनके बल पर वे गलत तर्क पर भी तालियाँ बजवा देते हैं।' नामवर सिंह के पास 'पुस्तक पकी आँखें' हैं। उनकी आलोचनात्मक भाषा को केदारनाथ सिंह ने सुन्दर गद्य का नमूना कहा है। उन्होंने हिन्दी के जातीय गद्य को पुनः प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

किसी भी साहित्य की आलोचना अपने समय और समाज की सापेक्षता और प्रसंगानुकूलता में संभव होती है। तभी आलोचना की सार्थकता और साथ ही साथ रचना की मूल्यवत्ता प्रमाणित होती है। इस प्रसंगानुकूलता और सापेक्षता की तलाश में आलोचना की सामाजिकता या सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रश्न उठता है। अतः आलोचना साहित्य का शास्त्र नहीं बल्कि साहित्य का जीवन है, जो बदलते हुए सामाजिक संदर्भों में बार-बार रचा जाता है। आलोचना परखे हुए को बार-बार परखती है और जीवन-संबंधों के विकल्प की तलाश में साहित्य और आलोचना की सह-यात्री बनी रहती है। आलोचना का संबंध एक साथ इतिहास और सामाजिक विमर्श दोनों से होता है। इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दी आलोचना आरंभ से ही सामाजिक सरोकारों में गहरे स्तर पर जुड़ी हुई है। युगीन हलचलों, वैचारिक द्वंदों सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक राष्ट्रीय चिंताओं के सापेक्ष आलोचना के स्वरूप में भी व्यापक बदलाव हुआ है। सबसे अहम यह है कि हिन्दी आलोचना रचनात्मक साहित्य के नवीन सृजन, नवीन विचारधाराओं और नवीन सामाजिक सरोकार से टकराते हुए विविध दृष्टियों, प्रतिमानों और प्रवृत्तियों से युक्त होती है। आलोचना के महत्व को मनुष्य के जातीय जीवन और उसकी संस्कृति से जोड़कर साहित्य का विश्लेषण करने की प्रक्रिया से ही किसी भी साहित्य की आलोचना अपने समय और समाज की सापेक्षता और प्रसंगानुकूलता में संभव होती है। इसी में आलोचना की सार्थकता और मूल्यवत्ता प्रमाणित होगी।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. आलोचना के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास पर चर्चा कीजिए।
3. समकालीन हिन्दी आलोचना का परिचय दीजिये।
4. समकालीन हिन्दी आलोचना के विविध प्रकार को समझाइए।
5. प्रमुख आलोचकों का परिचय दीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द - डॉ. बच्चन सिंह
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना - डॉ. रामविलास शर्मा।

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - डॉ. इन्द्रनाथ मदान।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

BLOCK-04

हिन्दी की अन्य गद्य विधाएँ

Block Content

Unit 1: रेखाचित्र सामान्य परिचय, प्रमुख रेखाचित्रकार, रेखाचित्र और संस्मरण में अंतर (मंगर - रामकृष्ण बेनीपुरी - विस्तृत अध्ययन) संस्मरण, संस्मरण की विशेषताएँ, (प्रेमचन्दजी - महादेवी वर्मा - विस्तृत अध्ययन)

Unit 2: आत्मकथा उद्‌भव और विकास, आत्मकथा साहित्य की विशेषताएँ, जीवनी उद्‌भव और विकास, आत्मकथा और जीवनी में अंतर (मेरा जीवन - आत्मकथा अंश, प्रेमचन्द - विस्तृत अध्ययन)

Unit 3: यात्रा विवरण सामान्य परिचय (चेरापुंजी से आया हूँ - प्रदीप पंत - विस्तृत अध्ययन)

Unit 4: रिपोर्ताज - सामान्य परिचय (सूखे सरोवर का भूगोल - मणि मधुकर - विस्तृत अध्ययन)

Unit 5: व्यंग्य साहित्य, प्रमुख व्यंग्यकार (निंदा रस - हरिशंकर परसाई - विस्तृत अध्ययन)

इकाई : 1

रेखाचित्र सामान्य परिचय, प्रमुख रेखाचित्रकार, रेखाचित्र और संस्मरण में अंतर (मंगर - रामकृष्ण बेनीपुरी - विस्तृत अध्ययन) संस्मरण, संस्मरण की विशेषताएँ, (प्रेमचन्दजी - महादेवी वर्मा - विस्तृत अध्ययन)

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी रेखाचित्र के बारे में समझता है
- प्रमुख रेखाचित्रकारों से परिचित होता है
- रेखाचित्र और संस्मरण के अंतर को समझता है
- संस्मरण और उसकी विशेषताओं से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी गद्य साहित्य की नवीनतम विधा रेखाचित्र है। 'स्केच' शब्द का उपयोग किसी दृश्य, विशेष रूप से किसी रेखाचित्र के बारे में बात करते समय किया जा सकता है। एक कलाकार एक घंटे में किसी मित्र का स्केच बना सकता है, और फिर घर जाकर चित्र पूरा करने में कई सप्ताह लगा सकता है। एक रेखाचित्र एक संक्षिप्त मौखिक या वर्णनात्मक विवरण का भी उल्लेख कर सकता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

स्केच, मेमोयर्स, संस्कृतगर्भित, कवित्वपूर्ण

Discussion / चर्चा

रेखाचित्र अंग्रेज़ी के 'स्केच' शब्द का अनुवाद है। जिस प्रकार चित्रकला में विभिन्न रंगों की रेखाओं से रेखाचित्र निर्मित किये जाते हैं, उसी प्रकार जब शब्दों के माध्यम से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारा जाता है, तब उस रचना को रेखाचित्र कहा जाता है। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दों में रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप विधान है, जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि अपना निजीपन डालकर प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है। रेखाचित्र अपने व्यर्थ-विषय का अध्येता, व्याख्याता और सूत्रधार है। रेखाचित्र में वैयक्तिक अनुभूति अनिवार्य रूप से रहती है, इसमें व्यक्ति अथवा वस्तु का 'क्लोजअप' प्रस्तुत किया जाता है कि उसकी प्रत्येक विशेषता उभर आती है। रेखाचित्र का विषय काल्पनिक न होकर वास्तविक होता है और उसकी आन्तरिक एवं बाह्य विशेषताएँ कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति पाती हैं।

- मर्मस्पर्शी और भावमय रूप विधान

4.1.1 रेखाचित्र सामान्य परिचय

रेखाचित्र से मिलती-जुलती विधा संस्मरण है, जिसके लिए अंग्रेजी शब्द है मेमोयर्स। महादेवी

वर्मा के अनुसार "संस्मरण लेखक की स्मृति से सम्बन्ध रखता है और स्मृति में वही अंकित रह जाता है जिसने उसके भाव या बोध को कभी गहराई में उद्वेलित किया हो।" संस्मरण और रेखाचित्र में भेदक रेखा खींच पाना यद्यपि कठिन है तथापि संस्मरण विवरणात्मक होते हैं और रेखाचित्र रेखात्मक, उनमें इतिवृत्त की प्रधानता नहीं होती है। रेखाचित्रों में सूक्ष्म तथ्य रहते हैं, घटनाओं का विवरण नहीं दिया जाता। यह भी उल्लेखनीय है कि रेखाचित्र में वस्तुपरक दृष्टिकोण की प्रधानता होती है, जबकि संस्मरण आत्मपरक रचना है। रेखाचित्र में लेखक का व्यक्तित्व नहीं उभरता, जबकि संस्मरण में लेखक का व्यक्तित्व भी प्रकारान्तर से आ जाता है।

▶ वस्तुपरक दृष्टिकोण की प्रधानता

हिन्दी में संस्मरण और रेखाचित्र प्रायः घुल-मिल गये हैं। अनेक लेखकों की रचनाएँ कुछ आलोचकों ने संस्मरण के अन्तर्गत मानी हैं तो कुछ अन्य उन्हें रेखाचित्र कहना उपयुक्त समझते हैं। वस्तुतः कोई साहित्यकार यह सोचकर नहीं लिखता कि वह संस्मरण लिख रहा है या रेखाचित्र। डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के अनुसार, 'प्रायः प्रत्येक संस्मरण लेखक रेखाचित्र लेखक भी है और प्रत्येक रेखाचित्र लेखक संस्मरण लेखक भी।' यही कारण है कि रेखाचित्र और संस्मरण में विभाजक रेखा नहीं खींची जग सकती। वस्तुतः न कोई संस्मरण बिना रेखाचित्र के पूरा होता है और न कोइ रेखाचित्र बिना संस्मरण के। आनुपातिक दृष्टि से वैयक्तिकता एवं तटस्थता को देखकर ही यह निर्णय किया जा सकता है कि कोई रचना संस्मरण है या रेखाचित्र।

▶ रेखाचित्र और संस्मरण में विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती

हिन्दी में रेखाचित्र साहित्य का उद्भव बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक से प्रारम्भ हुआ। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने पण्डित पद्मसिंह शर्मा को संस्मरण एवं रेखाचित्रों का जनक मानते हुए लिखा है। 'रेखाचित्र की दृष्टि से आपका 'पद्मपराग' संग्रह उल्लेखनीय है, जिसमें संस्मरणात्मक निबन्धों तथा रेखाचित्रों का संकलन है और कुछ विशेष निबन्ध हैं। संस्मरणात्मक निबन्धों तथा रेखाचित्रों के आप जनक कहे जा सकते हैं।' किन्तु उनका यह मत उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि पं. पद्मसिंह शर्मा से पूर्व ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं-सरस्वती, हंस, विशाल भारत, सुधा में रेखाचित्र और संस्मरण लिखे जा रहे थे। सन् 1907 में ही बालमुकुन्द गुप्त ने प्रतापनारायण मिश्र पर एक रोचक संस्मरण लिखा था। विशाल भारत में आचार्य रामदेव ने स्वामी श्रद्धानन्द पर सन् 1929 में और पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने श्रीधर पाठक पर सन् 1932 में संस्मरण लिखे।

▶ संस्मरणात्मक निबन्धों तथा रेखाचित्रों के जनक

स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में रेखाचित्र संग्रह प्रकाशित कराने का श्रेय पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी को है। इस विधा से सम्बन्धित इनकी कुछ प्रमुख कृतियाँ हैं- संस्मरण (1952 ई.), हमारे आराध्य (1952 ई.), रेखाचित्र (1953 ई.), सेतुबन्ध (1962 ई.)। 'संस्मरण' नामक संग्रह में कई प्रसिद्ध व्यक्तियों के रेखाचित्र संकलित हैं यथा-द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, दीनबन्धु एण्ड्रज, आजाद की माता जी, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि। 'रेखाचित्र' संग्रह में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, सी. वाई. चिन्तामणि, प्रेमचन्द, सम्पूर्णानन्द, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पं. श्रीकृष्णदत्त पालीवाल आदि के साथ-साथ सामान्य व्यक्तियों को भी रेखाचित्रों का विषय बनाया गया है, यथा अन्धी चमारिन। 'सेतुबन्ध' शीर्षक संग्रह में विश्वविख्यात व्यक्तियों के रेखाचित्रों के साथ-साथ कुछ ऐसे संस्मरणात्मक निबन्ध भी हैं जो स्थानों से सम्बन्धित हैं। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने चतुर्वेदी जी के रेखाचित्रों की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, 'चतुर्वेदी जी के रेखाचित्रों में जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता तथा देश-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। वहाँ दूसरी ओर उसमें सर्वत्र विश्व-प्रेम तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना व्याप्त है। मोटे तौर

पर पण्डित जी ने कालगति को देखा है और इसी परिप्रेक्ष्य में साहित्यकार, लेखक, पत्रकार, राजनीतिज्ञ आदि विभिन व्यक्तियों का अंकन अपनी कुशल लेखनी से किया है।' चतुर्वेदी जी के रेखाचित्रों में रोचकता और मनोरंजकता का पर्याप्त पुट है। व्यंग्य और विनोद के अनेक स्थल जुटाकर लेखक ने अनेक स्थानों पर सरसता की सृष्टि की है। रेखाचित्र के क्षेत्र में पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी सर्वाधिक सशक्त लेखक माने जा सकते हैं।

▶ रेखाचित्र के क्षेत्र के सर्वाधिक सशक्त लेखक

4.1.2 प्रमुख रेखाचित्रकार

हिन्दी रेखाचित्रकारों में पण्डित श्रीराम शर्मा का नाम आदर से लिया जाता है। उनकी विषय प्रतिपादन क्षमता अत्यन्त आकर्षक एवं रोचक है। रेखाचित्रों का उनका प्रथम संकलन 'जंगल के जीव' सन् 1949 में प्रकाशित हुआ था। इसमें जंगली जानवरों को रेखाचित्रों का विषय बनाया गया है। उनका दूसरा संग्रह 'वे कैसे जीते हैं' सन् 1957 में प्रकाशित हुआ, जिसमें कुल बीस रेखाचित्र संकलित हैं। इसी क्रम में एक अन्य महत्वपूर्ण संकलन 'बोलती प्रतिभा' सन् 1967 रेखाचित्र 'हंस' और 'सरस्वती' नामक पत्रिकाओं में में प्रकाशित हुआ। उनके कुछ स्वतन्त्र भी प्रकाशित हुए हैं। पण्डित श्रीराम शर्मा की तूलिका से रंग-बिरंगे शब्दचित्र उस समय से लिखे जाने लगे, जब इस विधा का कोई ज्ञान नहीं था। वे अपने ढंग के एक ही लेखक हैं। उनकी वर्णन शैली सजीव, भाव विश्लेषण मनोविज्ञान सम्मत और भाषा विषयानुकूल है।

▶ रेखाचित्रकार पण्डित श्रीराम शर्मा

महादेवी वर्मा हिन्दी रेखाचित्रकारों में निःसन्देह सर्वोच्च स्थान की अधिकारिणी हैं। उनके रेखाचित्र एवं संस्मरण साहित्य को हिन्दी में बेजोड़ माना जाता है। अब तक उनके चार संकलन इस विधा से सम्बन्धित प्रकाशित हो चुके हैं अतीत के चलचित्र (1941 ई.), स्मृति की रेखाएँ (1943 ई), पथ के साथी (1956 ई.) और मेरा परिवार (1972 ई.)। उनके संकलनों में ऐसे व्यक्तियों को रेखाचित्र का विषय बनाया गया है जो सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त साधारण स्तर के हैं। वे विभिन्न प्रकार से उनके सम्पर्क में आये हैं। साधारण आदमी की दृष्टि में ये मिट्टी के ढेले हैं किन्तु महादेवी जी की पारखी दृष्टि ने उनके भीतर मानवता का कंचन देखा है। इन रेखाचित्रों में करुण परिस्थितियों में विवश यातना भोगते पात्रों का मार्मिक उद्घाटन है। महादेवी जी की गद्य शैली में ऐसी विशेषताएँ उपलब्ध हैं कि पाठक को उनकी लेखनी का लोहा मानना ही पड़ता है।

▶ रेखाचित्रकारों में सर्वोच्च स्थान की अधिकारिणी

डॉ. पद्मसिंह शर्मा कमलेश के अनुसार, 'अपने संस्मरण और रेखाचित्रों में महादेवी जी ने सर्वत्र भाषा प्रांजल, संस्कृतगर्भित और कवित्वपूर्ण रखी है। बीच-बीच में ग्रामीण बोलचाल के शब्द और मुहावरे भी स्वाभाविक रूप में आ गये हैं। उनकी ग्रामीण बोलचाल के शब्द और मुहावरे भी स्वाभाविक रूप में आ गये हैं। उनकी शैली में भावुकता और गाम्भीर्य का जो पुट है, वह जीवन के मंगलमय रूप का दिग्दर्शक है।' महादेवी के रेखाचित्रों का मूल विषय है करुणा। ग्रामीण जीवन के दीनहीन उपेक्षित पात्र घीसा, मुन्नू की माई, विविया आदि उनके रेखाचित्रों के विषय बने हैं। उनके पात्र मानवीय गुणों के प्रतीक बन गये हैं। रामा की सेवा भावना, घीसा की गुरुभक्ति,भक्तिन की स्वामी भक्ति, गुंगिया का वात्सल्य, बदलू और रधिया का दाम्पत्य प्रेम और सबिया की पति-परायणता अनुकरणीय है। अतीत के चलचित्र में अपने पात्रों के विषय में, वे लिखती हैं 'इन संस्मरणों के आधार प्रदर्शनी की वस्तु न होकर मेरी अक्षय ममता के पात्र रहे हैं।' मेरा परिवार में उन्होंने मानवेतर प्राणियों के व्यक्तित्व को रेखाचित्रों में संजोया है। 'पथ के साथी' में उन्होंने समकालीन साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का कलात्मक अंकन किया है। समग्र रूप से महादेवी जी के रेखाचित्रों

▶ साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का कलात्मक अंकन

में सरसता,रोचकता, व्यंग्यात्मकता, उक्ति-वैचित्र्य, आलंकारिता आदि सभी गुण विद्यमान हैं। उनके रेखाचित्र अनुभूतियों के उमड़ते हुए सागर हैं। करुणा उनकी आत्मा है, मानवतावाद उसकी आधारभूमि है और चित्रात्मकता उनकी शक्ति है। उनकी कृतियाँ अपने कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से हिन्दी रेखाचित्र साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

▶ रेखाचित्रों के विकास में रामवृक्ष बेनीपुरी का नाम अग्रगण्य

हिन्दी रेखाचित्रों के विकास में रामवृक्ष बेनीपुरी का नाम अग्रगण्य है। रेखाचित्र लेखन में उन्हें अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। 'माटी की मूरतें' नामक संकलन में बारह रेखाचित्र उन्होंने संकलित किये हैं। इनको नाम हैं-रजिया, बल्देव सिंह, सरजू भइया, मंगर रूपा की आजी, देव, बालगोविन्द भगत, भौजी, परमेश्वर, बैजू मामा, सुभान खाँ और बुधिया। 'लाल तारा' में 16 शब्द चित्र हैं तथा 'गेहूँ और गुलाब' में 25 रेखाचित्रों का संकलन किया गया है। डॉ.हरवंशलाल शर्मा ने इनके रेखाचित्रों की प्रशंसा करते हुए लिखा है, 'बेनीपुरी जी ने चतुर पारखी जौहरी की भाँति जहाँ-कहीं भी पात्र मिले, उन्हें लेकर अपनी कुशल लेखनी से पात्र का चित्र खड़ा कर दिया। विषय की जितनी विविधता और शैली का जितना अद्भुत चमत्कार बेनीपुरी जी में मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं।'

▶ विषय के प्रति पूर्ण तटस्थता

रेखाचित्र विधा को पल्लवित करने का श्रेय कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', प्रकाशचन्द गुप्त, सत्यवती मलिक, आचार्य विनय मोहन शर्मा, देवेन्द्र सत्यार्थी, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर और अमृतराय जैसे अनेक हिन्दी लेखकों को दिया जा सकता है। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के कई रेखाचित्र संकलन अब तक प्रकाशित हुए हैं, यथा-भूले हुए चेहरे, ज़िन्दगी मुस्कराई, माटी हो गई सोना, दीप जले शंख बजे, संस्मरण आदि। संस्मरण लेखन की कला में पारंगत प्रभाकर जी की भाषा सादगी और प्रवाह लिए हुए है। भावुकतापूर्ण शैली में लिखे गये उनके रेखाचित्रों में विषय के प्रति पूर्ण तटस्थता बरतने का प्रयास किया गया है।

▶ छोटे-छोटे वाक्य, सरल शब्द, सहानुभूतिपूर्ण चित्रण

रेखाचित्र लेखन में प्रो. प्रकाशचन्द्र गुप्ता का भी महत्वपूर्ण स्थान है। 'हंस' के रेखाचित्र विशेषांक में उन्होंने हरिवंशराय बच्चन पर एक रेखाचित्र लिखा था। उनके रेखाचित्र-संग्रहों के नाम हैं-रेखाचित्र, पुरानी स्मृतियाँ और विशाखा। डॉ. नगेन्द्र ने उनके रेखाचित्रों की विशेषताएँ बताते हुए लिखा है- 'छोटे-छोटे वाक्य, सरल शब्द, सहानुभूतिपूर्ण चित्रण आदि के अतिरिक्त आकार में भी लघु होना इनके रेखाचित्रों की विशेषता है। संस्मरण का तत्व इनके रेखाचित्रों में अपेक्षाकृत कम है। अभीष्ट विषय से इधर-उधर भटकने की प्रवृत्ति भी इनकी नहीं है। श्रेष्ठ रेखाचित्र की सभी विशेषताएँ उनके रेखाचित्रों में मिलती हैं।'

▶ भावात्मक शैली का प्रयोग

आचार्य विनय मोहन शर्मा का नाम भी रेखाचित्र में बहुत प्रसिद्ध है। रेखाएँ और रंग नामक रेखाचित्र संग्रह में उन्होंने एक ओर तो भूमिका के अन्तर्गत रेखाचित्रों के सैद्धान्तिक पक्ष का उद्घाटन किया है, तो दूसरी ओर एक कुशल रेखाचित्रकार होने का परिचय भी दिया है। इस संग्रह के सभी रेखाचित्र सरस, तथा प्रवाहमयी भाषा में लिखे गये हैं तथा भाषा को आलंकारिक रूप प्रदान किया गया है। देवेन्द्र सत्यार्थी को भी हिन्दी का प्रमुख रेखाचित्रकार माना गया है। उनके प्रमुख संकलन हैं 'क्या गोरी क्या सांवरी', 'रेखाएँ बोल उठीं', 'एक युग एक प्रतीक' आदि। इनके रेखाचित्रों में भावात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। सत्यार्थी जी के रेखाचित्र लेखन में भावात्मकता स्वाभाविक प्रवाह के रूप में ही आई है।

कुछ अन्य रेखाचित्रकारों एवं उनकी रचनाओं का उल्लेख करना भी यहाँ आवश्यक है। यथा- जगदीशचन्द्र माथुर कृत 'दस-तस्वीरें', डॉ. नगेन्द्र कृत 'चेतना के बिंब', विष्णु प्रभाकर

कृत 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ', 'जाने-अनजाने', उपेन्द्रनाथ अश्क कृत 'ज्यादा अपनी कम पराई', चतुरसेन शास्त्री कृत 'वातायन', ओंकार शरद कृत 'लंका महाराजिन', सेठ गोविन्द-दास कृत 'स्मृतिकण', डॉ. प्रेमनारायण टण्डन कृत 'रेखाचित्र' और श्रीमती सत्यवत्ती मलिक कृत 'अमिट रेखाएँ' आदि। हिन्दी रेखाचित्र एवं संस्मरण विधा के अन्तर्गत पर्याप्त कार्य हुआ है। पत्र- पत्रिकाओं में इस विधा से सम्बन्धित लेख प्रायः निकलते रहते हैं। आजकल अभिनन्दन ग्रन्थ निकालने की जो परम्परा चल रही है, उसने भी साहित्य की इस विधा की पर्याप्त श्रीवृद्धि की है। साहित्यकारों, राजनेताओं और समाजसेवियों से सम्बन्धित अनेक संस्मरणात्मक रेखाचित्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं, अतः इस विधा का भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल है।

▶ कुछ अन्य रेखाचित्रकारों एवं उनकी रचनाओं का उल्लेख

4.1.3 रेखाचित्र और संस्मरण में अंतर

चित्रकला में जिस प्रकार रंगों का प्रयोग किये बिना पेंसिल की रेखाओं से रेखाचित्र (Sketch) बनाये जाते हैं उसी प्रकार शब्दों के माध्यम से जब किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारा जाता है तब उसे रेखाचित्र कहते हैं। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार, 'रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी रूप विधान है, जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि अपना निजीपन उँडेलकर प्राण प्रतिष्ठा कर देती है। रेखाचित्रकार अपने विषय का अध्येता, व्याख्याता और सूत्रधार होता है। रेखाचित्र का विषय काल्पनिक जगत् का न होकर यथार्थ जगत का होता है।'

▶ रेखाचित्रकार अपने विषय का अध्येता, व्याख्याता और सूत्रधार है

संस्मरण और रेखाचित्र इतनी मिलती-जुलती विधाएँ हैं कि कभी-कभी तो उनमें भेदक रेखा खींच पाना भी कठिन हो जाता है। पद्मसिंह शर्मा के अनुसार, 'प्रायः प्रत्येक संस्मरण लेखक रेखाचित्र लेखक भी है और प्रत्येक रेखाचित्र लेखक संस्मरण लेखक भी।

1. संस्मरण विवरणात्मक होते हैं जबकि रेखाचित्र रेखात्मक अर्थात् उनमें इतिवृत्त की प्रधानता नहीं होती।
2. रेखाचित्र में लेखक का दृष्टिकोण वस्तुपरक होता है जबकि संस्मरण में उसका दृष्टि कोण आत्मपरक होता है।
3. रेखाचित्र में लेखक का अपना व्यक्तित्व नहीं उभरता जबकि संस्मरण में लेखक का अपना व्यक्तित्व भी उभरता है।

▶ संस्मरण विवरणात्मक हैं रेखाचित्र रेखात्मक

4.1.4 मंगर - श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म बेनीपुरी ग्राम में सन् 1902 में हुआ था। इनके पिता एक साधारण किसान थे। बेनीपुरी जी के बचपन में ही माता-पिता का देहांत हो गया। जब ये मेट्रिक में ही थे कि देश में असहयोग आंदोलन प्रारंभ हो गया। 15 वर्ष की अवस्था में इन्होंने हिन्दी-साहित्य सम्मेलन से विशारद की परीक्षा पास की। वह 14 बार जेल गए तथा विभिन्न आंदोलन में भाग लिया था, तथा जानेमाने पत्रकार भी थे। बेनीपुरी जी की प्रतिभा बहुमुखी थी। इन्होंने जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भाग लिया तथा सभी क्षेत्रों में सफलता हासिल की।

▶ बहुमुखी प्रतिभा

दिनकर जी के शब्दों में 'बेनीपुरी' नाम कई अर्थों का व्यंजक है। एक बेनीपुरी ने बाल-साहित्य का निर्माण किया, एक बेनीपुरी स्वास्थ्य सबलता, त्याग तपस्या और सामाजिक तथा राजनीतिक क्रांति में युवकों का आदर्श रहा, बेनीपुरी की गिनती समाजवादी दल के संस्थापकों में की जाती है। साहित्य के भीतर से इस बेनीपुरी ने कितने ही ऐसे विचारों और आंदोलनों

का पूर्व संकेत दिया, जो कई वर्ष बाद प्रकट होनेवाले थे। एक बेनीपुरी सारस नाटककार और एक अद्भुत शब्द शिल्पी है। भारत भर में आज जिसके स्केचों की धूम है और कुल मिलाकर देखिए तो सभी बेनीपुरी एक ही बेनीपुरी के विभिन्न पहलू है। मगर सब के सब आकर्षक, सब के सब आबदार। वास्तव में बेनीपुरी जी कलम के जादूगर थे। इनका देहावसान 1968 ई. में हुआ ।

▶ कलम के जादूगर

मंगर बेनीपुरी जी का हलवाहा था। वह कमर में वस्त्र के नाम पर लाल भगवा भर पहनता था। वह अपने काम में दक्ष था। लेखक के बाबा और चाचा उसे बहुत मानते थे। वह मंगर था अभाव-ग्रस्त पर उसमें स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था। क्या मजाल कि कोई उसे खरी-खोटी सुना दे। मंगर अपने काम में डटा रहता, इसलिए अन्य मजदूरों की अपेक्षा उसे विशेष और अच्छी रोजी मिलती थी । वह लेखक को बहुत मानता था। कई बार लेखक उसके कन्धे पर चढ़ा था। वह बाहर से तो बहुत कठोर मालूम पड़ता था, पर भीतर से बहुत कोमल एवं भावप्रवण था। पर्व, त्योहार के अवसर पर मंगर के प्रति विशेष सहानुभूति दिखाई जाती है। कभी-कभी उसे धोती भी मिलती। वह पहनता। पर वह भगवा पहनने के बाद भी सुंदर लगता था।उसके शरीर की बनावट बड़ा ही सुव्यवस्थित और सुंदर था। अतः वह लेखक को उसी रूप में अच्छा लगता था।

▶ बाहर से कठोर भीतर से कोमल

एक बार मंगर के सिर में दर्द हुआ। उसकी पत्नी भकोलिया जो कि एक आदर्श पत्नी थी कहीं से दालचीनी ले आई और उसके सिर पर उसका लेप लगा दिया। सिर दर्द तो जाता रहा, पर साथ ही उसका एक आँख की रोशनी जाती रही। एक बार जाड़े के महीने में लेखक अपने गाँव गया। लेखक आराम से सोया हुआ था। जागने पर उसने एक आदमी को लड़खड़ाकर चलते देखा। वह ठीक से नहीं पहचान सका कि कौन है। बाद में मालूम हुआ कि वह तो मंगर है वह एकदम जर्जर हो गया था। उसे देखकर लेखक के हृदय में करूण उमड़ आई।

▶ आँखों की रोशनी जाती

मंगर बेनीपुरी जी का एक बड़ा ही विश्वस्त हलवाहा था। वह था तो दरिद्र, पर दीन नहीं था। स्वाभिमान उसकी नस-नस में भरा था वह इतना विश्वस्त था और इतना डटकर काम करता था कि कहानीकार के बाबा उसे बहुत मानते थे। जहाँ एक ओर दूसरे मजदूरों को एक रोटी मिलती थी वहाँ मंगर को डेढ़ रोटी मिलती थी। बिना कहे सुने वह खेती के काम बड़े चौकसी से करता था। मंगर देखने में काला-कलूटा था, पर था खूबसूरत। मंगर की मानवता महान थी। वह मनुष्यों को तो प्यार करता ही था पर पशुओं को भी प्यार करता था। वह बैलों को साक्षात महादेव मानता था, खाने पीने से पहले वह अपने हिस्से की रोटी उन बैलों को जरूर खिलाता। उसके यह गुण हमारे भारतीय किसानों के जीवन में देखने को मिलता है और सच कहें तो भारत हमारे गाँव में ही निवास करता है।

▶ मंगर की मानवता

4.1.5 संस्मरण

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य में संस्मरण एक आकर्षक एवं आत्मनिष्ठ आधुनिक विधा है। जीवनी-परक साहित्य का यह अत्यन्त ललित एवं लघु कलात्मक अंग है। जीवन अभिव्यक्ति का यह रूप संस्मरण पर आधारित है। वस्तुतः संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। संस्मरणकार अपनी स्मृति के धरातल पर अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने सम्पर्क में आये हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के विशिष्ट पहलू को कथात्मक शैली में रेखांकित करता है। हर व्यक्ति अपने जीवन में अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। सामान्य व्यक्ति

▶ ललित एवं लघु कलात्मक अंग

उन क्षणों को विस्मृत कर देता है किन्तु संवेदनशील एवं भावुक व्यक्ति इन स्मृतियों को अपने मन पटल पर अंकित कर लेता है। इन क्षणों की स्मृतियाँ जब कभी उसे आकुल कर देती हैं, तभी संस्मरण साहित्य की सृष्टि होती है।

संस्मरण के मूल में अतीत की स्मृतियाँ निहित रहती हैं, जो व्यक्तिगत सम्पर्क का परिणाम होती हैं। उन्हीं स्मृतियों को संस्मरणकार सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। संस्मरण के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत की परिभाषा अधिक समीचीन जान पड़ती है-' भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत-शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त कर देता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं। संस्मरणकार केवल महत्वपूर्ण बातों को ही नहीं लेता है, अपितु छोटी-से-छोटी घटना को भी चास्ता के साथ अंकित कर देता है।

▶ संस्मरणकार छोटी-से-छोटी घटना को चास्ता के साथ अंकित कर देता है

डॉ. आशा कुमारी ने संस्मरण के सन्दर्भ में लिखा है "संस्मरण लेखक जो कुछ देखता है और अनुभव करता है, उसे अपनी अनुभूतियों से राग-रंजित कर प्रस्तुत कर देता है। वह इतिहासकार की भाँति तथ्यपरक विवरण भर नहीं देता, वरन अपनी अनुभूतियों को साहित्यिकता से अभिमण्डित कर उपस्थित करता है।" 'हिन्दी जीवनी : सिद्धान्त और अध्ययन' में डॉ. भगवानशरण भारद्वाज ने संस्मरण के अनेक नियामक महत्वपूर्ण तत्वों की ओर संकेत किया है। सहानुभूतिपूर्ण हृदय की अनिवार्यता, व्यक्तिगत सम्पर्क की अनिवार्यता, लेखक के स्वनिरीक्षण की क्षमता, रचना के प्रारम्भ तथा अन्त का रोचक होना आदि प्रमुख तत्व डॉ. भारद्वाज ने बताये हैं।

▶ अपनी अनुभूतियों से राग-रंजित कर प्रस्तुत कर देता है

संस्मरण सफलता को प्रथम शर्त सहानुभूतिपूर्ण हृदय की अनिवार्यता है। व्यक्ति के स्वभाव में झाँकने का अवसर सहानुभूति के द्वारा ही प्राप्त होता है। संस्मरण की दूसरी शर्त व्यक्तिगत सम्पर्क है, जिसके अभाव में व्यक्ति की रुचि अरुचि, आकर्षण-विकर्षण आदि का पता नहीं चल सकता है। व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा वातावरण आत्मीयतापूर्ण हो जाता है तथा रचना में अतिरिक्त प्रभविष्णुता आ जाती है। इस परम्परा की तीसरी शर्त लेखक के स्व-निरीक्षण की क्षमता है। संस्मरण में लेखक को स्वभाव का निःसंग विवेचन करना पड़ता है जिससे रचना में गहराई आ पाती है। इसकी चौथी शर्त रचना का आदि से अन्त तक रोचक होना है। प्रारम्भ के रोचक होने पर पाठक रचना की ओर आकृष्ट होता है तथा अन्त के रोचक होने पर पाठक के हृदय पर अमिट छाप अंकित हो जाती है।

▶ व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा वातावरण आत्मीयतापूर्ण हो जाता है

संस्मरण नितान्त वैयक्तिक हुआ करते हैं। अतः इसके प्रस्तुतीकरण में भी भिन्नताएँ हुआ करती हैं। इन भिन्नताओं के कारण संस्मरण साहित्य को मोटे तौर पर निम्नलिखित छः कोटियों में विभाजित किया जा सकता है

1. आत्मकथात्मक संस्मरण, 2. यात्रा विवरणात्मक संस्मरण, 3. डायरीनुमा संस्मरण 4. जीवनीमूलक संस्मरण, 5. श्रद्धांजलिमूलक संस्मरण, 6. मूल्यांकनपरक संस्मरण।

▶ संस्मरण नितान्त वैयक्तिक है

यद्यपि इन प्रकारों में साहित्य और गणित जैसा अन्तर नहीं है, फिर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उपर्युक्त कोटियों का निर्धारण अपेक्षित जान पड़ता है।

4.1.6 प्रमुख संस्मरण लेखक

संस्मरण लेखकों में अयोध्या प्रसाद गोपलीय के कई संकलन समय समय पर प्रकाशित हो चुके हैं। 'जन जागरण के अग्रदूत' इनका प्रसिद्ध संग्रह है। इनके संस्मरण अधिकतर जीवनीपरक हैं। इसी प्रकार उपेन्द्रनाथ अश्क के 'मण्टो मेरा दुश्मन' संस्मरण में सबसे अधिक सूझ-बूझ मिलती है। इस विषय में डॉ. भगवानशरण भारद्वाज ने लिखा है- 'इन संस्मरणों को पढ़कर पाठक स्तब्ध और अभिभूत रह जाता है। एक रस्साकशी का बिम्ब संस्मरण के दौरान पाठक के दिमाग पर छाया रहता है। उतना ही गहरा, उत्सुक झुंझलाहटपूर्ण तनाव जिनमें हार-जीत का कोई फैसला नहीं आता है और अन्त में जो एक झटके में मुँह के बल पर गिर पड़ता है, वह पाठक के साथ विजेता की भी सारी करुणा का अधिकारी बन जाता है।' इसके अतिरिक्त पं. रामवृक्ष बेनीपुरी, रामनाथ सुमन, रामनरेश त्रिपाठी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', देवेन्द्र सत्यार्थी, राहुल सांकृत्यायन, गुलाबराय, जैनेन्द्र कुमार, सेठ गोविन्द दास, इलाचन्द्र जोशी, राजेन्द्र यादव, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, डॉ. नर्गन्द्र, ओंकार शरण, विष्णु प्रभाकर आदि ने भी अपने उत्कृष्ट साहित्य दिये और संस्मरण साहित्य विधा के भण्डार को समृद्ध बनाया है।

▶ प्रमुख लेखकों का नाम

महादेवी वर्मा के संस्मरण तो हिन्दी गद्य साहित्य की अक्षय निधि हैं। 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' में संकलित संस्मरणों में उनके संस्मरण-लेखन का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। महादेवी के संस्मरणांकित प्रसंगों में उनका सन्दर्भ स्वतः उद्भासित हो उठा है। महादेवी मूलतः कवयित्री हैं। यही कारण है कि उनके संस्मरणों में कवि हृदय की कोमलता, भावुकता और मधुरता मिलती है और वे भाषा की चित्रोपमता, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता आदि गुणों से सजे हुए हैं।

▶ हिन्दी गद्य साहित्य की अक्षय निधि

आधुनिक संस्मरण लेखकों में श्री राजेन्द्र लाल हाण्डा का नाम प्रचलित है। इनके संस्मरण 'दिल्ली में बीस वर्ष' नामक संकलन में प्रकाशित हो चुके हैं। इसी प्रकार श्रीमती शिवरानी देवी इस युग की प्रमुख संस्मरण लेखिका है। 'प्रेमचन्द : घर में' उनकी एक सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें प्रेमचन्द के अधीन भौतिक संघर्षों से जूझने का, उनसे उत्पन्न सफलता-असफलता का, हर्ष-विषाद का तथा सुख दुःख का वर्णन लेखिका ने किया है। श्री निधि विद्यालंकार का नाम भी संस्मरण लेखिका में गिना जाता है। इनके संस्मरण 'शिवालिक की घाटियों में' शीर्षक से प्रकाशित हो चुके हैं। इनके संस्मरण प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रणों से समन्वित होने के कारण बहुत सुन्दर एवं आकर्षक लगते हैं। भाषा की चित्रात्मकता इनके संस्मरणों की प्रमुख विशेषता है। संस्मरण लेखन के क्षेत्र में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के स्मरण कई संग्रहों में प्रकाशित हुए हैं। जैसे 'पूरब और पश्चिम', 'हवेली की झोपड़ी, 'वे और हम', 'जानी-चुनी-देखी साला' आदि। इन सभी संस्मरणों में वर्णनों और चित्रों की सापेक्षिक शैलियों का प्रयोग किया गया है।

▶ वर्णनों और चित्रों की सापेक्षिक शैलियों का प्रयोग

हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में संस्मरण साहित्य उपलब्ध है। जिस प्रकार नवीन साहित्य रूपों का जन्म पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से होता है, उसी प्रकार संस्मरण विधा का भी जन्म सुधा, सरस्वती, माधुरी, विशाल भारती, चाँद आदि विविध पत्र-पत्रिकाओं से ही हुआ और इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से संस्मरण साहित्य विधा के विकास को बहुत बल मिला। अधिकांश विद्वानों ने पं. प्रतापनारायण मिश्र पर बाबू बालमुकुन्द गुप्त का सन् 1907 में लिखा

▶ संस्मरण साहित्य विधा के विकास

गया संस्मरण हिन्दी का प्रथम संस्मरण माना है। कुछ लोग स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को और कुछ पं पद्मसिंह शर्मा को हिन्दी का प्रथम संस्मरण लेखक मानते हैं।

भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी के जनक माने जाते है। उन्हेंने गद्य साहित्य की अन्य विधाओं की तरह संस्मरण लेखन का भी कार्य किया। उनका 'कुछ आपबीती कुछ जग बीती' शीर्षक एक सुन्दर संस्मरण है। इस कृति में वर्णन स्मृति पर ही आधारित है। हिन्दी में संस्मरण साहित्य विधा का वास्तविक लेखन द्विवेदी युग से ही माना जाता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने संस्मरणात्मक निबन्ध प्रस्तुत किये। द्विवेदी जी की प्रेरणा से 'सरस्वती' में बहुत से संस्मरणात्मक जीवन परिचय प्रकाशित हुए थे। इन जीवन-परिचयों में लेखक की आत्मानुभूति की प्रधानता रहती है। वे कोरे जीवनवृत्त मात्र न थे। इसीलिए उन्हें जीवनी न कहकर संस्मरण कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। द्विवेदी युग के बाद के साहित्यकारों के संस्मरण सभी प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रचुर मात्रा में प्रकाशित होने लगे थे। इस प्रकार संस्मरण साहित्य विधा स्वतंत्र रूप से विकसित होकर स्थिरता प्राप्त करने लगी।

▶ संस्मरण साहित्य विधा स्वतंत्र रूप में विकसित हुआ

4.1.6.1 संस्मरण की विशेषताएँ

1. व्यक्तिपरक परिप्रेक्ष्य : संस्मरण स्वाभाविक रूप से व्यक्तिगत होते हैं, जिन्हें लेखक के व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से वर्णित किया जाता है। यह प्रामाणिकता पाठकों को लेखक की भावनाओं और विचारों से घनिष्ठता से जुड़ने की अनुमति देती है।
2. किसी थीम या अवधि पर ध्यान केंद्रित करें : आत्मकथाओं के विपरीत, संस्मरण लेखक के जीवन में एक विशिष्ट विषय, घटना या अवधि पर ज़ूम करते हैं। यह केंद्रित दृष्टिकोण चुने हुए विषय वस्तु की गहन खोज की अनुमति देता है।
3. भावनात्मक अनुनाद : संस्मरण भावनात्मक प्रामाणिकता पर पनपते हैं। लेखक अपनी भावनाओं, संघर्षों और खुशियों को ईमानदारी से बताते हैं, पाठकों को उनकी भावनात्मक यात्रा में भाग लेने के लिए आमंत्रित करते हैं।
4. चिंतनशील प्रकृति : संस्मरणों में अक्सर आत्मनिरीक्षण और चिंतन शामिल होता है। लेखक अपने अनुभवों के महत्व पर विचार करते हैं और इस प्रक्रिया में पाठकों को अपने जीवन पर विचार करने के लिए आमंत्रित करते हैं।
5. कथात्मक आर्क : कल्पना की तरह, संस्मरण भी शुरुआत, मध्य और अंत के साथ एक कथात्मक आर्क का अनुसरण करते हैं। यह संरचना कहानी कहने में सुसंगतता और जुड़ाव जोड़ती है।
6. सार्वभौमिक विषय-वस्तु : जबकि संस्मरण अत्यंत व्यक्तिगत होते हैं, वे अक्सर प्रेम, हानि, पहचान और लचीलेपन जैसे सार्वभौमिक विषयों को छूते हैं। यह सार्वभौमिकता उनकी व्यापक अपील में योगदान करती है।

▶ संस्मरणों में आत्मनिरीक्षण और चिंतन शामिल होता है

4.1.7 प्रेमचन्दजी - महादेवी वर्मा

प्रेमचंदजी से मेरा प्रथम परिचय पत्र के द्वारा हुआ। तब मैं आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थी। मेरी 'दीपक' शीर्षक एक कविता शायद 'चाँद' में प्रकाशित हुई। प्रेमचंदजी ने तुरंत ही मुझे कुछ पंक्तियों में अपना आशीर्वाद भेजा। तब मुझे यह ज्ञान नहीं था कि कहानी और उपन्यास लिखने वाले कविता भी पढ़ते हैं। मेरे लिए ऐसे ख्यातनामा कथाकार का पत्र जो मेरी कविता की विशेषता व्यक्त करता था, मुझे आशीर्वाद देता था, बधाई देता था, बहुत दिनों तक मेरे

कौतूहल मिश्रित गर्व का कारण बना रहा। उनके प्रत्यक्ष दर्शन तो विद्यापीठ आने के उपरांत हुए । उसकी भी एक कहानी है। एक दोपहर को जब प्रेमचंदजी उपस्थित हुए तो मेरी भक्तिन ने उनकी वेशभूषा से उन्हें भी अपने ही समान ग्रामीण या ग्राम निवासी समझा और सगर्व उन्हें सूचना दी-गुरुजी काम कर रही हैं। प्रेमचंदजी ने अपने अट्टहास के साथ उत्तर दिया- तुम तो खाली हो। घड़ी-दो घड़ी बैठकर बात करो और तब जब कुछ समय के उपरांत मैं किसी कार्यवश बाहर आई तो देखा नीम के नीचे एक चौपाल बन गई है। विद्यापीठ के चपरासी, चौकीदार, भक्तिन के नेतृत्व में उनके चारों ओर बैठे हैं और लोक-चर्चा आरंभ है।

▶ प्रेमचंद से पत्र में पहली बार संपर्क किया और बाद में विद्यापीठ में

प्रेमचंदजी के व्यक्तित्व में एक सहज संवेदना और ऐसी आत्मीयता थी, जो प्रत्येक साहित्यकार का उत्तराधिकार होने पर भी उसे प्राप्त नहीं होती। अपनी गंभीर मर्मस्पशर्नी दृष्टि से उन्होंने जीवन के गंभीर सत्यों, मूल्यों का अनुसंधान किया और अपनी सहज सरलता से, आत्मीयता से उसे सब ओर दूर-दूर तक पहुँचाया। जिस युग में उन्होंने लिखना आरंभ किया था, उस समय हिन्दी कथा-साहित्य जासूसी और तिलस्मी कौतूहली जगत् में ही सीमित था। उसी बाल-सुलभ कुतूहल में प्रेमचंद उसे एक व्यापक धरातल पर ले आए. जो सर्व-सामान्य था। उन्होंने साधारण कथा, मनुष्य की साधारण घर-घर की कथा, हल-बैल की कथा, खेत-खलिहान की कथा, निर्झर, वन, पर्वतों की कथा सब तक इस प्रकार पहुँचाई कि वह आत्मीय तो थी ही, नवीन भी हो गई। कवि अंतर्मुखी रह सकता है और जीवन की गहराई से किसी सत्य की खोज कर, फिर ऊपर आ सकता है। लेकिन कथाकार को बाहर-भीतर दोनों दिशाओं में शोध करना पड़ता है, उसे निरंतर सबके समक्ष रहना पड़ता है। शोध भी उसका रहस्यमय नहीं हो सकता, एकांतमय नहीं हो सकता। जैसे गोताखोर जो समुद्र में लगाता है, अनमोल मोती खोजने के लिए, वहीं रहता है और मोती मिल जाने पर ऊपर आ जाता है।

▶ प्रेमचंद ने हिन्दी कथा-साहित्य को सरल और सामान्य जीवन की कहानियों से समृद्ध किया

प्रायः जो व्यक्ति हमें प्रिय होता है, जो वस्तु हमें प्रिय होती है, हम उसे देखते हुए थकते नहीं। जीवन का सत्य ही ऐसा है जो आत्मीय है, वह चिर नवीन भी है। हम उसे बार-बार देखना चाहते हैं। कवि के कर्म से कथाकार का कर्म भिन्न होता है। शोध भी उसका रहस्यमय नहीं हो सकता, एकांतमय नहीं हो सकता। नाविक को तो अतल गहराई का ज्ञान भी रहना चाहिए और ज्वार-भाटा भी समझना चाहिए, अन्यथा वह किसी दिशा में नहीं जा सकता। प्रेमचंद ने जीवन के अनेक संघर्ष झेले और किसी संघर्ष में उन्होंने पराजय की अनुभूति नहीं प्राप्त की। पराजय का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं था । संघर्ष सभी एक प्रकार से पथ के बसेरे के समान ही उनके लिए रहे, वह उन्हें छोड़ते चले गए।

▶ प्रेमचंद ने जीवन के संघर्षों को थकावट नहीं समझामगर अपने मार्ग पर चलते रहने का साधन माना

ऐसा कथाकार जो जीवन को इतने सहज भाव से लेता है, संघर्षों को इतना सहज मानकर, स्वाभाविक मानकर चलता है, वह आकर फिर जाता नहीं। वह मनुष्य और जीवन भूलते नहीं। वह भूलने के योग्य नहीं है। उसे भूलकर जीवन के सत्य को ही हम भूल जाते हैं। ऐसा कुछ नहीं है कि जिसके संबंध में प्रेमचंद का निश्चित मत नहीं है। दर्शन, साहित्य, जीवन, राष्ट्र, सांप्रदायिक एकता, सभी विषयों पर उन्होंने विचार किया है और उनका एक मत और ऐसा कोई निश्चित मत नहीं है, जिसके अनुसार उन्होंने आचरण नहीं किया। जिस पर उन्होंने विश्वास किया, जिस सत्य को उनके जीवन ने, आत्मा ने स्वीकार किया, उसके अनुसार उन्होंने निरंतर आचरण किया। इस प्रकार उनका जीवन, उनका साहित्य, दोनों खरे स्वर्ण भी हैं और स्वर्ण के खरेपन को जाँचने की कसौटी भी हैं।

▶ जीवन और संघर्ष को सहजता से स्वीकार किया और सच्चाई के साथ जीवन व्यतीत किया

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

रेखाचित्र की विशेषता विस्तार में नहीं, तीव्रता में होती है। रेखाचित्र पूर्ण चित्र नहीं है-वह व्यक्ति, वस्तु, घटना आदि का एक निश्चित विवरण की न्यूनता के साथ-साथ तीव्र संवेदनशीलता वर्तमान रहती है। इसीलिए रेखाचित्रांकन का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है, उस दृष्टिबिन्दु का निर्धारण, जहाँ से लेखक अपने वर्ण्य विषय का अवलोकन कर उसका अंकन करता है। रेखाचित्र के लिए संकेत सामर्थ्य भी बहुत आवश्यक है- रेखाचित्रकार शब्दों और वाक्यों से परे भी बहुत कुछ कहने की क्षमता रखता है। रेखाचित्र के लिए उपयुक्त विषय का चुनाव भी बहुत महत्वपूर्ण है। इसकी विषय वस्तु ऐसी होती है, जिसे विस्तृत वर्णन और रंगों की अपेक्षा न हो और जो कुछ ही रेखाओं के संघात से चमक उठे। संस्मरण मानव आत्मा में खुलने वाली खिड़कियां हैं, जो पाठकों को लेखक के सुख, दुःख और विकास में हिस्सा लेने के लिए आमंत्रित करते हैं। वे मात्र आख्यानों से परे हैं, मानव होने के अर्थ के सार को पकड़ते हैं। संस्मरण महज़ कहानियों से कहीं अधिक हैं; वे एक गहरे उद्देश्य की पूर्ति करते हैं जो मानवीय संबंधों के मर्म में गहराई तक उतरता है। वे साझा अनुभवों के माध्यम बन जाते हैं, उन पाठकों को सांत्वना प्रदान करते हैं जो लेखक के संस्मरणों में अपने स्वयं के परीक्षणों और विजय की गूँज देखते हैं। संस्मरण प्रेरित करने, शिक्षित करने, मनोरंजन करने, सांस्कृतिक इतिहास को संरक्षित करने और सहानुभूति को प्रोत्साहित करने, भावनात्मक संबंध और ज्ञानोदय की एक टेपेस्ट्री बनाने के लिए लिखे जाते हैं। लेखक अपनी कठिनाइयों से जूझ रहे लोगों के लिए आशा की किरण के रूप में काम करते हुए, प्रतिकूल परिस्थितियों पर काबू पाने के अपने अनुभवों को प्रकट करते हैं। कहानियाँ सशक्तीकारण का स्रोत बन जाती हैं, जो हममें से प्रत्येक के अंदर मौजूद परिवर्तनकारी क्षमता को प्रदर्शित करती हैं।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी रेखाचित्र के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. प्रमुख रेखाचित्रकारों का परिचय दीजिये।
3. रेखाचित्र और संस्मरण के अंतर बताइए।
4. संस्मरण और उसकी विशेषताओं के बारे में टिप्पणी लिखिए।
5. प्रमुख संस्मरण लेखक के बारे में टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी का गद्य साहित्य - डॉ. रामचंद्र तिवारी।
2. हिन्दी गद्य शैली का विकास - डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा।
3. संस्मरण -डॉ. बनारसीदास चतुर्वेदी।
4. संस्मरण और रेखाचित्र - उर्मिला मोदी।

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह।
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - डॉ. इन्द्रनाथ मदान।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल।

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

आत्मकथा उद्‌भव और विकास, आत्मकथा साहित्य की विशेषताएँ, जीवनी उद्‌भव और विकास, आत्मकथा और जीवनी में अंतर (मेरा जीवन - आत्मकथा अंश, प्रेमचन्द - विस्तृत अध्ययन)

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- आत्मकथा के बारे में समझता है
- आत्मकथा के उद्‌भव और विकास के बारे में समझता है
- जीवनी के उद्‌भव और विकास से अवगत होता है
- जीवनी के बारे में परिचय प्राप्त होता है
- आत्मकथा और जीवनी के अंतर से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

आत्मकथा लेखन में लेखक के द्वारा कही गयी बातों पर विश्वास करते हुए उसको सच माना जाता है, क्योंकि उसके लिए लेखक स्वयं साक्षी एवं ज़िम्मेदार होता है। आत्मकथा लेखन आत्मकथाकार के जीवन के व्यक्तित्व उद्‌घाटन, ऐतिहासिक तत्वों की प्रामाणिकता तथा उद्देश्य के कारण महान होता है। आत्मकथा का उद्देश्य लेखक द्वारा स्वयं का आत्मनिर्माण करना, आत्मपरीक्षण करना तथा उसके साथ-साथ अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करना होता है। आत्मकथा लेखक इसके द्वारा आत्मांकन, आत्मपरिष्कार तथा आत्मोन्नति भी करना चाहता है। इसका लाभ अन्य लोगों को भी मिलता है। इससे अन्य पाठक भी कुछ प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं।

'आत्मकथा' हिन्दी साहित्य की अधुनातन किंतु सशक्त गद्य-विधा है। गद्य अन्य नवीन विधाओं की ही तरह 'आत्मकथा' का विकास भी आधुनिक काल की देन है। आत्मकथा 'जीवनी' से मिलती-जुलती एक सुरस संस्मरणात्मक विधा होती है। यद्यपि अन्य विधाओं की तुलना में 'आत्मकथा' का प्रचलन कम है, तथापि तथ्य-विवेचन के संदर्भ में इसकी महार्घता असंदिग्ध है। आत्मकथा से अभिप्राय होता है कि कोई लेखक अपने व्यतीत हुए जीवन का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध चित्रण करे अर्थात् जब कोई लेखक अपने विगत जीवन का क्रमिक ब्योरा प्रस्तुत करता है, तो उसे आत्मकथा कहते हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अन्तर्जगत, बहिर्जगत, आत्मविश्लेषण

Discussion / चर्चा

आत्मकथा के लिए अंग्रेजी में 'Autobiography' शब्द प्रचलित है। जब लेखक स्वयं के जीवन का क्रमिक ब्यौरा प्रस्तुत करता है, तो उसे आत्मकथा कहा जाता है। आत्मकथा में स्वयं की अनुभूति होती है। इसमें लेखक उन तमाम बातों का विवरण देता है, जो बातें उसके जीवन में घटी होती हैं। आत्मकथा में लेखक अपने अन्तर्जगत को बहिर्जगत के सामने प्रस्तुत

करता है, इसमें आत्मविश्लेषण होता है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के बारे में लिखता है तथा समाज के सामने स्वयं को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करता है। जिससे समाज उसके जीवन के पहलुओं से परिचित होता है। आत्मकथा विधा के कई पयार्यवाची नाम भी मिलते हैं।

▶ स्वयं की अनुभूति

आत्मकथा को परिभाषित करने से पहले हमको इस शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ को जान लेना चाहिए। "आत्म यह शब्द आत्मन शब्द से उत्पन्न हुआ है। इस का अर्थ लिया जाता है 'स्वयं का' आत्मचरित, आत्मकथा, आत्मकथन इन शब्दों का सामान्यतः एक ही अर्थ लिया जाता है।" अंग्रेजी की Autobiography को ही हिन्दी में आत्मकथा या आत्मवृत्त कहा जाता है। आधुनिक हिन्दी शब्दकोश में "आत्मकथा शब्द 'स्त्री लिंग' संज्ञा में लिया गया है, तथा उसका अर्थ 'स्वयं' द्वारा लिखा गया जीवन चरित्र, जीवनी, आपबीती, आत्मकहानी" आदि विकल्प स्वरूप लिया गया है।

▶ आत्मकथा शब्द की उत्पत्ति

आत्मकथा की अवधारणा पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार रखे हैं इन विचारों के आधार पर यह कहा जाता है कि जो आत्मकथाकार होता है वह अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं, मानवीय अनुभूतियों, भावों विचारों तथा कार्यकलापों को निष्पक्षता एवं स्पष्टता से आत्मकथा में समाहित करता है। इसमें उसके जीवन की उचित एवं अनुचित घटनाओं का सच्चा चित्रण होता है। इसमें लेखक स्वयं के जीवन की स्मृतियों को प्रस्तुत करता है, जो आत्मनिरीक्षण, आत्मज्ञान तथा आत्म-न्याय के आधार पर होती है। इसलिए आत्मकथा को हम सम्पूर्ण व्यक्तित्व के उद्घाटन की विधा के रूप में भी स्वीकार करते हैं।

▶ मानवीय अनुभूतियों, भावों विचारों तथा कार्यकलापों को निष्पक्षता एवं स्पष्टता

4.2.1 आत्मकथा की परिभाषा

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार- आत्मकथा, व्यक्ति के जिये हुए जीवन का ब्यौरा है, जो स्वयं उसके द्वारा लिखा जाता है। कैसेल ने एनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिटरेचर में आत्मकथा को परिभाषित करते हुए कहा है कि- आत्मकथा व्यक्ति के जीवन का विवरण है, जो स्वयं के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें जीवनी के अन्य प्रकारों से सत्य का अधिकतम समावेश होना चाहिए। हरिवंशराय बच्चन कहते हैं- आत्मकथा, लेखन की वह विधा है, जिसमें लेखक ईमानदारी के साथ आत्मनिरीक्षण करता हुआ अपने देश, काल, परिवेश से सामंजस्य अथवा संघर्ष के द्वारा अपने को विकसित एवं प्रस्थापित करता है।

▶ व्यक्ति के जीवन का विवरण है, जो स्वयं के द्वारा प्रस्तुत करता है

डॉ. नगेन्द्र ने आत्मकथा को इस प्रकार परिभाषित किया है- आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथक की रचना नहीं करता कोई स्वप्न सृष्टि नहीं रचता, वरन अपने गत जीवन के खट्टे-मीठे, उजाले अंधेरे, प्रसन्न-विषण्ण, साधारण-असाधारण संचरण पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है, अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेता है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य सूत्रों का अन्वेषण करता है। डॉ. कुसुम अंसल ने कहा है- आत्मकथा लिखना अपने अस्तित्व के प्रति कर्ज चुकाने जैसी प्रक्रिया या संसार चक्र में फँसे अपने अस्तित्व की डोर को उधेड़ लेने का साहित्यिक प्रयास है।

▶ अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेता

डॉ. शान्तिखन्ना के अनुसार- जब लेखक किसी अन्य व्यक्ति के जीवन चरित्र को चित्रित करने की अपेक्षा अपने ही व्यक्तित्व का विश्लेषण विवेचन पूर्ण रूप से करता है, तब वह आत्मकथा कहलाती है। आत्मकथा का नायक लेखक स्वयं होता है, इसमें लेखक जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करता है। आत्मकथा लेखक आत्मविवेचन, आत्मविश्लेषण के दृष्टिकोण से लिखता है। इसके साथ वह आत्मप्रचार की भावना से भी व्यक्तिगत जीवन

का विवेचन करता है। वह चाहता है कि उसके अनुभवों का लाभ अन्य लोग भी उठा सकें, इस प्रकार गद्य साहित्य में इस विधा का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः स्पष्ट है कि जब लेखक अपने जीवन का विश्लेषण, विवेचन स्पष्ट रूप से करता है, तब वह आत्मकथा कहलाती है। जीवनीपरक साहित्य का वह अन्यतम भेद है। आत्मकथा लेखक साहित्यिक, राजनीतिक, धार्मिक कोई भी हो सकता है परन्तु लेखक का सर्वप्रतिष्ठित एवं सर्वमान्य होना आवश्यक है।

▶ व्यक्तित्व का विश्लेषण विवेचन पूर्ण रूप से करता है

डॉ. साधना अग्रवाल के अनुसार- आत्मकथा लिखने की शर्त है ईमानदारी से सच के पक्ष में खड़ा होना और अपनी सफलता-असफलताओं का निर्ममतापूर्वक पोस्टमार्टम करना। डॉ. त्रिगुणायत ने आत्मकथा की परिभाषा इस प्रकार दी है- आत्मकथा लेखक की दुर्बलताओं-सबलताओं आदि का वह संतुलित और व्यवस्थित चित्रण है जो उस के संपूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्घाटन में समर्थ होता है। इसी परिभाषा से मेल खाती हुई परिभाषा डॉ. चंद्रभानु सोनवणे की है। वे कहते हैं- आत्मकथा वह गद्य विधा है जिस में लेखक निजी जीवन एवं व्यक्तित्व का सर्वांगीण अध्ययन तटस्थ एवं संतुलित दृष्टि से करता है।

▶ संपूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्घाटन

डॉ. श्यामसुंदर घोष के अनुसार- आत्मकथा समय-प्रवाह के बीच तैरने वाले व्यक्ति की कहानी है। इसमें जहाँ व्यक्ति के जीवन का जौहर प्रकट होता है वहाँ समय की प्रवृत्तियाँ और विकृतियाँ भी स्पष्ट होती हैं। इन दोनों घात प्रतिघात से ही आत्मकथा में सौन्दर्य और रोचकता का समावेश होता है। डॉ. श्यामसुंदर घोष की परिभाषा से यह बात स्पष्ट होती है कि आत्मकथा से न केवल उस व्यक्ति की जीवन-कहानी का पता चलता है बल्कि समसामयिक परिस्थितियों के ऐतिहासिक तथ्यों के साथ व्यक्तित्व के गढ़ने में उनके सहयोग का भी पता चलता है।

▶ आत्मकथा में सौन्दर्य और रोचकता का समावेश होता है

4.2.2 आत्मकथा का उद्भव और विकास

हिन्दी साहित्य में गद्य लेखन की विभिन्न विधाओं में आत्मकथा साहित्य की अन्य विधाओं से अधिक विश्वसनीय एवं सत्याश्रित मानी जाती है। आत्मकथा विधा का उद्भव कब हुआ इस संबंध में विद्वानों में मतभेद पाये जाते हैं। अनेक विद्वान इस विधा को भारतीय वांग्मय में समाहित मानते हैं। तथा वैदिक काल से इसकी उत्पत्ति पर बल देते हैं। वे इस क्रम में पालि साहित्य में पाये गये भिक्षुणियों के वर्णन को इस कोटि में रखते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार जीवनी परक विधा का सूत्रपात आदिकाल के रासो साहित्य चरित्र काव्य के रूप में भी दृष्टिगोचर होता है। परतुं इन चरित काव्य की प्रमाणिकता को लेकर संदिग्धता बनी हुई है। कुछ विद्वानों के अनुसार आत्मकथा का उद्भव भक्तिकाल से माना जाना चाहिए, क्यों कि भक्तिकाल में संत कवि अपने चरित्र के साथ अनुभूति, जीवन संघर्ष तथा सामाजिक स्थिति के बारे में स्पष्ट रूप से कहते दिखाई देते हैं। संतों ने अपने जन्म, जाति, व्यवसाय तथा परिवार का उल्लेख अपने काव्य में किया है। पर इस में हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि संतों एवं भक्त कवियों का उद्देष्य अपना आत्मप्रकाशन करना अथवा आत्मप्रशंसा करना नहीं था। इस भावना से उन्होंने कभी भी नहीं लिखा। इस तरह के वर्णन अथवा प्रसंग संतों की स्पष्टवादी स्वभाव के कारण आये थे। अतः इस तरह उनके काव्य में पाये जाने वाले आत्मकथ्य संबंधी तथ्य को आत्मकथा कहना उचित नहीं होगा। अतः इस काल में आत्मकथा का उद्भव नहीं माना जा सकता है।

▶ विद्वानों के विभिन्न दृष्टि कोण

बाबर द्वारा डायरी के रूप में लिखी आत्मकथा 'बाबरनामा' को हरिवंशराय बच्चन जी

विधिवत आत्मकथा मानते हैं और कहते हैं "बाबरनामा में बातें खुलकर कही गयी हैं, जिसमें एक तरह की पकड़ है।" यद्यपि बाबरनामा तुर्की में लिखा गया है। 18 वीं सदी में उर्दू के शायर मीर तकी मीर ने अपनी आत्मकथा 'जिक्रेमीर' लिखी इसका अनुवाद हिन्दी में भी हुआ है। बच्चन जी ने 'बाबरनामा', 'जिक्र-ए-मीर', तथा 'अर्द्धकथानक' इन कृतियों को भारत भूमि से जुड़ी और पश्चिमी प्रभाव से बिल्कुल असंतृप्त माना है। रीतिकाल के अंतिम चरण में और आधुनिक युग के प्रारंभ से पहले कवि बनारसीदास जैन के द्वारा लिखी आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' को हिन्दी की प्रथम आत्मकथा माना गया है। यह आत्मकथा ब्रजभाषा पद्य में लिखी गयी है। जो सन् 1641 में लिखी गयी। जब यह आत्मकथा छपी तो लोगों ने आश्चर्य व्यक्त किया। इस आत्मकथा की मौलिकता के बारे में डॉ. विश्वबंधु शास्त्री ने लिखा है- "यह आश्चर्य का विषय है कि जब भारत में कोई आत्मकथा लिखे जाने की कल्पना भी नहीं कर सकता था, उस काल में हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि ने उत्कृष्ट आत्मकथा लिखी। जो उच्च स्तरीयता के निष्कर्ष पर प्रत्येक दृष्टि से खरी उतरती है।" इसके संबंध में हिन्दी साहित्यकोश-1 के संपादक मंडल का दावा है कि "कदाचित समस्त आधुनिक आर्यभाषा साहित्य में इससे पूर्व की कोई आत्मकथा नहीं है।" इसके बाद भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिश्चंन्द्र ने 'कुछ आपबीती कुछ जगबीती' नामक आत्मकथा लिखी। सन् 1901 में अंबिकादत्त व्यास ने 'निजवृत्तांत' नामक आत्मकथा लिखी। इस के साथ ही स्वामी श्रद्धानंद की आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' हिन्दी की आरंभिक आत्मकथाओं में से एक है। इसके अलावा श्यामसुंदर दास की आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी', गुलाबराय की 'मेरी असफलताएँ' और सियारामशरण गुप्त की आत्मकथा 'झूठ-सच' आदि प्रमुख आत्मकथाएँ हैं। आत्मकथा लेखन में महिला आत्मकथा लेखिकाओं का भी योगदान है। इसमें अमृता प्रीतम का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। जिनकी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' है। इसके अलावा अन्य महिला आत्मकथा लेखिकाओं में, प्रतिभा अग्रवाल की 'दस्तक जिंदगी की', कुसुम अंसल की 'जो कहा नहीं गया',कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा', पद्मा सचदेव की 'बूंद बावड़ी और मैत्रेयी पुष्पा की', 'कस्तूरी कुंडल बसे' आदि उल्लेखनीय आत्मकथाएँ हैं।

▶ हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण आत्मकथाओं और उनके लेखक

परिणाम एवं गुणवत्ता दोनों दृष्टियों से हिन्दी में आत्मकथा साहित्य समृद्ध है। आत्मकथा साहित्य में दलित आत्मकथाओं का स्थान महत्वपूर्ण है। दलित लेखकों ने शताब्दियों से शोषित-दमित अपने मन का दर्द और क्षोभ अपनी आत्मकथाओं में बड़े प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। इन्होंने अपनी मन की पीड़ा से बाह्य जगत को परिचित कराया है। तथा इस ओर सवर्ण समाज का ध्यान आकर्षित किया है। तथा यह बताया है कि किस प्रकार हिन्दू समाज उनके साथ सदियों से घोर अन्याय करता आया है, और आज भी उनका दमन एवं शोषण ज़ारी है। यह दलित आत्मकथा साहित्य आज हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है।

▶ शोषण और पीड़ा को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया

4.2.3 हिन्दी आत्मकथा का विकास

हिन्दी में आत्मकथा लेखन की शुरूआत के बाद अनेक आत्मकथाएँ लिखी गयीं। विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े हुए लोगों ने अपनी-अपनी आत्मकथाएँ लिखीं। स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के बाद भी अनेक देशभक्तों, स्वतंत्रता सेनानियों, समाज सुधारकों, साहित्यकारों तथा पत्रकारों आदि के द्वारा पर्याप्त मात्रा में आत्मकथा लेखन किया गया। आत्मकथा के विकास को निम्न प्रकार समझा जा सकता है।

1. स्वतंत्रता पूर्व कालखंड की आत्मकथाएँ।
2. भारतीय लेखकों की अनूदित आत्मकथाएँ।
3. स्वातंत्र्योत्तर कालखंड की आत्मकथाएँ।
4. हिन्दी साहित्यकारों की मौलिक आत्मकथाएँ।
5. मराठी दलित आत्मकथाएँ।
6. हिन्दी में अनुदित मराठी दलित आत्मकथाएँ।
7. हिन्दी दलित आत्मकथा।

▶ आत्मकथा लेखन के विकास के विभिन्न चरणों का उल्लेख

स्वतंत्रता पूर्व कालखंड की आत्मकथाएँ - इस कालखंड में देशभक्तों तथा आर्यसमाजी सन्यासियों के द्वारा लिखी आत्मकथाएँ अधिक मात्रा में प्राप्त होती हैं। इनमें से कई लेखक तो ऐसे भी हैं जिन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया तथा जेल भी गये। जिनमें से कुछ ने अपनी आत्मकथा जेल में ही लिखी। कुछ आत्मकथाएँ प्रादेशिक भाषा में भी आई जिन का अनुवाद बाद में हिन्दी में किया गया। इनमें से कुछ आत्मकथाएँ इस प्रकार हैं। सत्यानंद अग्निहोत्री- सत्यानंद अग्निहोत्री की आत्मकथा 'मुझ में देव जीवन का विकास' दो खंडों में प्रकाशित हुई। प्रथम खंड का प्रकाशन 1909 तथा द्वितीय भाग का प्रकाशन सन् 1918 में हुआ। इस आत्मकथा की आलोचना करते हुए विश्वबंधु ने लिखा है "इसमें आत्मश्लाखा भी पदे-पदे इस प्रकार आपूरित है कि मानो स्वयं को अवतार सिद्ध करने के लिए अपनी चमत्कारिक शक्तियों का प्रदर्शन लेखक ने किसी बाध्यता की स्थिति में किया हो।" अतः इस आत्मकथा को स्तरीय नहीं माना जाता। भाई परमानंद की आत्मकथा 'आप बीती' नाम से सन् 1921 में आई इस आत्मकथा के बारें में विश्वबंधु शास्त्री ने लिखा है - "पुस्तक की भाषाशैली सरल, सरस, रोचक, प्रवाहशील, प्रभावपूर्ण और ऐतिहासिक है। इसे हिन्दी की महत्वपूर्ण आत्मकथा का स्थान प्राप्त है, अतः क्रान्तिकारियों की आत्मकथाओं में यह सब से पहले प्रकाश में आई। दयानंद सरस्वती - दयानंद सरस्वती की आत्मकथा सन् 1975 में प्राप्त होती है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने पूना प्रवचन में अपने जन्म से लेकर पूना प्रवचन के दिन तक की घटनाओं का उल्लेख किया है। इस आत्मकथा को उनके द्वारा स्वयं कथित आत्मकथा कहा जाता है। इसे हिन्दी लिपिकों ने लिपिबद्ध किया। उपर्युक्त सभी आत्मकथाएँ स्वतंत्रता पूर्व कालखंड की हैं।

▶ स्वतंत्रता पूर्व कालखंड की आत्मकथाओं का उल्लेख

भारतीय लेखकों की अनूदित आत्मकथाएँ- भारतीय लेखकों की अनुदित आत्मकथाओं में प्रारंभिक काल में सर्वश्रेष्ठ आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई। इसमें महात्मा गांधी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' सन् 1927 में प्रकाशित हुई जिसका अनुवाद हरिभाऊ उपाध्याय के द्वारा किया गया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की आत्मकथा 'जीवन स्मृति' इस युग की दूसरी सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा है। सूरजमल जैन ने इसका अनुवाद करके सन् 1930 में इसको प्रकाशित करवाया। इस आत्मकथा का अनुवाद मराठी व गुजराती में भी हुआ। महात्मा गांधी तथा रबीन्द्रनाथ ठाकुर की आत्मकथाओं की आपस में तुलना भी हुई। इसपर प्रकाश डालते हुए विश्वबंधु शास्त्री ने लिखा है- "दोनों ने अपने बचपन की समृतियों का विस्तार से चित्रण करने के लिए अपने बाल्य-जीवन संबंधी खण्ड आत्मकथाओं का पृथक निर्माण किया, जो परवर्ती काल में पृथक आकार में प्रकाशित हुई और उनके हिन्दी अनुवाद भी हुए। पं.जवाहरलाल नेहरू -पं.जवाहर लाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा मूलतः अंग्रेजी में लिखी जिसका नाम था 'माई स्टोरी'। इस आत्मकथा का अनुवाद हरिभाऊ उपाध्याय ने वियोगी हरि तथा कृष्ण दत्त

▶ भारतीय लेखकों के बीच प्रारंभिक काल में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ आत्मकथाएँ

पालीवाल के सहयोग से किया। इस आत्मकथा का प्रकाशन सन् 1936 में साहित्य मंडल से हुआ।

स्वातंत्रयोत्तर कालखंड की आत्मकथाएँ स्वतंत्रता के बाद आत्मकथा लेखन प्रचुर मात्रा में हुआ। स्वतन्त्रता से पूर्व जहाँ ख्याति प्राप्त महापुरूषों तथा अतुलनीय कार्य करने वाले लोगों ने ही आत्मकथा लिखी, वहीं स्वतंत्रता के बाद विभिन्न कार्य क्षेत्र से जुड़े व्यक्तियों तथा सामान्य जन नेताओं ने भी आत्मकथा लेखन किया। इस कारण आत्मकथा का क्षेत्र विस्तृत हो गया। वियोगी हरि जी ने अपनी आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह' लिखी, इसका प्रकाशन नई दिल्ली के सस्ता साहित्य मंडल ने किया। इस के बाद गणेश प्रसाद वर्मा की आत्मकथा 'मेरी जीवन गाथा' सन् 1949 में जैन ग्रंथमाला काशी से तथा इस के एक वर्ष के बाद विनोद शंकर व्यास की आत्मकथा 'उलझी स्मृतियॉ' सन् 1950 में पुस्तक मंदिर काशी से प्रकाशित हुई। यशपाल ने अपनी आत्मकथा 'सिंहावलोकन' लिखी जिसका प्रकाशन तीन भागों में हुआ। इसका प्रथम खण्ड 1951 में, द्वितीय खंड 1952 में तथा तृतीय खंड सन् 1955 में प्रकाशित हुआ। इस के बाद सन् 1951 में सत्यदेव परिव्राजक की आत्मकथा 'स्वतंत्रता की खोज में', अलगुराय शास्त्री की आत्मकथा 'मेरा जीवन' तथा अजित प्रसाद जैन की आत्मकथा 'अज्ञात जीवन' प्रकाशित हुई। सन् 1952 में शांति प्रिय द्विवेदी की आत्मकथा 'परिव्राजक की प्रजा' का प्रकाशन हुआ। इसी वर्ष पंजाब के प्रसिद्ध कवि और कथाकार देवेन्द्र सत्यार्थी की आत्मकथा का प्रकाशन 'चांद सूरज के वीरन' नामक शीर्षक से हुआ। इस समय की अन्य प्रमुख आत्मकथाएँ इस प्रकार हैं।

▶ स्वतंत्रता के बाद आत्मकथा लेखन के विस्तार वर्णन

भगवानदास केला - प्रमुख समीक्षक और साहित्यकार भगवानदास केला की आत्मकथा 'मेरा साहित्यिक जीवन' 1943 ई. में भारतीय ग्रंथमाला इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। इसके साथ ही कालिदास कपूर की आत्मकथा 'मुदर्रिस की राम कहानी' तथा गंगा प्रसाद उपाध्याय की आत्मकथा 'जीवन चक्र' भी प्रकाशित हुई। सेठ गोविंद दास -सेठ गोविंददास की आत्मकथा के तीन खंड हैं जिनका प्रकाशन 'आत्मनिरीक्षण' शीर्षक से सन् 1957 ई. में हुआ। सेठ गोविंददास की एक और आत्मकथा 'उथल-पुथल का युग' शीर्षक से प्रकाशित हुई। इसके बाद नरदेव शास्त्री की आत्मकथा 'आप बीती जग बीती' 1957 ई. में तथा धीरेन्द्र वर्मा की 'मेरी कालिज डायरी' सन् 1958 ई. में प्रकाशित हुई। हरिवंशराय बच्चन ने अपनी आत्मकथा को चार भागों में विभाजित किया है। प्रथम भाग- सन् 1963 से 1969 ई तक लिखित 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' प्रकाशन 1969 ई द्वितीय भाग- 'नीड़ का निर्माण फिर' प्रकाशन सन् 1970 ई. तृतीय भाग- 'बसेरे से दूर' प्रकाशन 1977 ई. चतुर्थ भाग- 'दशद्वार से सोपान तक' प्रकाशन 1985 ई.। हरिवंशराय बच्चन जी की आत्मकथा के प्रत्येक खंड के प्रतिवर्ष अनेक संस्करण निकले। इससे इस आत्मकथा की लोकप्रियता का परिचायक ही कहा जा सकता है। सन् 1976 में स्वामी सोमानंद की आत्मकथा हिन्दी और उर्दू में एक साथ 'जीवन की धूप छाँव' शीर्षक से प्रकाशित हुई। इसी वर्ष सरनाम सिंह अरुण की विश्रृंखल आत्मकथा ब मौत मेरे पास आई शीर्षक से प्रकाशित हुई।

▶ 1943 से 1985 के बीच प्रकाशित हुई आत्मकथाओं का उल्लेख किया गया है

सन् 1980 ई के बाद हिन्दी साहित्यकारों की मौलिक आत्मकथाएँ- इसमें साहित्य जगत की महत्वपूर्ण आत्मकथाओं का उल्लेख होता है। मोहन राकेश की 'समय सारथी', ब्रजगोपाल दास अग्रवाल की 'नदिया से सागर तक' तथा भगवती चरण वर्मा की 'ये सात और हम' आदि प्रमुख आत्मकथाएँ हैं। इसके अलावा भीष्म साहनी की 'आज के अतीत', कृष्णा सोबती की 'हम

▶ 1980 के बाद हिन्दी साहित्यकारों द्वारा लिखी गई महत्वपूर्ण मौलिक आत्मकथाएँ

हशमत' भाग- 1,2। राजेन्द्र यादव की 'मुड़-मुड़ के देखता हूँ', ज्ञानरंजन की 'कबाड़खाना', डॉ. कर्ण सिह की 'आत्मकथा', ज्ञानचंद जैन की 'कथाशेष', जाबिर हुसैन की 'अतीत का चेहरा', वृदावन लाल वर्मा की 'अपनी कहानी', मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुंडलि बसै', काशीनाथ सिंह की 'याद हो कि न हो', विजयराजे सिंधिया की 'राजपथ से लोकपथ' पर आदि अनेक आत्मकथाएँ हिन्दी साहित्य में उपलब्ध हैं। इनसे हिन्दी आत्मकथा साहित्य समृद्ध ही हुआ है।

हिन्दी आत्मकथा के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करने से पता चलता है कि हिन्दी साहित्य की आत्मकथा अपेक्षाकृत एक नई विधा है। जिस का उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है। आज भी यह विधा विकासशील अवस्था में है। हिन्दी आत्मकथा के विकास में हिन्दी साहित्यकारों का भी विशेष योगदान है। जिस में प्रमुख रूप से राहुल सांकृत्यायन, बाबू श्यामसुंदर दास, सेठ गोविंददास, यशपाल तथा पाण्डेय बैचेन शर्मा 'उग्र' का नाम लिया जाता है। बीसवीं सदी में मराठी दलित आत्मकथाएँ लिखी गईं। जो भाषा, शैली तथा विचार की दृष्टि से उपर्युक्त आत्मकथा से भिन्न थीं। इसके बाद मराठी से हिन्दी में अनूदित आत्मकथाएँ प्रकाश में आई। परिणामस्वरूप हिन्दी में भी दलित आत्मकथाएँ लिखी गईं। हिन्दी दलित आत्मकथा लेखकों में मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, भगवानदास, कौशल्या बैसंत्री, सूरजपाल चैहान, माता प्रसाद तथा डी.आर.जाटव का नाम सम्मान से लिया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आत्मकथा हिन्दी गद्य की एक आधुनिक विधा है। जो निरंतर प्रगति के पथ पर है। आत्मकथा में लेखक अपने निजी जीवन से जुड़े अनुभवों, भावों, विचारों, तथा अनुभूति को देशकाल और युगीन परिवेश के समांतर ब्म्बि-प्रतिबिम्ब में कलात्मक एवं प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करता है।

▶ व्यक्तिगत अनुभवों को समाज और युग के संदर्भ में कलात्मकता से प्रस्तुत किया है

4.2.3.1 आत्मकथा की विशेषताएँ

1. आत्मविश्लेषण- आत्मकथा में लेखक ख़ुद का विश्लेषण करता है। अपनी अच्छाइयों और बुराइयों का विश्लेषण करता है। इसमें लेखक उन तथ्यों को भी उजागर करता है जिससे उसके जीवन में सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव पड़ा। आत्मकथा लेखन को काफी हिम्मत का काम माना जाता है। क्योंकि हर व्यक्ति में इतना साहस नहीं होता कि वह अपनी कमज़ोरियों को समाज के सामने रख सके, शायद इसीलिए हिन्दी में आत्मकथा लेखन का उद्भव काफी बाद में हुआ।

▶ अच्छाइयों और बुराइयों का विश्लेषण

2. आत्मालोचन- आत्मालोचन आत्मकथा की काफी महत्वपूर्ण विशेषता है। आत्मकथा लेखक ख़ुद को काफी करीब से देखता है। तथा अपने सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं का काफी निकटता से अवलोकन करता है। अपने जीवन की घटनाओं को काफी निकट से देखता है, जिन घटनाओं ने उसके जीवन को प्रभावित किया या उसके जीवन के विकास में योगदान दिया।

▶ सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं का काफी निकटता से अवलोकन करता है

3. लेखक का समाज से परिचय- आत्मकथा में लेखक का समाज से परिचय भी होता है। समाज लेखक की आत्मकथा को पढ़कर उसके जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। इससे समाज का लेखक के जीवन की उन घटनाओं और तथ्यों से परिचय होता है, जिससे समाज आज तक अनभिज्ञ था। इसमें बहुत बार वे बातें सामने आती हैं जिनके बारे में किसी को पता नहीं होता। इन बातों का परिचय आत्मकथा से ही होता है। आत्मकथाएँ बहुत बार

▶ भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणा और मार्गदर्शन का काम

समाज को प्रेरणा प्रदान करने का काम भी करती हैं। समाज जब उन महान व्यक्तियों की आत्मकथा पढ़ता है, जिन्होंने समाज के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर दिया या जिन्होंने तमाम संघर्षों के बाद अपने जीवन में सफलता पाई, इस प्रकार की आत्मकथाओं से समाज को प्रेरणा ही मिलती है, जो भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणा और मार्गदर्शन का काम करती हैं।

▶ जीवन में घटित घट नाओं का विवरण

4. घटनाओं का विवरण- आत्मकथा में लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं का विवरण भी प्रस्तुत करता है। उसके साथ जो घटनाएँ होती हैं, लेखक अपनी आत्मकथा में उसका सिलसिलेवार विवरण देता है। आत्मकथा उसके जीवन की घटनाओं को बयाँ करती है।

▶ वास्तविक जीवन से परिचय

5. वास्तविक जीवन से परिचय- आत्मकथा लेखक के जीवन से वास्तविक परिचय कराती है। क्योंकि उसमें उन बातों का भी विवरण होता है, जिन बातों से पाठक वर्ग अनभिज्ञ होता है। क्योंकि हर आदमी के जीवन में वे बातें होती हैं, जो बस उसी से संबंधित होती हैं। उन बातों को लेखक अपनी आत्मकथा में उकेरता है। इसलिए आत्मकथा पाठक वर्ग को लेखक के वास्तविक जीवन से परिचय कराती है।

4.2.3.2 आत्मकथा के तत्व

किसी भी विधा को समझने के लिए उसके तत्वों को समझना आवश्यक है। जिसके आधार पर हम उसको अन्य विधाओं से अलग कर सकें। आत्मकथा की परिभाषाओं से उसकी विधा का पता चलता है। पर इसको और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम आत्मकथा के तत्वों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे। विभिन्न विद्वानों ने आत्मकथा के अनेक तत्व बतलाए हैं, हम डॉ. शान्तिखन्ना के द्वारा बताये गये आत्मकथा के तत्वों पर चर्चा कर रहे हैं। डॉ. शान्तिखन्ना ने आत्मकथा के प्रमुख तत्व बताये हैं।

▶ आत्मकथा के प्रमुख तत्व

1. वर्ण्य विषय
2. चरित्र-चित्रण
3. देशकाल
4. उद्देश्य
5. भाषा-शैली

1. वर्ण्य विषय- आत्मकथा में इस तत्व को प्रमुख रूप में स्वीकार किया गया है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं और विषयों का वर्णन करता है। लेखक द्वारा आत्मकथा में वर्णित विषय में सत्यता का होना जरूरी है। आत्मकथा लेखक का वर्ण्य विषय काल्पनिक नहीं वरन यथार्थ पर आधारित होना चाहिए। आत्मकथा लेखक अपने जीवन की घटनाओं के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी वर्णन करता है। आत्मकथा लेखक को इस बात का भी ध्यान रखना होता है कि आत्मकथा में अनावश्यक आत्मविस्तार तथा शील संकोच न आने पाए। अतः आत्मकथा के वर्ण्य विषय में सच्चाई और ईमानदारी का होना आवश्यक है। अन्य महत्वपूर्ण गुण जो कि वर्ण्य विषय को रोचक बनाता है वह है संक्षिप्तता। आवश्यकता से अधिक विस्तार विषय को नीरस बना देता है। अतः आत्मकथा में रोचकता, स्पष्टवादिता, यथार्थता, सत्यता, स्वभाविकता एवं संक्षिप्तता होनी चाहिए जिससे आत्मकथा श्रेष्ठ होती है।

2. चरित्र-चित्रण- आत्मकथा साहित्य का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है चरित्र-चित्रण। इसका सम्बन्ध पात्रों से होता है। आत्मकथा लेखन में आत्मकथाकार ही खुद प्रमुख पात्र होता है।

अतः आत्मकथा लेखक खुद के चरित्र के सभी पक्षों का विश्लेषण भी आत्मकथा में करता है। आत्मकथाकार के लिए यह नितांत आवश्यक है कि कि वह निष्पक्ष एवं निर्दोष भाव से आत्मविवेचन करें। स्पष्ट है कि आत्मकथाकार को गुण दोषों का विवेचन सत्यता के धरातल पर करना चाहिए। उसके आत्मप्रकाशन में किसी तरह का मोह नहीं होना चाहिए। इस तरह की आत्मकथा ही सच्ची आत्मकथा है। प्रायः आत्मकथाकार अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए उन व्यक्तियों का भी वर्णन करता है जिनका उसके जीवन पर प्रभाव पड़ा अथवा जिन व्यक्तियों से उसका संबंध रहा है। बच्चन ने अपनी आत्मकथा में अपने पिता जी के स्वभाव का भी वर्णन किया हैं। उनके सम्बन्ध में कहा है- मेरे पिता की अपने लड़कों के बारे में कोई महत्वाकांक्षा न थी। मेरे मैट्रिकुलेशन में फेल होने के बाद अगर उनकी चलती तो मुझे नौकरी करने को बाध्य कर देते। स्पष्ट है कि लेखक प्रसंगानुसार उन सभी लोगों का वर्णन करता है जिनका उ से सम्बन्ध रहा है। जिस से उस के खुद के व्यक्तित्व को समझने में सहायता मिलती है।

▶ चरित्र के सभी पक्षों का विश्लेषण

▶ देश काल का असर प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ता है

4. देशकाल- आत्मकथा में सजीवता लाने के लिए इसमें देशकाल का होना आवश्यक माना गया है। देश काल का असर प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ता है। इससे उसकी उन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक प्रभाव क्षेत्र का पता चलता है जिससे वह आता है। इस प्रकार गौण रूप में तत्कालीन परिस्थितियों का पता भी चलता है।

▶ संप्रेषणीयता के लिए भाषा शैली का अच्छा होना

5. भाषा-शैली- आत्मकथा में भाषा शैली का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। संप्रेषणीयता के लिए भाषा शैली का अच्छा होना बहुत जरूरी है। शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। इसमें असामान्य अधिकार के अभाव में लेखक की सफलता संभव नहीं। आत्मकथा की शैली में प्रभावोत्पादकता का होना अति आवश्यक है। इसीके कारण आत्मकथा पाठक के मन में अपना प्रभाव डाल पाती है। इसलिए लेखक को निःसंकोच रूप से अपने जीवन का वर्णन करना चाहिए जिसका पाठक के ऊपर प्रभाव पड़ता है। लेखक को जीवन के उत्थान-पतन तथा गुण-दोषों का विवेचन इस प्रकार करना चाहिए कि वह पाठक को रुचिकर लगे।

लेखक को अपने समस्त जीवन का वर्णन इस प्रकार करना चाहिए जिससे अनावश्यक विस्तार भी न हो। और साथ में गठित भी हो। क्रमानुसार वर्णन अधिक रोचक होता है। आत्मकथाएँ विभिन्न शैलियों में लिखी जाती हैं। ये शैलियाँ आत्मनिवेदनात्मक, भावात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक, ऐतिहासिक तथा हास्य प्रधान आदि हैं। अतः कहा जा सकता है कि आत्मकथा में प्रभावोत्पादकता, लाघवता, निःसंकोच आत्मविश्लेषण, सुसंगठितता तथा स्पष्ट ता आदि गुण होना चाहिए। आत्मकथा में जहाँ तक भाषा की बात है, भाषा भावाभिव्यक्ति का साधन होती है। आत्मकथा में भाषा को भावानुकूल और विषयानुकूल होना चाहिए। लेखक की भाषा को शुद्ध, स्पष्ट, परिष्कृत और परिमार्जित होना चाहिए जिससे वह पाठकों को प्रभावित कर सकता है। भाषा को श्रेष्ठ बनाने के लिए शब्दों का चयन विषय एवं भावों के अनुकूल होना चाहिए, तथा भाषा का प्रयोग पात्रों एवं परिवेश के अनुरूप होना चाहिए। जिसे आत्मकथा पाठकों को प्रभावित करती है।

▶ भाषा भावानुकूल और विषयानुकूल होनी चाहिए

4.2.3.3 जीवनी का उद्‌भव और विकास

हिन्दी गद्य की विधाओं में जीवनी का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी व्यक्ति विशेष के जीवन-

वृत्तांत को 'जीवनी' कहते हैं। यह अंग्रेजी के 'बायोग्राफी' का पर्याय है। जीवनी में किसी चरित्र नायक के आंतरिक-बाह्य दोनों प्रकार की घटनाओं और गुणों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है। पाश्चात्य विद्वान शिप्ले 'जीवनी' के सम्बन्ध में अपना मत देते हुए कहते हैं- "जीवनी वह साहित्यिक विधा है, जिसमें नायक के सम्पूर्ण जीवनी अथवा यथेष्ट भाग की चर्चा की गई हो और जो आदर्श रूप में एक इतिहास है।" जीवनी किसी व्यक्ति विशेष के जीवन चरित्र का ऐतिहासिक अभिलेख है तो दूसरी ओर वह साहित्यिक सौन्दर्य के रूप में उनका प्रस्तुतिकरण भी है। बाबू गुलाबराय लिखते हैं- "जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं वरन चित्रण है। वह साहित्य की विधा है और उसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण हैं। वह मनुष्य के अन्तर और बाह्य स्वरूप का कलात्मक निरूपण है।"

▶ व्यक्ति विशेष के जीवन चरित्र का ऐतिहासिक अभिलेख

जिस किसी व्यक्ति का जीवन लिखा जा रहा है, उसका वृत्तांत, तिथि, घटनाक्रम आदि की दृष्टि से परिपूर्ण होना आवश्यक है। घर-परिवार, संस्था, देशकाल, विविध प्रकार के कार्यकलाप आदि का विवरण भी इसमें समाविष्ट रहता है। जीवनी में कल्पना का स्थान नहीं होता है। प्राचीन हिन्दी साहित्य में गोस्वामी गोकुलनाथ की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा नाभादास की 'भक्तमाल' को प्रारम्भिक जीवनियों के रूप में जाना जाता है। किन्तु वास्तव में जीवनी लेखन की परम्परा भारतेन्दु युग से मानी जाती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित- 'चरितावली', 'बादशाह-दर्पण', 'उदयपुरोदय' और 'बूंदी का राजवंश', जीवनियाँ हैं। आधुनिक संतों और महाकाव्यों पर लिखित प्रमुख जीवनियों में राजेन्द्र प्रसाद कृत 'चम्पारन में महात्मा गांधी' (1919 ई०) की गणना की जा सकती है। घनश्याम दास बिड़ला कृत 'बापू' (1940 ई.), सुशीला नायर की 'बापू के कारावास की कहानी' (1949), जैनेन्द्र की 'अकालपुरुष गाँधी' (1968 ई०), हंसराज रहबर कृत 'योद्धा सन्यासी विवेकानन्द', 'राष्ट्र नायक गुरू गोविन्द सिंह', डॉ. शिवप्रसाद सिंह की 'उत्तरयोगी: श्री अरविन्द' (1972), अमृतलाल नागर की 'चैतन्य महाप्रभू' (1975)।

▶ जीवनी लेखन की परम्परा

राजनीतिक जीवनियों में मन्मथनाथ गुप्त की 'चन्द्रशेखर आजाद' (1938), रामवृक्ष बेनीपुरी की 'जयप्रकाश नारायण' (1951 ई.), बलराज मधोक की 'डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी' (1958 ई.), डॉ. चन्द्रशेखर की 'जीवन यात्रा' (ज्ञानी जैल सिंह की जीवनी), गोपीनाथ दीक्षित की 'जवाहर लाल नेहरू' (1937 ई.) आदि प्रकाशित हुईं। साहित्यिक जीवनियों में ब्रजरत्नदास कृत 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (1948 ई.), चन्द्रशेखर शुक्ल की 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जीवन और कृतित्व' (1963 ई.), बाबू राधाकृष्ण दास की 'भारतेन्दु बाबू का जीवन चरित्र' (1940 ई.), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'बाबू राधाकृष्ण दास' (1913 ई.), शिवरानी देवी की 'प्रेमचन्द घर में' (1944 ई.), अमृतराय की 'कलम का सिपाही' (1962 ई.), मदन गोपाल की 'कलम का मजदूर' (1964 ई.), डॉ. राम विलास शर्मा की 'निराला की साहित्य साधना', विष्णु प्रभाकर 'आवारा मसीहा' (1074 ई.) शांति जोशी की 'सुमित्रानन्दन पंत जीवन और साहित्य', शिवसागर मिश्र कृत 'दिनकर एक सहज पुरुष', शोभाकान्त की 'ठक्कन से नागार्जुन' (नागार्जुन की जीवनी 1991 ई.), आदि सामने आयी। विद्रोही कवि नजरूल इस्लाम ने नयी पीढ़ी के प्रगतिशील युवकों को बहुत प्रभावित किया है। विष्णुशर्मा ने 'अग्निसेतु' (1976 ई.) नाम से उनकी एक प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत की है।

▶ प्रमुख रचनाकार

डॉ. तेजबहादुर चौधरी की- 'मेरे बड़े भाई शमशेर जी' (1995 ई.), कमला सांकृत्यायन द्वारा लिखित राहुल की जीवनी 'महामानव महापंडित' (1995 ई०), सुलोचना रांगेय द्वारा लिखित

रांगेय राघव की जीवनी- 'रांगेय राघवः एक अंतरंग परिचय' (1997 ई.), मदन मोहन ठाकौर द्वारा लिखित राजेन्द्र यादव की जीवनी 'राजेन्द्र यादव मार्फत मदन मोहन ठाकौर (1999 ई.), बिन्दु अग्रवाल द्वारा लिखित भारतभूषण अग्रवाल की संस्मरणात्मक जीवनी- 'स्मृति के झरोखे से' (1999 ई.), ज्ञानचन्द्र जैन की संस्मरणात्मक जीवनकथा- 'कथा-शेष' (1999 ई.), महिमा मेहता की 'उत्सव-पुरूष नरेश मेहता' (2003 ई.), कुमुद नागर की 'वटवृक्ष की छाया में' (अमृतलाल नागर की जीवनी, 2006 ई.), गायत्री कमलेश्वर की 'मेरे हमसफर' (2005 ई.), डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र- 'कल्पतरू की उत्सव लीला' (रामकृष्ण परमहंस की जीवनी 2005 ई.) नरेन्द्र मोहन की 'मंटो जिंदा है' (2012), पुरुषोत्तम अग्रवाल- 'कोलाजःअशोक वाजपेयी' (2012 ई.), अखिलेश की मकबूल (2011) आदि प्रमुख हैं। जीवनी विधा मुख्यतः आधुनिक साहित्य की देन है। भारतेन्दु युग से लेकर आज तक यह विधा निरन्तर विकसित हो रही है। ये जीवनियाँ हमें प्रेरणा प्रदान करती हैं। राष्ट्र और समाज के विकास के लिए जीवनी परक साहित्य का भी योगदान उल्लेखनीय है।

▶ जीवनियाँ हमें प्रेरणा प्रदान करती है

आत्मकथा और जीवनी में अंतर

जीवनी किसी व्यक्ति के जीवन का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखा गया लिखित विवरण है। इस मामले में, विषय, यानी जिस व्यक्ति के बारे में जीवनी लिखी गई है, वह जीवनी का लेखक या वर्णनकर्ता नहीं है। आमतौर पर, किसी जीवनी का लेखक और वर्णनकर्ता, जिसे जीवनी लेखक भी कहा जाता है, वह व्यक्ति होता है जो विषय के जीवन में बहुत रुचि लेता है। जीवनी आम तौर पर तीसरे व्यक्ति की कथात्मक आवाज़ में लिखी जाती है। विषय और उनके अनुभवों से यह दूरी जीवनीकार को विषय के अनुभवों को उनके जीवन के बड़े संदर्भ में देखने की अनुमति देती है, उन्हें अन्य अनुभवों से तुलना करके या विषय के व्यक्तित्व और जीवन पर कुछ अनुभवों के प्रभाव का विश्लेषण करके। अब जब हम जान गए हैं कि जीवनी क्या है, आत्मकथा क्या है? संकेत 'ऑटो' शब्द में निहित है, जो एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है 'स्वयं'। यह सही है! आत्मकथा एक स्व-लिखित जीवनी है।

▶ तीसरे व्यक्ति की कथात्मक आवाज़

आत्मकथा में जीवनी का विषय और लेखक एक ही व्यक्ति होते हैं। इसलिए, एक आत्मकथा आम तौर पर तब होती है जब लेखक अपनी खुद की जीवन कहानी बता रहा होता है, जिस तरह से उन्होंने इसे स्वयं अनुभव किया है। वे प्रथम-पुरुष परिप्रेक्ष्य में लिखे गए हैं। यहाँ एक तालिका दी गई है जो जीवनी और आत्मकथा के बीच अंतर को सारांशित करती है।

जीवनी	आत्मकथा
जीवनी किसी व्यक्ति के जीवन का किसी और द्वारा लिखा गया लिखित विवरण।	किसी व्यक्ति के जीवन का स्वयं उस व्यक्ति द्वारा लिखा गया लिखित विवरण।
जीवनी का विषय उसका लेखक नहीं होता।	आत्मकथा का विषय उसका लेखक भी होता है।
तीसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण से लिखा गया।	पहले व्यक्ति के दृष्टिकोण से लिखा गया।

▶ स्वयं उस व्यक्ति द्वारा लिखा गया लिखित विवरण

4.2.5 मेरा जीवन - आत्मकथा अंश - प्रेमचंद

प्रस्तुत आत्मकथांश में प्रेमचंद जी ने अपने जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन किया है। वे अपने पूर्व जीवन को याद करते हुए कहते हैं कि 'पिता डाकखाने में क्लर्क थे। माता मर गई। एक बड़ी बहन थी। उस समय पिताजी शायद 20 रुपए वेतन पाते थे। 40 रुपए तक

वेतन पहुँचते-पहुँचते उनकी मृत्यु हो गई। मृत्यु से पहले मेरी शादी करवा दी।' पंद्रह साल की उम्र में ही प्रेमचंद की शादी करवा दी थी। इतनी छोटी उम्र में प्रेमचंद जी पर अपने परिवार के भरण-पोषण का जिम्मा आ गया था। विमाता, उनके दो बालक, पत्नी और प्रेमचंद जी स्वयं का जिम्मा उनपर आ गया था। प्रेमचंद जी अपनी आर्थिक हालत को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'आमदनी एक पैसे की नहीं थी। उनका अरमान था वकील बनने और एम.ए. करने का। नौकरी उस जमाने में भी इतनी ही दुष्प्राप्य थी, जितनी अब है।' प्रेमचंद जी को आगे पढ़ने की धुन थी, परंतु उनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी। जब प्रेमचंद जी क्वींस स्कूल में पढ़ते थे, उस समय उनके पैरों में जूते तक नहीं थे। हेडमास्टर ने स्कूल फीस माफ कर दी थी। ये ट्यूशन लेकर अपनी पढाई का खर्चा वहन करने लगे थे। मैट्रिकुलेशन वे तो किसी तरह से पास हो गए, परंतु सेकंड डिवीजन से पास हो गए।

▶ कठिन वचपन और आर्थिक कठिनाई से परिवार का पोषण और शिक्षा प्राप्त करने की कोशिशों का वर्णन किया

क्वीन्स कॉलेज में प्रवेश लेने की आशा न रही, क्योंकि वहाँ पर अव्वल दर्जे वालों की फीस माफ होती थी। इसीलिए प्रेमचंद जी ने नए-नए खुले हिन्दू कॉलेज में दाखिला करवाने का निश्चय किया और यहाँ पर उन्हें दाखिला तो मिल गया, परंतु फीस माफ नहीं हो रही थी। इसके लिए किसी की सिफारशी चिट्ठी की आवश्यकता थी। गाँव से स्कूल काफी दूर था और वहाँ पर इनका परिचित कोई नहीं था। बहुत प्रयास करने पर ठाकुर इंद्रनारायण सिंह जो कि हिन्दू कॉलेज की प्रबंध समिति सभा में थे, उनके पास गिड़गिड़ाने पर किसी तरह से चिट्ठी मिल गई। प्रेमचंद जी उस समय बहुत आनंदित हुए और अपने घर वापस आए। परंतु घर आने के बाद ही बीमार पड़ गए। दो सप्ताह तक कॉलेज नहीं जा पाए। जब वे बीमारी से स्वस्थ हो गए, तब चिट्ठी लेकर कॉलेज पहुँचे। वहाँ पर उनकी अलग-अलग विषय शिक्षकों से परीक्षाएँ ली गई। यहाँ पर प्रेमचंद जी बताते हैं कि उन्हें बीजगणित सबसे ज्यादा कठिन लगता था और यह विषय इंटरमीडिएट के लिए अनिवार्य था। वे दो बार गणित में फेल हो गए थे। तंग आकर उन्होंने परीक्षा देना ही छोड़ दिया था। दस-बारह साल के बाद जब गणित की परीक्षा में अख्तियारी हो गई। तब इन्होंने दूसरे विषय लेकर आसानी से पास कर लिया। गणित में पास होने के लिए उन्होंने शहर में रहकर तैयारी की थी। यहाँ पर वे अपना खर्चा चलाने के लिए ट्रयटर का काम करते थे।

▶ क्वींस कॉलेज में प्रवेश नहीं मिलने के बाद हिन्दू कॉलेज में दाखिला लिया

इससे जितने पैसे उन्हें मिलते थे, उन्ही पैसों से वे खुद के खर्चे के साथ ही घर खर्चे के लिए भी पैसे भेज देते थे। एक समय इतना खराब आया था कि उनके पास खाने के भी पैसे नहीं थे। एक-एक पैसे का चबेना खाकर उन्हें गुज़ारा करना पड़ा था। फिर वे गणित की पढाई के लिए खरीदी गई किताब बेचने चले गए और एक रुपए में किताब बेचकर निकलते समय एक सज्जन ने उन्हें नौकरी के लिए पूछा। इन्हीं सज्जन की ओर से उन्हें अध्यापक की नौकरी मिल गई। यह सज्जन स्कूल के हेडमास्टर थे। इन्हें सहकारी अध्यापक की जरूरत थी। इसीलिए प्रेमचंद जी को अध्यापक की नौकरी मिल गई।

▶ प्रेमचंद जी ने अपने खर्चों के लिए एक रुपए में गणित की किताब बेचीं और बाद में एक सज्जन हेडमास्टर ने सहकारी अध्यापक की नौकरी दी

आगे के प्रसंग में वे बताते हैं कि उन्होंने 1907 में गल्पें लिखनी शुरु की थी। डॉक्टर रविंद्रनाथ की कई गल्पें उन्होंने अंग्रेजी में पढ़ी थीं और उनका उर्दू में अनुवाद किया था। 1901 में ही उन्होंने उपन्यास लिखना शुरु किया था। उनका एक उपन्यास 1902 में निकला था। उनकी कहानी 'संसार का अनमोल रत्न' 1907 में 'जमाना' पत्रिका में छपी थी। उनकी पाँच कहानियों का उर्दू कहानी संग्रह 'सोजे वतन नाम से 1909 में छप गया था। इस वक्त प्रेमचंद जी 'नवाबराय' नाम से लिखते थे। इस संग्रह में राष्ट्रपरक भावनाएँ भरी थीं। जब यह

संग्रह प्रकाशित हुआ, तब वंग-भंग आंदोलन चल रहा था। अतः अंग्रेजी प्रशासन ने इस संग्रह को जब्त करने का फैसला किया और इसके लेखक को पकड़ने का आदेश जारी कर दिया। उस वक्त प्रेमचंद जी शिक्षा विभाग में डिप्टी इंस्पेक्टर के रूप में अमीरपुर जिले में तैनात थे। पुस्तक के छपने के छह महीने बाद ही जिलाधीश ने इन्हें जाँच-पड़ताल के लिए बुलाया। ये रातों-रात बैलगाड़ी से तीस-चालीस मील दूरी तय करके जिलाधीश से मिलने चले गए। वहाँ पर इनसे जवाब-तलब किया गया। पुस्तक की सारी प्रतियाँ जब्त की गई और हिदायत दी गई कि बिना अनुमति के वे कोई किताब नहीं लिखेंगे। डिप्टी इंस्पेक्टर के स्नेह की खातिर इस मामले से प्रेमचंद जी सजा से बच गए थे। जब प्रेमचंद जी हमीरपुर में थे, तो उन्हें पेचिश की बीमारी जड़ गई। यह बीमारी बढ़ती ही जा रही थी। इस बीमारी से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने तरह-तरह की दवाईयां खाई, कई बार कानपुर आकर भी दवा-पानी किया, कई पथ्य किए, परंतु फर्क नहीं पड़ा। तब इन्होंने तबादला करवा दिया। ये चाहते थे कि इन्हें स्हेलखंड में तैनाती मिल जाए, परंतु उनकी तैनाती गया-बस्ती जिले के तराई क्षेत्र में हुई। यहाँ पर भी उन्होंने बीमारी पर कई इलाज किए, परंतु बीमारी जड़ से ठीक नहीं हुई। अतः उन्होंने दौरे की नौकरी छोड़ दी और बस्ती में ही एक स्कूल में स्कूल मास्टर हो गए। यहाँ से फिर वे गोरखपुर पहुँच गए। गोरखपुर में उनका परिचय महावीर प्रसाद पोद्दार जी से हुआ और इनकी प्रेरणा से उन्होंने फिर कई गल्प लिखी, 'सेवासदन' नामक उपन्यास की रचना की। यहीं पर ही प्रेमचंद जी ने प्राइवेट बी.ए. भी पास किया।

▶ 'सोजे वतन' पुस्तक की जब्त होने के बाद नौकरी छोड़कर गोरखपुर में फिर से लेखन जारी

इसके बाद उन्होंने 'प्रेमाश्रम' उपन्यास लिखा और गल्पें लिखना भी जारी रखा। उनकी बीमारी दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही थी। वे काफी अशक्त हो गए थे। उन्हें महसूस हो रहा था कि अब वे ज्यादा दिन जीवित नहीं रह पाएँगे। 1921 में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन छेड़ा था। इस समय गांधीजी ने गोरखपुर का दौरा किया था। उनकी सभा के लिए लाखों की तादाद में भीड़ उमड़ी थी। यहाँ पर गांधीजी के दर्शन से प्रेमचंद जी खासे प्रभावित एवं प्रेरित हुए। इसी के चलते उन्होंने अपनी बीस साल की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और पोद्दार जी के साथ देहात में आकर प्रचार का कार्य शुरू कर दिया। यहाँ पर वे चर्खे बनवाने लगे। यहाँ पर उनकी पेचिश बीमारी ठीक होने लगी। फिर वे कशी चले आए और अपने देहात में बैठकर कुछ प्रचार और साहित्य सेवा में जीवन को सार्थक करने लगे। वे कहते हैं कि 'गुलामी से मुक्त होते ही मैं नौ साल के जीर्ण रोग से मुक्त हो गया। इस अनुभव ने मुझे कट्टर भाग्यवादी बना दिया है। अब मेरा दृढ़ विश्वास है कि भगवान की जो इच्छा होती है, वही होता है और मनुष्य का उद्योग भी इच्छा के बिना सफल नहीं होता।' इस तरह से प्रेमचंद जी ने अपनी आपबीती बताई है।

▶ गांधीजी से प्रेरित होकर नौकरी छोड़ दी, बीमारी में सुधार के बाद ग्रामीण प्रचार और साहित्य सेवा में संलग्न हो गए

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

जीवनी विधा मुख्यतः आधुनिक साहित्य की देन है। भारतेन्दु युग से लेकर आज तक यह विधा निरन्तर विकसित हो रही है। ये जीवनियाँ हमें प्रेरणा प्रदान करती है। राष्ट्र और समाज के विकास के लिए जीवनी परक साहित्य का भी योगदान उल्लेखनीय है। जीवनी पढ़ते समय पाठकों को यह एहसास होना चाहिए कि वे अपने विषय के जीवन को फिर से जी रहे हैं। इसके लिए जीवनीकार से बहुत अधिक विवरण और सटीकता की आवश्यकता होती है, जिसे अपने विषय के बारे में पर्याप्त जानकारी एकत्र करनी चाहिए ताकि उनके जीवन की पूरी तस्वीर पेश की जा सके। जीवनीकार अक्सर विषय के जीवन के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी देने के लिए प्राथमिक स्रोतों जैसे कि विषय और उनके परिवार और दोस्तों के साथ साक्षात्कार का उपयोग करते हैं। हालाँकि, ऐसे मामलों में जहाँ विषय मर चुका है, जीवनीकार उनकी डायरी, संस्मरण या यहाँ तक कि उनके बारे में समाचार कहानियों और लेखों जैसे द्वितीयक स्रोतों का उपयोग कर सकते हैं।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. आत्मकथा के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. आत्मकथा उद्‌भव और विकास के बारे में टिप्पणी लिखिए।
3. आत्मकथा साहित्य की विशेषताएँ लिखिए।
4. जीवनी उद्‌भव और विकास को स्पष्ट कीजिए।
5. आत्मकथा और जीवनी का अंतर व्यक्त कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियां - सं. नलिन विलोचन शर्मा।
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास -डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी।
3. हिन्दी का दलित आत्मकथा साहित्य - डॉ. संजय मुनेश्वर

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - डॉ. इन्द्रनाथ मदान।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
6. 'हिन्दी का आत्मकथा साहित्य' - डॉ. विश्वबन्धुशास्त्री

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 3

यात्रा विवरण सामान्य परिचय (चेरापुंजी से आया हूँ - प्रदीप पंत - विस्तृत अध्ययन)

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- यात्रा विवरण का परिचय प्राप्त करता है
- यात्रा साहित्य के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- प्रमुख यात्रा विवरण साहित्यकार के बारे में अवगत होता है
- कुछ यात्रा विवरण साहित्य को समझता है

Background / पृष्ठभूमि

मनुष्य जातियों का इतिहास उनकी यायावरी प्रवृत्ति से सम्बद्ध है। सम्भवतः यह मानव की एक मूल प्रवृत्ति है। परंतु उसके सौन्दर्यबोध के विकास के साथ चतुर्दिक फैले हुए जगत का आकर्षण भी उसके लिए बढ़ता गया है। यहाँ के देशों में विविधता है,ऋतुओं में परिवर्तन होता है और साथ-साथ ही प्रकृति के रूपों में विभिन्नता और सौन्दर्य का वैचित्र्य है। इसके अतिरिक्त सर्जन में स्वतः एक गति है, जिसके साथ ताल मिलाकर चलना स्वतः एक उल्लास है। इस प्रकार सौन्दर्यबोध की दृष्टि से उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा साहित्य कहा जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

पॉडकास्ट, स्लाइड शो, बिम्बविधायिनी कल्पना-शक्ति, बन्धु-बान्धव

Discussion / चर्चा

यात्रा वृतांत किसी व्यक्ति की यात्रा के अनुभवों का सच्चा विवरण है, जो आमतौर पर भूत काल और प्रथम पुरुष में बताया जाता है। माना जाता है कि यात्रा वृतांत शब्द दो शब्दों यात्रा और एकालाप के संयोजन से आया है। बदले में, मोनोलॉग शब्द ग्रीक शब्द मोनोस (अकेला) और लोगो (भाषण, शब्द) से आया है। एक यात्रा वृत्तात, अपने सबसे बुनियादी रूप में, किसी व्यक्ति की यात्रा के अनुभवों का मौखिक या लिखित विवरण होता है, जो कुछ सत्यता के साथ प्रकट होता है। क्योंकि यात्रा वृत्तांत का उद्देश्य किसी व्यक्ति की यात्रा के अनुभवों का सच्चा विवरण देना होता है, यात्रा के दौरान यात्री बाहरी दुनिया में क्या देखता है, सुनता है, चखता है, सूंघता है और महसूस करता है, इसका वर्णन आवश्यक घटक हैं। वेशक, विचार, भावनाएँ और प्रतिबिंब हमारी यात्रा के अनुभव के महत्वपूर्ण हिस्से हैं। इसलिए, किसी यात्री की आंतरिक दुनिया का वर्णन यात्रा वृत्तांत में अप्रासंगिक नहीं है।

- यात्रा के अनुभवों का सच्चा विवरण

4.3.1 यात्रा विवरण सामान्य परिचय

इतिहास, समाज और संस्कृति पर नोट्स और टिप्पणियाँ भी यात्रा वृत्तांत की सामान्य विशेषताएँ हैं, क्योंकि जब हम यात्रा करते हैं तो हम निश्चित रूप से दुनिया के बारे में सीखते हैं। एक यात्रा वृत्तांत एक किताब, एक ब्लॉग, एक डायरी या पत्रिका, एक लेख या निबंध, एक पॉडकास्ट, एक व्याख्यान, एक वर्णित स्लाइड शो, या रचना के लगभग हर लिखित या मौखिक रूप में मौजूद हो सकता है। 'यात्रा ब्लॉग' के रूप में ऑनलाइन यात्रा वृत्तांत के कई उदाहरण मौजूद हैं। हालाँकि, सभी यात्रा ब्लॉग शब्द के शुद्ध अर्थ में यात्रा वृत्तांत नहीं हैं क्योंकि उनके कुछ लेखक यात्रा के बारे में सुझाव, सलाह या व्यावहारिक जानकारी प्रदान करके इंटरनेट खोज ट्रैफ़िक प्राप्त करने की तुलना में यात्रा के अपने अनुभवों के व्यक्तिगत विवरण देने में कम चिंतित हैं।

▶ जब हम यात्रा करते हैं तो हम निश्चित रूप से दुनिया के बारे में सीखते हैं

उदाहरण के लिए, वे किसी विशेष गंतव्य में 'मैंने जो किया' के बजाय 'सबसे अच्छी चीजें करने के लिए' प्रस्तुत करने का दावा करते हैं। हालाँकि, कुछ यात्रा ब्लॉग हाइब्रिड यात्रा वृतांत प्रकाशित करते हैं जो उनकी यात्रा सेवाओं के विपणन के लिए सुझाव और सलाह भी प्रदान करते हैं। भारत में यात्रा-साहित्य की परम्परा अत्यधिक प्राचीन है। वैदिक वाङ्मय में यात्राओं के उल्लेख मिलते हैं। 'ऐतरेय ब्रह्मण' का 'चरैवेति मंत्र' इसका प्रमाण है। रामायण, महाभारत, संस्कृत साहित्य और जातक कथाओं में यात्राओं के पर्याप्त विवरण मिलते हैं। हमारे प्राचीन भारतीयों ने भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से यात्राएँ कर राष्ट्रीय जीवन का विकास किया। विदेशी यात्रियों में ह्वेनसांग, इब्नबतूता, ट्रैवरनियर, फाह्यान आदि ने देश के अलग-अलग भागों में घूमकर जो अनुभव किये, उन्हें लिपिबद्ध किया था। आज उनके वे अनुभव प्राचीन ज्ञान के अत्यधिक उपयोगी भण्डार हैं। इस प्रकार बहुत पहले से ही यात्रा साहित्य की दो परम्पराएँ प्राप्त होती हैं- एक वह जो साहित्य के क्षेत्र में उपलब्ध है और दूसरी वह जो इतिहास की धरोहर बनी हुई है।

▶ यात्रा-साहित्य की परम्परा अत्यधिक प्राचीन है

'यात्रा' शब्द की निष्पत्ति 'या अ ष्टुन्' धातु एवं प्रत्यय से हुई है। यात्रा का वास्तविक अर्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की क्रिया है। मानव अपनी यायावरी वृत्ति तथा आदिम संस्कारों द्वारा उसके प्रति अपनी जिज्ञासा के कारण यात्रा करता है। हिन्दी गद्य साहित्य की इस नवीन विधा में रचनाकारों ने भ्रमण और पर्यटन के सुन्दर अनुभव तथा उल्लासपूर्ण क्षणों को अपने शब्दों में बाँधने का सफल प्रयास किया है। लेखकों की यही प्रवृत्ति यात्रा-साहित्य कही जाती है। महादेवी वर्मा ने यात्रा साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है 'संगीत थम जाने पर गायक जैसे भैरवी के वाक्य और अपने गीत के संगीत पर विचार करने लगता है, वैसे ही यात्री अपनी यात्रा के संस्मरण दुहराता है। स्मृति के प्रकाश में अतीतकालीन यात्रा को सजीव कर देने का तत्व इस वर्णन को साहित्य का रूप प्रदान करता है। पर्यटक के साथ पाठक भी अतीत में जी उठता है।' डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने यात्रा-साहित्य की सर्जना प्रक्रिया पर विचार करते हुए लिखा है- "यात्रा-वृत्तान्तों में देश-विदेश के प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन-सन्दर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य-चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के प्रतीक अनेक वस्तु-चित्र यायावर रचनाकार के मानस में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक उष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी बिम्बविधायिनी कल्पना-शक्ति से उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को तुष्ट कर देता है।"

▶ कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के प्रतीक

यात्रा के समय लेखक प्रत्येक स्थल और क्षेत्रों में से उन्हीं क्षणों को सँजोता है, जिनको वह अनुभूत सत्य के रूप में ग्रहण करता है। मार्ग के प्राकृतिक उपादानों को वह अपनी विशिष्ट दृष्टि से देखता है, उसका निरीक्षण-अवलोकन करता है और उसे अपनी भावनाओं में अनुस्यूत कर लेखनी के माध्यम से लिपिबद्ध करता है। इस प्रकार यात्रा का लिखित रूप ही यात्रावृत्त या यात्रा साहित्य कहलाता है। अन्य शब्दों में यात्रा-विशेष का लिपिबद्ध साहित्यिक और कलात्मक विवरण ही यात्रा-साहित्य कहलाता है। इसका एक छोर निबन्ध का तो दूसरा छोर संस्मरण को छूता है। यायावर अनेक सुन्दर दृश्यों और प्रदेशों से प्रभावित होता है। यह अपने इस प्रभाव को आत्मीय संवेदना के द्वारा धारा प्रवाह शैली में व्यक्त करता है। इसमें वह पाठक को भी समेट लेता है। इस प्रकार यात्रा-विवरण का व्यक्तिपरक (व्यक्तिगत) निबंन्ध से नजदीकी रिश्ता है। लारेंस ने यात्रा-साहित्य के विषय में लिखा है 'यात्राएँ हमें केवल स्पेस (स्थान) में ही नहीं ले जातीं, वे उन अज्ञात स्थानों की ओर भी ले जाती हैं, जो हमारे भीतर हैं।'

▶ यात्रा का लिखित रूप ही यात्रावृत्त

इस प्रकार यात्रा-साहित्य यात्रा का यथातथ्य वर्णन मात्र नहीं है, बल्कि उसमें रचनाकार की प्रतिक्रियाओं एवं संवेगों का समन्वय भी रहता है। लेखक संस्मरण, रेखाचित्र एवं कहानी-शिल्प के अद्भुत सम्मिश्रण से यात्रा-साहित्य को पर्याप्त रोचक एवं चित्रोपम बना देता है। इसी कारण यात्रा-साहित्य में एक साथ महाकाव्य और उपन्यास के विराट् तत्व, कहानी का आकर्षण, गीतिकाव्य की मोहक भावशीलता, संस्मरणों की आत्मीयता और निबन्धों की युक्ति समाहित होती है। संस्मरण साहित्य की भाँति यात्रा-साहित्य की भी संरचना निबन्धात्मक शैली में ही होती है। यात्रा-वृत्तान्त का लेखक शब्दों की चित्रात्मकता से उस स्थल का ऐसा सजीव चित्र उपस्थित करता है, जैसे हम यात्रा वृत्तान्त न पढ़कर स्वयं अपनी आँखों से सब कुछ देख रहे हों। स्थानीयता, तथ्यपरकता, आत्मीयता, व्यक्तिपरकता, स्वच्छन्दता, कल्पना-प्रवणता, संवेदनशीलता और रोचकता यात्रा-साहित्य की विशेषताएँ हैं।

▶ रचनाकार की प्रतिक्रियाओं एवं संवेगों का समन्वय

मनुष्य अनादिकाल से यात्राएँ करता रहा है। रोचक और रोमांचकारी इन यात्रा-वृत्तान्तों को वह निश्चय ही अपने बन्धु-बान्धवों तथा सम्पर्क में आने वाले जिज्ञासुओं को सुनाता भी रहा होगा, किन्तु हिन्दी के प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य में इन वृत्तान्तों को लिपिबद्ध करने की परम्परा का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता। हिन्दी में यात्रा-साहित्य लिखने की परम्परा वास्तव में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से विकसित हुई। डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' का कथन है- 'जहाँ तक यात्रा साहित्य का सम्बन्ध है, उसका उदय साहित्य की अनेक विधाओं के साथ अंग्रेजी के साथ हुआ है। वैसे मध्य युग में यात्रा का उद्देश्य मात्र तीर्थ दर्शन होता था। यह बात ब्रजभाषा में उपलब्ध कुछ हस्तलिखित ग्रन्थों से सिद्ध होती है। ये सभी यात्राएँ चम्पू शैली में लिखी गयी हैं।' हिन्दी में यात्रा-वृत्तान्त लिखने की परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु युग से माना जा सकता है। इस युग के महान साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अनेक नगरों और तीर्थ स्थलों की यात्रा की थी और उनके यात्रा-वृत्तान्त समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। 'सरयूपार की यात्रा', 'मेंहदावल की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा', 'हरिद्वार की यात्रा', 'वैद्यनाथ धाम की यात्रा' आदि उनके प्रमुख यात्र-वृत्त हैं। उन्होंने इन वृत्तान्तों का अत्यधिक रोचक और सजीत्र वर्णन किया है। उनके समकालीन प्रतापनारायण मिश्र कृत 'विलायत की यात्रा', बालकृष्ण भट्ट कृत 'कातिकी का नहान', 'गया-यात्रा' आदि भी उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त समकालीन लेखकों में माधवप्रसाद मिश्र आदि ने भी अपने

▶ पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से विकसित

यात्रा-वृत्तान्तों को सुन्दर, सरल और सरस शब्दावली में लिखा। इस युग के यात्रा-वृत्तान्तों में प्राकृतिक सुषमा, स्थानीय सांस्कृतिक जीवन, वेश-भूषा आदि के कलात्मक वर्णन की झलक भी मिलती है। ये यात्रा-वृत्त यात्रा-क्रम में लिखे गये स्थूल वृत्त मात्र हैं। अधिक से अधिक उनमें लेखक के स्वभाव और रुचि का निदर्शन ही उपलब्ध होता है।

▶ हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार

सच्चे अर्थों में यात्रा-साहित्य में द्विवेदी युग की रचनाएँ आती हैं। किसी दृश्य, स्थान अथवा व्यक्ति के आकर्षण को उभारने की प्रवृत्ति उनमें मिलती है। यायावरी को उभारने का भी लेखकों ने प्रयत्न किया है। रमा नारायण मिश्र (यूरोप यात्रा के छः मास), कन्हैयालाल मिश्र (हमारी जापान यात्रा), प्रो. मनोरंजन (उत्तराखण्ड के पथ पर), जवाहरलाल नेहरू (आँखों देखा रूस), सेठ गोविन्ददास (सुदूर दक्षिण-पूर्व पृथ्वी-परिक्रमा), सूर्यनारायण व्यास (सागर प्रवास), रामधारीसिंह दिनकर (देश- विदेश की यात्रा), यशपाल जैन (जय अमरनाथ, उत्तराखण्ड के पथ पर), भुवनेश्वर प्रसाद 'भुवन' (आँखों देखा यूरोप), विष्णु प्रभाकर (हँसते निर्झर), राहुल सांकृत्यायन (घुमक्कड़शास्त्र, मेरी लद्दाख यात्रा, तिब्बत में सवा वर्ष, मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी यूरोप यात्रा, जापान-ईरान-रूस में पच्चीस वर्ष, यात्रा के पन्ने, यात्रावली तथा एशिया के दुर्गम खण्डों में), भगवतशरण उपाध्याय (वो दुनियाँ, लाल चीन, कलकत्ते से पोकिंग, सागर की लहरों पर, गंगा गोदावरी), अमृतराय (सुबह के रंग), रांगेय राघव (तूफानों के बीच), अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा याद तथा एक बूँद सहसा उछली), यशपाल (लोहे की दीवार के दोनों ओर तथा राहबीती), रामवृक्ष बेनीपुरी (पैरों में पंख बाँधकर, हवा पर तथा पेरिस नहीं भूलता), मोहन राकेश (आखिरी चट्टान तक), देवेश दास (यूरोप और रजवाड़े) आदि प्रमुख लेखक और उनकी रचनाएँ हैं।

▶ लेखकों का यात्रा वर्णन

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'आँखों देखा रूस' में रूस के बहुमुखी विकास का लेखाजोखा प्रस्तुत किया है। यशपाल ने 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' के माध्यम से पूँजीवादी तथा साम्यवादी शासन-व्यवस्था के पारस्परिक अन्तर को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ उद्घाटित किया है। रामकृष्ण रघुनाथ खांडेलकर ने साम्यवादी शासन के अन्तर्गत रूस में हुई प्रगति की रोचक कहानी प्रस्तुत की है। यशपाल जैन ने अपनी पुस्तक 'रूस में छियालीस दिन' में रूस के आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक जीवन के सम्बन्ध में रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक तथ्य प्रस्तुत किये हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी ने रूसियों के स्वाभाविक स्नेह, अकृत्रिम आतिथ्य तथा उल्लासमय मैत्री का धाराप्रवाह शैली में मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

▶ लेखकों का विभिन्न शैली

राहुल सांकृत्यायन के चरण जीवन-पर्यन्त गतिशील रहे तथा एक स्थन से दूसरे स्थान को दौड़ते रहे। यात्रा करने में राहुलजी को उतना ही आनन्द आता, जितना किसी ज्ञानी-ध्यानी को ब्रह्म से साक्षात्कार करने में मिल सकता है। 'रूस में पच्चीस मास' में उनकी तीसरी रूस-यात्रा का वर्णन है। इस रचना में लेनिनग्राड आदि की यात्राओं का रोचक और ज्ञानवर्द्धक वर्णन किया गया है। डॉ. नगेन्द्र ने 'तंत्रालोक से यन्त्रालोक तक' में अपनी पैनी आलोचनात्मक दृष्टि के माध्यम से रूस के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिवेश का अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह यात्रावृत्त विश्लेषणात्मक शैली में लिखा गया है।

इस युग में चीन तथा जापान की यात्राओं से सम्बन्धित पुस्तकें भी प्राप्त हुई हैं। इन पुस्तकों की संख्या बहुत थोड़ी है। चीन की यात्रा से सम्बन्धित पुस्तकों में राम आसरे द्वारा विरचित

'माओ के देश में', भगवत शरण उपाध्याय-कृत 'कलकत्ता से पेकिंग', राहुल सांकृत्यायन-कृत 'चीन में कम्यून' तथा 'चीन में क्या देखा' हैं। ओम प्रकाश मंत्री द्वारा विरचित 'माओ के देश में पाँच साल' विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य हैं। राम आसरे ने डायरी शैली का आश्रय लेकर यथास्थान चीन-यात्रा के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। भगवत शरण उपाध्याय ने चीन-प्रकरण के दिनों में लिखे गये पत्रों को सँजोकर अपनी पुस्तक का तानाबाना तैयार किया है। जापान की यात्रा से सम्बन्धित स्वतन्त्र रचनाओं में रामकृष्ण बजाज द्वारा विरचित 'जापान की सैर' विशेष-रूप से उल्लेखनीय है। इस यात्रा-वृत्त में जापान के दर्शनीय स्थानों के वर्णनों के साथ-साथ जापान की आर्थिक प्रगति का भी यथास्थान विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस युग में ऐसे यात्रा-वृत्तान्त भी लिखे गये हैं, जिनमें किसी एक देश से सम्बन्ध यात्राओं का विवरण देने के स्थान पर एक से अधिक देशों से सम्बन्धित यात्रा-वृत्तान्तों को एक स्थान पर एकत्रित किया गया है।

▶ यात्राओं से सम्बन्धित पुस्तकें प्राप्त हुई

प्रदीप पंत

प्रदीप पंत का जन्म लखनऊ के हलद्वानी, उत्तराखंड में 24 अप्रैल 1941 को हुआ। पंत के अब तक छः उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। पंत की कन्नड में अनूदित कहानियों का संकलन 'न्याया मत्तु इतर कथेगलु' शीर्षक से प्रकाशित है। पंत के देश-विदेश के यात्रा-संस्मरणों के चार संकलन हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू पर उत्कृष्ट लेखन के लिए पंत को 'जर्नलिस्ट्स वेलफेयर फाऊंडेशन' का यूरोप भ्रमण पुरस्कार, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान का 'प्रेमचंद अनुशंसा पुरस्कार', हिन्दी अकादमी द्वारा दो बार 'साहित्यिक कृति पुरस्कार' प्राप्त हैं। 'साहित्यकार सम्मान' और उत्कृष्ट व्यंग्य लेखन के लिए हिन्दी भवन, नई दिल्ली का 'व्यंग्यश्री सम्मान' भी प्राप्त हुए हैं।

▶ प्रमुख यात्रावृत्तान्त लेखक

'चेरापूँजी से आया हूँ' - प्रदीप पंत

शिलाग मेघालय की खुबसूरत राजधानी है। वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य की तुलना उत्तर भारत में किसी भी शहर के साथ नहीं हो सकती। स्वच्छ, सुंदर पर्वतीय नगर, चारों तरफ हरियाली छाई हुई ऐसा शायद ही देखने को मिले। लेखक जीप से 53 कि. मी. दूर चेरापूंजी की ओर बढ़ रहे थे। साथ में राज्य के अधिकारी श्री संगमा और उनके दो दोस्त भी थे। उन्होंने जो जानकारी दी उसके मुताबिक मेघालय में जलविद्युत का उत्पादन ज्यादा होता है और अतिरिक्त बिजली अन्य राज्यों को देते है।

मेघालय तीन पर्वतीय अंचलों में बँटा हुआ है खासी पर्वत, गारो पर्वत और जयंतिया पर्वत। हर एक अंचल का अपना महत्व है। अलग संस्कृति है। वहाँ मातृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था है। भूमि, धन संपत्ति सब माँ से बेटी को मिलती है। ज्यादातर पूर्वोत्तर राज्यों में स्त्रियों का वर्चस्व देखने को मिलता है। भले ही वहाँ मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था न हो। मणिपुर की राजधानी इम्फाल में 'माइती बाजार' देखने को मिलता है। 'माइतीबाजार' यानी माँ का बाजार, दिनभर सामान की बिक्री यहाँ की महिलाएँ करती है। यहाँ वर्ग भेद नहीं है। अमीर-गरीब घरों की स्त्रियाँ इस बाजार में मिल जाएँगी। इस बाजार में दुकानों पर बैठी है महिलाएँ - फिर चाहे दुकान फल सब्जियों की हो या चाय की। आगे बढ़ते हुए लेखक संगमा के साथ चले जाते है। वहाँ एक जगह पर जीप रूकवा दी। सामने नोहरंग थियांग प्रपात जो मॉसमाई प्रपात के नाम से लोकप्रिय है, दिखाई दिया। ऊँचे पहाड़ से सैकड़ों फुट नीचे पानी

▶ चेरापूँजी से आया हूँ पाठ का सारांश

लगातार बिना किसी रुकावट के गिर रहा है। वहाँ से बांग्लादेश ठीक सामने नजर आ रहा है। अचानक हल्की-हल्की वर्षा शुरू होती है। पलभर में मौसम बदलता है। समुद्र की सतह से तेरह सौ मीटर ऊपर चेरापूँजी है। विश्व में सबसे अधिक वर्षावाला स्थान मान जाता है। वहाँ कलकल करते जलप्रपात भी है। और पानी से घिरे बाँग्लादेश का भूभाग नजर आता है। खासी, जयंतिया और गारो इन पहाडियों के लोगों की विशेषताएँ कुछ इस प्रकार है। खासियों को सम्मान की दृष्टी से देखा जाता है। गारो समूह बोडो जाति का अंग है। नोंगक्रेम प्रमुख मृत्य है। जयंतिया पहाड़ियों के उत्सव का नाम 'बेहदीनखलम महोत्सव' है। मासमाई गाँव की गुफाएँ हैं, यह। इतनी अंधेरी हैं कि मशाल या टॉर्च जलाए बिना उनमें प्रवेश नहीं कर सकते लेखक के साथ संगमा और उनके दोस्तों ने मशालें जला ली और गुफाओं के अंदर आगे बढ़ गए। अंत में प्रदीप पंत का चेरापूँजी की हरियाली को छोड़कर दिल्ली जैसे प्रदूषित शहर में आने का मन ही नहीं था। यह यात्रा विवरण काफी रोमांचकारी अनुभव से भरा था जिसका वर्णन वे रोचक ढंग से करते हैं।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

यात्रा करना मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। हम अगर मानव इतिहास पर नज़र डालें तो पाएँगे कि मनुष्य के विकास की गाथा में यायावरी का महत्वपूर्ण योगदान है। अपने जीवन काल में हर आदमी कभी-न-कभी कोई-न-कोई यात्रा अवश्य करता है लेकिन सृजनात्मक प्रतिभा के धनी अपने यात्रा अनुभवों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर यात्रा-साहित्य की रचना करने में सक्षम हो पाते हैं। यात्रा-साहित्य का उद्देश्य लेखक के यात्रा अनुभवों को पाठकों के साथ बाँटना और पाठकों को भी उन स्थानों की यात्रा के लिए प्रेरित करना है। इन स्थानों की प्राकृतिक विशिष्टता, सामाजिक संरचना, सामाज के विविध वर्गों के सह-संबंध, वहाँ की भाषा, संस्कृति और सोच की जानकारी भी इस साहित्य से प्राप्त होती है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. यात्रा विवरण का परिचय दीजिए।
2. यात्रा साहित्य के बारे में टिप्पणी लिखिए।
3. प्रमुख यात्रा विवरण साहित्यकार के बारे टिप्पणी लिखिए।
4. हिन्दी के प्रमुख यात्रा विवरण साहित्य के बारे में बताए ।
5. 'चेरापूँजी से आया हूँ' पाठ का सारांश लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी का यात्रा साहित्य - विश्वमोहन तिवारी।
2. हिन्दी यात्रा साहित्य : स्वरूप और विकास - मुरारीलाल शर्मा
3. हिन्दी का यात्रा साहित्य - रेखा प्रवीण उप्रेती

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - डॉ. इन्द्रनाथ मदान।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

इकाई : 4

रिपोर्ताज - सामान्य परिचय (सूखे सरोवर का भूगोल - मणि मधुकर - विस्तृत अध्ययन)

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रिपोर्ताज से परिचित होता है
- रिपोर्ताज के अर्थ एवं परिभाषा से अवगत होता है
- रिपोर्ताज का उद्भव और विकास की जानकारी प्राप्त करता है
- रिपोर्ताज के स्वरूप, शैली एवं लेखन के बारे में समझता है

Background / पृष्ठभूमि

रिपोर्ताज आधुनिक युग में विकसित एक गौण गद्य-विधा है, जिसका उदय द्वितीय महायुद्ध के समय युद्ध की घटनाओं के रिपोर्ट या विवरण प्रस्तुति के अंतर्गत एक साहित्यिक विधा के रूप में हुआ था। इस प्रकार, यह विधा समाचार पत्रों की देन है और इसका जन्म पत्रकारिता की कोख से हुआ है। रिपोर्ताज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। यह अंग्रेज़ी के रिपोर्ट (Report) का हिन्दीकरण है। रिपोर्ताज का जन्म 1936 ई. में उस समय हुआ, जब अमेरिकी लेखक इलिया एहटेनबर्ग द्वारा अनेक रिपोर्ताज लिखे गये। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका का साहित्यिक रूप में आँखों देखा वर्णन ने इसे एक साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। हिन्दी में रिपोर्ताज विधा का श्रीगणेश रूपाभ में प्रकाशित शिवदान सिंह चौहान की रचना 'लक्ष्मीपुरा' में (दिसम्बर, 1938) से होता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

साहित्यिक गोष्ठियों, सभा-सम्मेलनों, जिम्मेदारी

Discussion / चर्चा

रिपोर्ताज मूल रूप से फ्रांसीसी भाषा का शब्द है जिसका आशय हैं सरस एवं भावात्मक अंकन। इसमे लेखक किसी भी आयोजन घटना, संस्था आदि की कलात्मक ढंग से ब्यौरे-वार रिपोर्ट तैयार करके जो प्रस्तुततीकरण करता है, उसे ही रिपोर्ताज कहते हैं। आंखों देखी घटनाओं पर ही रिपोर्ताज लिखा जा सकता है। रिपोर्ताज का विषय कभी कल्पित नही होता। तथ्य को रोचकता प्रदान करने के लिए इसमें कल्पना तत्व की सहायता ली जा सकती है। रिपोर्ताज लेखक को पत्रकार तथा कलाकार दोनों की ही जिम्मेदारी निभानी पड़ती हैं। इममें लेखक प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर किसी घटना की रिपोर्ट तैयार करता है और उसमें अपनी सहज साहित्यक कला से जब लालित्य ले आता है तब वही गद्य की आकर्षक विधा 'रिपोर्ताज' कहलाती है। वास्तव में रिपोर्ट के कलात्मक एवं साहित्यक रूप को ही रिपोर्ताज

कहते है। सहसा घटित होने वाली अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना ही इस विधा को जन्म देने का मुख्य कारण बन जाती है। रिपोर्ताज विधा पर सर्वप्रथम शास्त्रीय विवेचन श्री शिवदान सिंह चौहान ने मार्च 1941 मे प्रस्तुत किया था। हिन्दी मे रिपोर्ताज की विधा प्रारंभ करने का श्रेय हंस पत्रिका को है। जिसमें समाचार और विचार शीर्षक एक स्तम्भ की सृष्टि की गई। इस स्तम्भ में प्रस्तुत सामग्री रिपोर्ताज ही होती हैं। रिपोर्ताज गद्य साहित्य की आधुनिक विधा है। कुछ प्रमुख रिपोर्ताज लेखक कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', विष्णु प्रभाकर, माचवे, श्याम परमार, अमृतराय, रांगेय राघव तथा प्रकाश चन्द्र गुप्त आदि हैं।

▶ रिपोर्ट के कलात्मक एवं साहित्यक रूप

4.4.1 रिपोर्ताज का अर्थ एवं परिभाषा

हिन्दी में 'रिपोर्ताज' को 'सूचनिका' और 'रूपनिका' भी कहा जाता है, परन्तु प्रचलित शब्द 'रिपोर्ताज' ही है। कुछ लोग इसका उच्चारण 'रिपोर्टाज' भी करते हैं। मूलतः 'रिपोर्ताज' शब्द फ्रेंच भाषा का है, लेकिन हिन्दी में यह अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' के माध्यम से आया है।

डॉ. भागीथ मिश्र रिपोर्ताज को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, "किसी घटना या दृश्य का अत्यन्त विवरणपूर्ण सूक्ष्म, रोचक वर्णन इसमें इस प्रकार किया जाता है कि वह हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाए और हम उससे प्रभावित हो उठे।"

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के अनुसार, "रिपोर्ताज घटना का हो, दृश्य का हो या मेले का, उत्सव का हो, उसमें ज्ञान और आनन्द का संगम होना चाहिए।"

डॉ. ओमप्रकाश सिंहल के अनुसार, "जिस रचना में वर्ण्य-विषय का आँखों देखा तथा कानों सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाए कि पाठक के हृदय के तार झंकृत हो उठे और वह उसे भूल न सके, उसे रिपोर्ताज कहते हैं।"

▶ विभिन्न विद्वानों की परिभाषा

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, "किसी घटना या घटनाओं का ऐसा वर्णन कि वस्तुगत सत्य पाठक के हृदय को प्रभावित कर सके, रिपोर्ताज कहलाएगा।"

4.4.2 हिन्दी रिपोर्ताज : उद्भव और विकास

रिपोर्ताज सामयिक आवश्यकता की उपज है। हिन्दी में इसके लेखन की परम्परा बहुत नवीन है। हिन्दी में रिपोर्ताज लेखन का सूत्रपात करने का श्रेय रांगेय राघव को है, जिन्होंने सन् 1941 में बंगाल के भीषण अकाल पर अपने रिपोर्ताज प्रस्तुत किए थे। अमृतलाल नागर ने उस अकाल से प्रभावित होकर 'महाकाल' उपन्यास लिखा था। सन् 1948, 1965 और 1971 में भारत-पाक युद्ध, 1962 में चीन से युद्ध आदि घटनाओं ने भी लेखकों को रिपोर्ताज लिखने के लिए प्रेरित किया। बाढ़, अकाल, अग्निकाण्ड, विमान दुर्घटना आदि के सम्बन्ध में भी रिपोर्ताज लिखे गए। सन् 1971 के बाँग्लादेश स्वाधीनता संग्राम के दिनों में धर्मवीर भारती ने बाँग्लादेश से रिपोर्ताज भेजे थे, जो 'धर्मयुग' में छपते थे। 'दिनमान', 'ज्ञानोदय', 'कल्पना', 'अवकाश', 'माध्यम', 'सारिका', 'नया पथ', 'हिन्दी एक्सप्रेस' आदि अन्य हिन्दी पत्रिकाएँ हैं, जिनमें रिपोर्ताज प्रकाशित होते रहे हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं में न केवल पेशेवर पत्रकार रिपोर्ताज लिख रहे हैं अपितु प्रतिष्ठित साहित्यकार भी सक्रिय हैं। रांगेय राघव, धर्मवीर भारती, फणीश्वरनाथ 'रेणु', अमृतराय, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर आदि लेखक रिपोर्ताज लेखकों में प्रमुख स्थान रखते हैं।

▶ रिपोर्ताज लेखन का सूत्रपात

साहित्यिक गोष्ठियों, सभा-सम्मेलनों आदि पर आधारित रिपोर्ताज भी अब प्रायः सभी

साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं। 'आजकल', 'सारिका', 'धर्मयुग', 'दिनमान' आदि में इस प्रकार की सूचनिकाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। 'माध्यम' नामक पत्रिका में वर्षों तक रिपोर्ताज प्रकाशित होते रहे। आज भी समसामयिक घटनाओं, महत्वपूर्ण प्रकाशनों आदि पर गोष्ठियाँ व सम्मेलन होते हैं, और उनपर भी रिपोर्ताज छपते रहते हैं। वर्तमान में पुस्तक रूप में भी उत्कृष्ट रिपोर्ताज प्रकाशित हुए हैं। 'गरीब और अमीर पुस्तकें' (रामनारायण उपाध्याय), 'मैं छोटा नागपुर से बोल रहा हूँ' (कामताप्रसाद), 'पीकिंग की डायरी' (जगदीशचन्द्र माथुर), 'चक्कर क्लब' (यशपाल), 'कहनी-अनकहनी' (धर्मवीर भारती), 'गोरी नजरों में' (प्रभाकर माचवे), 'गन्धमादन' (कुबेरनाथ राय) आदि ऐसी ही पुस्तकें हैं। विशुद्ध रूप से रिपोर्ताज प्रस्तुत करने वालों में तीन-चार लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं, रेणु, अमृतराय, विवेकीराय आदि।

▶ पुस्तक रूप में भी उत्कृष्ट रिपोर्ताज प्रकाशित हुए हैं

4.4.3 रिपोर्ताज का स्वरूप, लेखन और शैली

रिपोर्ताज की पहली अनिवार्य शर्त यह है कि उसमें किसी महत्वपूर्ण सामयिक समाचार का प्रामाणिक विवरण होना चाहिए अर्थात लेखक घटना का प्रत्यक्ष द्रष्टा हो। परंतु घटनाओं और तथ्यों के विवरण मात्र से कोई कृति रिपोर्ताज नहीं बन सकती। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि रचना लेखक के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध हो। प्रत्येक रिपोर्ताज में कोई न कोई कहानी भी आवश्यक होती है और इसीलिए कई बार रिपोर्ताज में आने वाली कहानी वास्तविक कहानी होती है और दूसरे इसका उद्देश्य किसी समस्या का समाधान खोजने के स्थान पर छोटी. छोटी बातों के माध्यम से एक ऐसा चित्र निर्मित करना होता है। जिससे सम्पर्क स्थापित होते ही पाठक हमारे जीवन को संचालित करने वाले जीवन मूल्यों के संबंध में सोचे बिना नहीं रह सकता। रिपोर्ताज में लेखक निबंध शैली, पत्र शैली, डायरी शैली, किसी का भी प्रयोग कर सकता है। वह उसे लघु आकार में भी लिख सकता है और उपन्यास के समान वृहदाकार में भी परंतु उस रचना के लिए अपने युग का जीवन्त इतिहास होना अनिवार्य है।

▶ निबंध शैली, पत्र शैली, डायरी शैली

4.4.4 प्रमुख रिपोर्ताज और लेखक

हिन्दी रिपोर्ताज की प्रथम रचना का श्रेय डॉ कैलाश चंद्र भाटिया रूपाभ के दिसम्बर, 1938 अंक में प्रकाशित शिवदान सिंह चौहान की रचना 'लक्ष्मीपुरा' को देते हैं परंतु वास्तविकता यह है कि कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के 'क्षण बोले, कण मुस्काये' के कई रिपोर्ताज इनसे पहले प्रकाशित हैं।

- भदंत आनन्द कौशल्यायन (देश की मिटटी बुलाती है),
- भगवतशरण उपाध्याय (खून के छींटे)
- फणीश्वर नाथ रेणु ऋणजल, धनजल),
- रांगेय राधव (तूफानों के बीच)

अन्य रिपोर्ताज लेखकों में प्रकाश चंद्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, शमशेर बहादुर सिंह अमृतराय, धर्मवीर भारती, विवेकीराय, निर्मल वर्मा, कामता प्रसाद मिश्र, शिवसागर मिश्र आदि ने विशेष ख्याति प्राप्त की है।

▶ प्रमुख लेखक

4.4.5 सूखे सरोवर का भूगोल - मणि मधुकर

'सूखे सरोवर का भूगोल' मणि मधुकर के गाँव को केंद्र में रख कर लिखा गया रिपोर्ताज है जिसमें वे अकाल की मार सह रहे अपने गाँव की रिपोर्ट लिखते हैं। यह रचना ढह चुके

सामंती जीवन को करुण चित्र को दिखाता है। वे बताते है कि इस गाँव में मेढ़क नहीं बोलते अर्थात् मेघ यहाँ कभी नहीं आते। लोग अभाव ग्रस्त होकर जी रहे हैं। अभावग्रस्त होने पर भी लोगों में जीवन का राग और स्नेह खत्म नहीं हो गया है। इस बात के प्रमाण के रूप में लेखक ने बूढ़ी धिराणी को चित्रित किया है। वह निर्धन हो चुकी है, उसके पास अब कुछ भी नहीं है। उस समय भी वह दस पैसे देकर लेखक के सर पर हाथ फेरती है और कहती है कि जाकर शक्करपारे खा लेना।

▶ अकाल से त्रस्त गाँव का करुण चित्रण

लेखक का बालसखा है सिराम। उसकी कुछ विचित्र आदतें हैं। वह अनपढ़ और बुद्धू होने पर भी उसकी बलिष्ठ काया है। आठ-दस साल की उम्र में वह लेखक को खेल में पछाड़ता था। लेखक को वह पढ़ेसरी अथवा पढ़ा-लिखा कहता था। वह पढ़े-लिखे लेखक से बात करने से शरमाता है। लेखक को लगा कि उन दोनों के बीच कुछ अलगाव हो गया है। चोरी के मामले में पकडे जाकर पिटता है तो वह लेखक के पास जाकर कहता है कि तुम बड़े होकर थानेदार बनना। उसका विचार था कि थानेदार की मित्रता उसे शत्रुओं को दबाने की शक्ति देगी। सिराम लेखक की पत्नी से स्नेह और आदर रखता था। वह लेखक को डांटा करता था कि उनको मेम को रखने का शऊर नहीं है। सिराम की पहलेवाली दो स्त्रियाँ अकाल पड़ने पर इधर उधर हो गयीं और तीसरी दुर्भिक्ष के समय अपने बाल बच्चों से बिछुडकर सिराम के घर आ बैठी। उसे सब लोग तीजड़ कहते है, तीजड़ माने तीसरी बीवी।

▶ चोरी के आरोप में पकड़े जाने पर लेखक को थानेदार बनने की सलाह देता है

बरसों तक सूखे की हालत रहती तो गाँव के गली मुहल्ले खाली हो जाते हैं। लोगों में अपनी-अपनी जान बचाने की चिन्ता बनी रहती है। रोजी-रोटी की खोज में बड़े शहरों की तरफ जानेवालों को 'दिसावर जाना' कहते हैं। जब सम्पन्न बनिक इस तरह के काम पर निकलते हैं तो उसे 'दिसावर जाना' कहते हैं, लेकिन एक छोटा कमज़ोर आदमी भूख प्यास से बेहाल होकर इन्हीं स्थानों के लिए घर बार छोडता है तो उसे 'मऊ' जाना कहते हैं। जुगाली मऊ पर निकालकर कई बाबुओं की प्यारी रहने के बाद नेवगिये के घर आ बैठी। नेवगिया अच्छा कारीगर है। एक बार वह रावती की सुरती के किवाडों की जेड़ायत ठीक करने के लिए बुलाया गया। नेवगिया काम करने लगा तो सुरती पानी लाने बाल्टी लेकर बाहर गयी। नवगिये की गलती से कुछ काँच के सामान, छीके पर रखी हुई दही की हाँडी, घड़े आदि टूट- फूट गये तो नेवगिया घबराकर मजूरी की चाह छोड़कर भाग गया।

▶ सम्पन्न लोगों का 'दिसावर जाना' और कमजोरों का 'मऊ जाना' कहा जाता है

कुंवारे दूले खां की उम्र नब्बे साल से ज़्यादा थी। बीवी की चाह बहुत थी। लंबी खोज खबर के बाद एक जगह मामला पट गया और दूले खां बीवी को अपनी मरियल सी घोडी पर बिठाकर घर लाये। रात को पता चला कि बीवी के मुँह में एक भी दांत नहीं है। कुछ हो हल्ला हुआ, तो भी दंतहीन बीवी इकदंता दूले खां की गृहिणी हो गयी। दो ढाई साल बाद वह मर गयी। दूले खां ने भारी शोक मनाया। खरिया बास की धापली नाई की लडकी थी। रूधजी ठाकुर के मन की वह भा गयी तो साथ ले गये, पर राजपूती खून न होने से वह ठकुराजी नहीं हो सकती थी, अतः उसके आगे धिराणी, यानी मालकिन संबोधन जुड़ गया। साठ से ऊपर की हो चुकी धापली धिराणी ने अठारह बच्चों को जन्म दिया और सभी ज़िन्दा रहकर अपनी अपनी गृहस्थी चलाते हैं। रूधजी ठाकुर की मृत्यु के बाद धापली धिराणी अपशकुनी हो गयी। उसके बारे में कई अफवाहें फैलती थीं। फलतः धापली का अकेलापन घना हो गया। सूखे की मार से खोखला हुए गाँव में एक दिन लेखक ने देखा कि धापली धिराणी एक तलाई का कीचड़ मसल कर खा रही थी।

▶ धापली धिराणी ने कई बच्चे पैदा किए, लेकिन वह अकेली और दुखी हो गई

किसी साल फसल अच्छी हुई तो डाकू आकर सब कुछ लूटकर ले जाते हैं। कभी-कभी हाकिमों की जीपें आकर लड़कियों को लेकर चली जाती हैं। ज़िन्दा रहने की चाह सब कुछ कराती है। हफ्तों की भूख असहनीय होने पर स्त्री बच्चों और पति को सोते छोडकर चली जाती है। बचा हुआ थोडा सा अनाज छिपा रखकर पिता रोज़ खुद एक -दो फांक मुंह में डालता है। बच्चों को एक दाना भी नहीं देकर उनको अपनी मौत मरने देता है। मोबात लेखक के गाँव का एक लड़का है जो किसी का हुक्म बर्दाश्त नहीं करता।अपनी मौसी को ले जाने आये पुलिसवाले से लड़का मोबत भिड गया। पुलिस ने उसकी आँखों में लोहे का छड घुसेड़ दिया तो मोबत ने लपककर उसे घूंसे मारकर गिरा दिया। कुछ गाँववालों ने मोबत को पकड़कर पीटा और वह चुपचाप मार खाता रहा, क्योंकि उसे पता था कि थानेदार की कोपदृष्टि बरबादी लाएगी।

▶ गाँव में लोग भूख से परेशान हैं, और मोबात पुलिस से लड़कर चुपचाप पिटाई सहन करता है

डूंगर माता के मेले में धिराणी ने लेखक को देखकर उन्हें दस पैसे का एक सिक्का देकर कहा कि शक्करपारे लेकर खा ले। धिराणी माँ हर मेले में खरच करने केलिए उन्हें एक सिक्का दिया करती थी। लेखक (मोतिया) को देखकर धापली धिराणी खुश हो जाती है।गाँव के सभी लोग जिसे डायन मानने लगे थे, उस धापली धिराणी के प्रति भी लेखक के मन में कितना सम्मान और प्रेम है, उसकी कहानी बड़ी ही मर्मस्पर्शी है। इस तरह लेखक अपने गाँव का जहाँ हर दिन हर पल सभी लोग संघर्ष कर रहे है, बड़ा ही संवेदनशील चित्र प्रस्तुत करते हैं।

▶ धिराणी ने डूंगर माता के मेले में लेखक को पैसे दिए, जबकि गाँव वाले उसे डायन मानते हैं, लेकिन लेखक को उससे प्यार है

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

रिपोर्ताज हिन्दी साहित्य की सबसे नवीन विधा है, मात्र 40 वर्ष का इतिहास है इसका। फिर भी इसने जो प्रगति की है, वह सूचित करती है कि इसका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। सम्प्रति, हिन्दी रिपोर्ताज मुख्यतः पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हो रहा है, लेकिन निकट भविष्य में रिपोर्ताज पुस्तकाकार रूप में भी पर्याप्त संख्या में प्रकाशित होंगे।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. रिपोर्ताज के बारे मे टिप्पणी लिखिए।
2. रिपोर्ताज का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।
3. रिपोर्ताज का उद्भव और विकास व्यक्त कीजिए।
4. रिपोर्ताज का स्वरूप, शैली एवं लेखन के बारे में अपना मत प्रकट कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी का गद्य साहित्य - डॉ. रामचंद्र तिवारी
2. साहित्य विमर्श और निष्कर्ष - डॉ. महेंद्र भटनागर

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - डॉ. इन्द्रनाथ मदान।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

इकाई : 5

व्यंग्य साहित्य, प्रमुख व्यंग्यकार (निंदा रस - हरिशंकर परसाई - विस्तृत अध्ययन)

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- व्यंग्य साहित्य के बारे में समझता है
- प्रमुख व्यंग्यकार से परिचित होता है
- हरिशंकर परसाई और उनकी रचनाओं को समझता है
- हरिशंकर परसाई की रचना निंदा रस से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

व्यंग्य हिन्दी साहित्य की अमूल्य विधा है, व्यंग्य विधा के माध्यम से हम सामाजिक,आर्थिक, एवं राजनैतिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर सीधा प्रहार करते हैं। व्यंग्य में जहाँ हँसी के पुट विद्यमान होते हैं,वहीं वह व्यवस्था में व्याप्त समस्याओं को उजागर कर शासन प्रशासन का ध्यान समस्याओं की ओर इंगित करता है। आधुनिक समय में हमारे जीवन के हर क्षेत्र में समस्याएँ इतनी बढ़ चुकी है, कि उन्हे प्रत्यक्ष कहना अपने आप में संभव नहीं है,ऐसी स्थिति में व्यंग्य एक बहुत बड़ा अभिकरण है। व्यंग्य व्यवस्था पर कटाक्ष है, यह समस्याओं को तार-तार कर अर्थात् बड़ी बारीकी से प्रस्तुत करता है। ताकि श्रोता, पाठक या दर्शक देखकर, पढ़कर या सुनकर मनोरंजनात्मक हँसी से लोटपोट होकर व्यवस्था में व्याप्त समस्याओं से साक्षत्कार कर लेता है, तथा व्यंग्यकार व्यंग्य के माध्यम से समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करता है, यही कारण है, कि आधुनिक हिन्दी जगत में व्यंग्य का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

आलम्बन के प्रति तिरस्कार, चुभलाता-सहलता

Discussion / चर्चा

व्यंग्य शब्द -शक्ति का एक अंग है, जो किसी व्यक्ति,समाज, वस्तु या स्थिति की विरूपता प्रकट करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। मनुष्य भाषा के माध्यम से अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त करता है। पर कभी-कभी स्वयं वाचक को विरूपता सम्बन्धी यह अभिव्यक्ति,अभिप्रेत अर्थ में पूर्ण अभिव्यक्ति अनुभूत नहीं हो पाती। वर्तमान समाज में व्याप्त अव्यवस्थाओं को देखकर कभी-कभी मन व्यथित हो जाता है, चाहे वह अव्यवस्था सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक या धार्मिक हो मन इन अव्यवस्थाओं का प्रतिकार करना चाहता है परन्तु किन्हीं व्यक्तिगत कारणों से हम इनका प्रतिकार नहीं कर पाते और ये भावनाएँ मन के किन्हीं कोने में संचित होने लगती है। व्यंग्यकार इन्हीं संचित भावनाओं को व्यंग्य के माध्यम से समाज में लाने का प्रयास करता है।

- समाज में व्याप्त अव्यवस्था के प्रति प्रतिरोध के भाव जनसमुदाय के समक्ष लाने का प्रयास

4.5.1 व्यंग्य साहित्य

विभिन्न साहित्यकारों ने समय-समय पर व्यंग्य को अपने शब्दों में परिभाषित किया है, जो निम्न हैं:-

1. डॉ. ज्ञान प्रकाश ने अपने शोध-ग्रंथ में खड़ी बोली की हास्य-व्यंग्य कविता का सांस्कृतिक विवेचन किया है। सांस्कृतिक परिवेश के अंतर्गत राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक व साहित्यिक परिवेश आते है जिनपर पर्याप्त रचना की गयी है पर उनमें हास्य-व्यंग्य को खोजकर पाठकों के समक्ष लाने का सफल प्रयास आपने किया है।
2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "व्यंग्य वह है, जहाँ अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बनाना हो जाता है।"
3. डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी के अनुसार, "आलम्बन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़ने वाला हास्य व्यंग्य कहलाता है।"
4. हरिशंकर परसाई ने व्यक्ति व समाज में उपस्थित विसंगति को लोगों के सामने लाने में व्यंग्य को सहायक माना है। उनके अनुसार, "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।"
5. अमृतराय के अनुसार, "व्यंग्य पाठक के क्षोभ या क्रोध को जगाकर प्रकारान्तर से उसे अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध करता है।" विसंगति को देखकर उत्पन्न आक्रोश को नरेन्द्र कोहली ने व्यंग्य कहा है। उनके अनुसार, "कुछ अनुचित अन्यायपूर्ण अथवा गलत होते देखकर जो आक्रोश जगता है, वह यदि काम में परिणत हो सकता है तो अपनी असहायता में वक्र होकर जब अपनी तथा दूसरो की पीड़ा पर हँसने लगता है, तो वह विकट व्यंग्य होता है। पाठक के मन को चुभलाता-सहलता नहीं कोडे लगाता है। अतः सार्थक और सशक्त व्यंग्य कहलाता है।"

▶ व्यंग्य की विभिन्न परिभाषाएँ

4.5.2 व्यंग्य के तत्व

तत्व वे विंदु हैं जिसपर किसी विधा का मूल्यांकन किया जाता हैं। इसमें उन परिस्थितियों का वर्णन किया जाता है जो इस विधा के जन्म के कारक होते हैं। साहित्य समीक्षकों द्वारा अन्य विधाओं की तरह ही व्यंग्य के तत्वों की भी चर्चा की है। उनके अनुसार व्यंग्य के निम्न तत्व हैं :-

1. **विसंगतियों की उपस्थिति** - विसंगति के बगैर व्यंग्य की कल्पना करना संभव नहीं है। विसंगति ही व्यंग्य की आत्मा है। इस प्रकार विसंगति व्यंग्य का एक अनिवार्य तत्व है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा हमारा समाज विसंगतियों से भरा पड़ा है। ये विसंगतियाँ पुरातन काल में भी थी और वर्तमान में भी। ये विसंगतियाँ व्यक्ति व समाज को किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रभावित करती है। व्यंग्यकार सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक व आर्थिक विसंगतियों को लक्ष्य कर अपना व्यंग्य-कर्म करता है तथा पढ़ने वाला पाठक भी इन विसंगतियों के बारे में सोचने को विवश हो जाता है। ये विसंगतियाँ ही व्यंग्यकार को उसके लक्ष्य तक पँहुचाती हैं। इन विसंगतियों से समाज को मुक्त करना अंसभव है किन्तु इन्हें कुछ हद तक कमजोर अथवा कम किया जा सकता है वह भी व्यंग्य के प्रहार द्वारा।

▶ विसंगति व्यंग्य का एक अनिवार्य तत्व है

व्यंग्यकार विचारों का मंथन कर समाज की विषमताओं को व्यंग्य रचना द्वारा समाज के सम्मुख रखता है।

2. प्रगतिशील व सकारात्मक सोच - साहित्यकार की सकारात्मक सोच उसे एक अच्छे व्यंग्य लेखन की ओर अग्रसित करता है। समाज से विसंगतियों का पलायन उसका उद्देश्य होता है तथा इसी को केंद्रित कर वह अपनी रचना लिखता है। वह उन सभी बुराईयों का पुरजोर विरोध करता है जो समाज की प्रगति में बाधक हैं। जो व्यंग्यकार अपनी व्यंग्य रचना द्वारा साम्प्रदायिकता, समाज में व्याप्त अंधविश्वास, कुरीति, गरीबी, बेरोजगारी व रूढ़िवादिता का विरोध करे वही व्यंग्य सफल व्यंग्य माना जायेगा अन्यथा वह व्यंग्य मात्र हास्य-विनोद बनकर रह जायेगा।

▶ समाज से विसंगतियों का पलायन

3. नैतिक मूल्यों की रक्षा - मानव जीवन के विकास के लिए नैतिक मूल्यों की आवश्यकता होती है। नैतिक मूल्यों के अभाव में मनुष्य पतन की ओर उन्मुख हो जाता है। ईमानदारी, सहिष्णुता, समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना ऐसे ही कुछ नैतिक गुण या मूल्य है। व्यंग्यकार अपने व्यंग्य रचना द्वारा भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, अशिक्षा पर व्यंग्य कर नैतिक मूल्यों को पुनः स्थापित करने का प्रयास करता है। व्यंग्यकार शिक्षा, राजनीति या धार्मिक सभी क्षेत्र में आई अनावश्यक विसंगति को समाज के समक्ष लाने का प्रयास करता है। नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए व्यंग्यकार अनैतिक पक्षों को समाज व पाठकों के समक्ष रखता है। इस प्रकार नैतिक मूल्यों के बगैर व्यंग्य शाश्वत रूप से स्थापित होने में असफल रहेगा।

▶ नैतिक मूल्यों को पुनः स्थापित करने का प्रयास

4. गहन चिंतन - गहन चिंतन ही व्यंग्य को जन्म देता है। किसी विषय की गंभीरता साहित्यकार को व्यंग्य लिखने के उद्देश्य को पूरा करने में सहायक होती है वहीं उसका चिंतन उसको उसके लक्ष्य तक पँहुचाता है। जहाँ से वह चारों तरफ विसंगति ही विसंगति से घिरा हुआ पाता है। गंभीर व गहन चिंतन द्वारा व्यंग्यकार श्रेष्ठ व्यंग्य की रचना करता है जो समाज में परिवर्तन का नेतृत्व करने में सहायक होता है।

▶ श्रेष्ठ व्यंग्य की रचना

5. पात्रों का चयन - एक सफल व्यंग्यकार अपनी व्यंग्य रचना में पात्रों का चयन बड़ी सावधानी से करता है। क्योंकि उसके व्यंग्य लिखने का उददेश्य उसके पात्रों के आस-पास ही केंद्रित होता है। व्यंग्यकार विसगंतियों के सापेक्ष अपने पात्रों का चयन करता है। व्यंग्यकार कभी-कभी फैंटेसी का सहारा लेता है तो कभी पौराणिक पात्रों के माध्यम से समाज की विसंगति को पाठक के सामने रखता है।

▶ व्यंग्य लिखने का उददेश्य पात्रों से केंद्रित

6. व्यक्ति व समाज का पतन - पतनोन्मुख व्यक्ति व समाज व्यंग्यकार के लिए पीड़ा का विषय है। वह इस पीड़ा को महससूस करता है तथा उसे अपनी रचना द्वारा उस पतन को समाज के समक्ष लाता है।

▶ व्यक्ति व सामाजिक पतन को समाज के समक्ष लाना

7. भाषा-शैली - व्यंग्य की भाषा उसकी प्रहारक क्षमता को दोगुना करता है। व्यंग्य विसंगतियों के प्रति सहानुभूति नहीं दिखाता अपितु वह कठोर व तीक्ष्ण भाषा का प्रयोग करता है। व्यंग्यकार अपनी भाषा-शैली द्वारा पाठकों के हृदय में अमिट छाप छोड़ता है।

▶ कठोर व तीक्ष्ण भाषा का प्रयोग

8. आलोचना - व्यंग्य का अस्तित्व आलोचना पर आधारित होता है। आलोचना जितना तीक्ष्ण व कटाक्ष होगी व्यंग्य उतना ही प्रभावशाली होगा। व्यंग्य में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक विसंगतियों की आलोचना की जाती है। आलोचना सौद्देश्य होनी चाहिए।

▶ प्रभावशाली व्यंग्य

9. बौद्धिकता - व्यंग्य में बौद्धिकता-तत्व अनिर्वाय है। व्यक्ति अपनी बुद्धि-तत्व के द्वारा विसंगतियों, विद्रूपताओं व विषमताओं को पहचान कर उसपर अपनी व्यंग्य दृष्टि रखता है। अच्छे व्यंग्य लेखन के लिए तर्क व ज्ञान आवश्यक है जो व्यंग्य को उसके उद्देश्य तक पँहुचाने में मदद करता है। इस प्रकार ये सभी तत्व व्यंग्य सृजन के लिए आवश्यक है। ये सभी तत्व ही व्यंग्य लिखने के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। इनके अभाव में व्यंग्य रचनाएँ सामान्य रचना बन कर रह जाती हैं।

▶ अच्छे व्यंग्य लेखन के लिए तर्क व ज्ञान आवश्यक है

4.5.3 प्रमुख व्यंग्यकार

हिन्दी के व्यंग्यकारों ने अनेक ऐसी रचनाएँ दी है जिनमें न प्रत्यक्ष हास्य है, न आक्रोश और न करूणा। वे विशुद्ध बौद्धिक और चिन्तन - प्रधान रचनाएँ है जो पाठक में सामाजिक सजगता उत्पन्न करती है। व्यंग्यकार की भूमिका एक सुधारक, नियामक और न्यायाधीश की होती है। वह एक तटस्थ तमाशबीन की तरह समाज की बुराइयों पर कहकहे लगाकर नहीं रह जाता अपितु उन बुराइयों के लिए जिम्मेदार लोगों को दण्डित करना चाहता है।

▶ समाज में फैली विसंगतियों पर प्रहार

हिन्दी के व्यंग्यकारों ने अपनी लेखनी के द्वारा व्यंग्य को चरम ऊँचाईयों पर पहुँचाने का कार्य किया है। साहित्य में चिन्तन वह सर्वोच्च स्थिति है जहाँ पहुँचकर भावात्मकता और भावुकता पीछे छूट जाती है और केवल बौद्धिकता शेष रह जाती है। हिन्दी के व्यंग्यकारों ने अपनी रचनाओं में व्यंग्य के माध्यम से समाज में फैली विभिन्न विसंगतियों पर तीखा प्रहार किया है।

प्रमुख व्यंग्यकार ये हैं:

1. हरिशंकर परसाई
2. रवीन्द्रनाथ त्यागी
3. श्रीलाल शुक्ल
4. बालेन्दुशेखर तिवारी
5. शरद जोशी

▶ हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार

1. हरिशंकर परसाई

हरिशंकर परसाई एक युग प्रवर्तक साहित्यकार है। उन्होंने व्यंग्य को उस उच्चतम भूमि पर प्रतिष्ठित किया है, जहाँ खड़े होकर आधुनिक समीक्षक कबीर, भारतेन्दु और निराला के व्यंग्य साहित्य के संदर्भ में पुनर्मूल्यांकन करने लगे हैं। हरिशंकर परसाई का लेखन - अनुभवों की व्यापकता और विचारों की गहराई दोनों से सम्पन्न है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, निबन्ध, लघुकथा आदि विभिन्न साहित्य रूपों में प्रचुर मात्रा में व्यंग्य लिखा है हरिशंकर परसाई हिन्दी के पहले रचनाकार है जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परम्परागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। उनकी भाषा-शैली में खास किस्म का अपनापन है, जिससे पाठक यह महसूस करता है कि लेखक उसके सामने ही बैठा है। 'परसाई की ज्यादातर व्यंग्य रचनाएँ राजनीति-केन्द्रित है।' 'ठिठुरता हुआ गणतन्त्र' इनका अत्यन्त चर्चित राजनैतिक व्यंग्य है।

▶ अनुभवों की व्यापकता और विचारों की गहराई

2. शरद जोशी

"शरद जोशी का व्यंग्य फलक इतना व्यापक है कि उसमें कीड़ी से कुंजर तक सब कुछ समा गया है। न तो वह राजनीतिक भ्रष्टाचार तक सीमित है और न आर्थिक विपन्नताओं तक।

घर-परिवार का माहौल कस्बे की मानसिकता और उनके व्यंग्य की नोक अधिकतर राजनैतिक विरूपताओं की और ही रही है। 'हम भक्तन के भक्त हमारे' में राजनीति में फैले भ्रष्टाचार पर तीखा प्रहार करते हुए शरद जोशी ने नेताओं के वादाखिलाफी को जनता के समक्ष प्रकट किया है अफसरों और प्रशासकों के भ्रष्ट आचरण पर व्यंग्य किया गया है। यह वह वर्ग है, जो सारी विकास योजनाओं की राशि को इसी तरह चट कर जाता है जैसे फसल को इल्लियाँ।

▶ राजनीति के क्षेत्र में फैसे भ्रष्टाचार का चित्रण

उनकी रचनाओं में समाज में पाई जाने वाली सारी विसंगतियों का बेबाक चित्रण मिलता है। बिहारी के दोहे की तरह शरद जोशी अपने व्यंग्य का विस्तार पाठक पर छोड़ देते है। इस वक्त लोग व्यंग्य से दूर हो रहे है, क्योंकि सामाजिक परिस्थितियाँ इतनी खराब होती जा रही हैं, जो लोग व्यंग्य के शब्दों में छिपी वेदना को अभिव्यक्त करने वाले को स्वीकार करने में हिचकते हैं । इसको सहजता से पीने का काम शरद जोशी करते थे।

▶ समाज में पाई जाने वाली सभी विसंगतियों का बेबाक चित्रण

3. रवीन्द्रनाथ त्यागी

रवीन्द्रनाथ त्यागी का 'अतिथि कक्ष' इस वर्ग की एक श्रेष्ठ रचना है जो राजनैतिक संस्कृति के असली चेहरे को अनावृत करती है। इस व्यंग्य रचना में नेताओं से लेकर सरकारी अधिकारी, ठेकेदारों, वकील, कथावाचक पर करारा व्यंग्य किया है। 'कुत्ता संस्कृति' त्यागीजी की एक और तीखी व्यंग्य रचना है, जो पाश्चात्य संस्कृति के संसर्ग से लगे शौकों के साथ - साथ जीवन के व्यापकतर संदर्भों पर तेज रोशनी डालती है। वे लिखते है- शामिल हुआ था। इस नुमाइश में आदमी की हैसियत से मैं भी सोफे पर नहीं बैठ सका। वहाँ कुत्ते बैठे थे। व्यंग्य की यह तीक्ष्णता उन सभी क्षेत्रों की विकृतियों के प्रति व्यक्त हुई है, जो हमारे जीवन को सीधे-सीधे प्रभावित करते है 'मूल्यों का संकट' भी व्यापक सामाजिक संवेदनाओं वाली व्यंग्य रचना है। रचना का प्रारम्भ एक नागरिक की इस शिकायत से हुआ है कि शराब बहुत महँगी होती जा रही है। व्यंग्यकार का विक्षोभ उमड़ पड़ता है और वे कह उठते है- आप शराब की बातें कर रहे है, बाकी लोगों को देखिए, जिन्हें रोटी भी नहीं मिल रही। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ त्यागी के व्यंग्य में जीवन के विविध रूप है। नेता और मंत्री, क्लर्क और अफसर, साहित्यकार और प्रकाशक, शोषण और भ्रष्टाचार, शिक्षा और संस्कृति सभी के अन्दर झाँककर उन्होंने विरूपताओं के विविध रूपों का साक्षात्कार किया है। और जैसी विविधता कथ्य में है, वैसी ही शैली में भी। उन्होंने कहानी, निबंध, डायरी, पत्र, संस्मरण, यात्रा - वर्णन और लघुकथा ही नहीं, आलोचना और भाषण में भी व्यंग्य के प्रयोग किये है।

▶ व्यंग्य में जीवन के विविध रूप

4. श्रीलाल शुक्ल

हिन्दी व्यंग्यकारों के बीच श्रीलाल शुक्ल ही एक ऐसे व्यंग्यकार है, जो ग्रामीण जीवन के प्रश्नों से अधिक रूबरू हुए है। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य का दायरा बहुत बड़ा है। ग्रामीण यथार्थ के तो एक-एक पहलू का साक्षात्कार 'राग दरबारी' में हुआ है। अन्य व्यंग्यकारों की तरह श्रीलाल शुक्ल भी नेताओं के जीवन की कृत्रिमताओं का चित्रण करने में अधिक रस लेते है। 'एक जीते हुए नेता से मुलाकात' व्यंग्य में व्यंग्यकार ने एक ऐसे नेता का वर्णन किया है। जो अपने रहन-सहन से युवा दिखाई दे। उसकी उम्र पचपन के करीब है। इस रचना का प्रमुख उद्देश्य नेताओं की व्यस्तता के ढोंग और जन समस्याओं के प्रति उनकी जागरूकता के नाटक को बेपर्दा करना है।

▶ नेताओं की व्यस्तता के ढोंग और जन समस्याओं के प्रति उनकी जागरूकता

5. बालेन्दुशेखर तिवारी

'रिसर्च गाथा' की भूमिका में वे लिखते है, जिस इलाके में मैं रहता हूँ, ' उसकी कुल पाँच समस्याएँ हैं । प्रतियाँ जाँचकर उसके बिल को चेक रूप में प्राप्त करना, तरक्की पाना, पाठ्यक्रम में पुस्तकें लगवाना, समितियों में सदस्य बनना और सहकर्मियों के कार्यकलापों की शास्त्रीय समीक्षा करना - इन्हीं पाँच समस्याओं से बंधे विश्वविद्यालय के सुधी विद्वानों के बीच खाकसार को भी रहना पड़ता है।' ये पंक्तियाँ सूत्र रूप में विश्वविद्यालयीन शिक्षकों की सारी कमजोरियों को एक साँस में कह जाती है। स्पष्ट है बालेन्दुशेखर तिवारी के व्यंग्य का निशाना अपने ऊपर, यानी विश्वविद्यालयीन परिवेश के ऊपर अधिक रहा है।

▶ विश्वविद्यालयीन शिक्षकों की सारी कमजोरियों को एक साँस में कह जाती है

6. शंकर पुणताम्बेकर :-

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विधा के पुरोधा कहे जाने वाले शंकर पुणताम्बेकर एक साधारण व्यक्तित्व व असाधारण प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने विपुल मात्रा में व्यंग्य लिखा है। नेता, अफसर, शोषक पूँजीपति, पाखण्डी धर्मगुरू सभी लेखक के व्यंग्य के माध्यम बने है। शंकर पुणताम्बेकर ने भी अन्य व्यंग्यकारों की तरह देश की राजनीति व राजनेताओं पर करारा व्यंग्य किया है। देश के नेताओं की वादा खिलाफी पर 'प्रेत का बयान' नामक रचना में व्यंग्य किया है। नोट के बदले वोट की राजनीति, एक वोट के बदले ढेर सारे वायदे, ढेर सारे सपनों की राजनीति पर व्यंग्य किया गया है। सरकारी अस्पतालों की दुरवस्था पर भी शंकर पुणताम्बेकर ने कई रचनाओं में चोट की है। 'रूग्णालय की गोद में' व्यंग्य में अस्पताल के अन्दर की इस दुनिया का यथार्थ चित्रण मिलता है। अस्पताल वह जगह है, जहाँ आदमी रोग से मुक्ति पाने की आशा में जाता है और जीवन के कटुतम अनुभव लेकर लौटता है।

▶ देश की राजनीति व राजनेताओं पर करारा व्यंग्य

7. प्रेम जनमेजय :-

जनमेजय आधुनिक व्यंग्य की तीसरी पीढ़ी है। उनके व्यंग्य के पीछे एक व्यापक जीवन-दृष्टि है, जो पूँजीवाद, आडम्बर और रूढ़िवादिता के विरोधी होते हुए भी किसी नारेबाजी में विश्वास नहीं रखती। वे मानव मूल्यों के हामी और समाजोन्मुख लेखन के प्रवक्ता है। उनके व्यंग्य में आक्रोश का स्वर अधिक है, हास्य का कम। वे एक ओर व्यवस्था के प्रति विक्षोभ उत्पन्न करते है तो दूसरी और त्रस्त मानव के प्रति करूणा भी। पुलिस प्रशासन का कार्य जनता की रक्षा करना, चोर उचक्कों से बचाना है, किन्तु पुलिस अपनी भूमिका को भूलकर, कमजोरों को सताना, हफ्ता वसूल करना, गुण्डों को शह देना जैसे कार्यों में प्रवृत्त है। 'इंस्पेक्टर का तबादला' में प्रेम जनमेजय ने इस चरित्र की बखूबी चीरफाड़ की है। वे लिखते है- "हमारे सभ्य समाज में एक वर्ग है, जिसे जनता का रक्षक कहा जाता है। परन्तु वे रक्षक जनता को गधा समझते है, जो पिटता है, बोझा ढोता है, डर के मारे खड़ा-खड़ा नित्यकर्म करता है, ऐसे रक्षकों को पुलिस कहा जाता है।"

▶ व्यवस्था के प्रति विक्षोभ उत्पन्न करते है

राजनैतिक विडम्बनाओं पर भी प्रेम जनमेजय ने सशक्त व्यंग्य रचनाएँ दी हैं, जिनमें "चुनाव का आँखों देखा हाल" विशेष उल्लेखनीय है। उपरोक्त सभी व्यंग्यकारों ने राजनीतिक अखाड़े का पर्दाफाश किया है, समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाने के लिए समाज को प्रेरणा दी है। सांस्कृतिक, धार्मिक, प्रशासकीय, आर्थिक, शैक्षणिक क्षेत्र संबंधित विकृतियों पर कविता, नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास आदि सभी व्यंग्य विधाओं में विसंगति पर तीक्ष्ण प्रहार किये है। सभी व्यंग्यकारों की रचनाओं में व्यंग्य की सभी विशेषताएँ दिखाई देती है।

▶ समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाने की प्रेरणा

4.5.4 निंदा रस - हरिशंकर परसाई

हरिशंकर परसाई हिन्दी के वह मशहूर हस्ती हैं जिन्होंने अपनी लेखनी के दम पर व्यंग्य को एक विधा के तौर पर मान्यता दिलाई। उन्होंने अपने व्यंग लेखन से लोगों को गुदगुदाया और समाज के गंभीर सवालों को भी बहुत सहजता से उठाया। व्यंग्य लेखन से हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने और उनके बहुमूल्य योगदान के लिए उन्हें 1982 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

▶ साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त व्यंग्यकार

हरिशंकर परसाई ने इस व्यंग्य रचना में समाज में फैले हुए अज्ञान, अहंकार, स्वार्थ, धोखा आदि का ज़ोरदार खंडन किया है। इनकी रचनाओं में तीखा व्यंग्य अधिक होता है। इस लेख में लेखक ने निन्दा को नवरसों के समान एक रस माना है। उनका कहना है कि निन्दा रस में हर कोई डुबकियाँ लगाकर आनंद लेता है। उनकी दृष्टि में निन्दा रस की महिमा अपार है।

हरिशंकर परसाई कहते हैं कि उनका एक मित्र बिना बताए लेखक के घर पहुंचता है। दूसरे लोगों के बारे में घंटों तक अनाप-शनाप बककर चला जाता है। लेखक को उन लोगों से कोई वास्ता भी नहीं था। फिर भी वे अपने निन्दक मित्र की बकवास सुनते ही रहे।

▶ निन्दक मित्र का चित्रण

लेखक का मित्र बड़ा विचित्र व्यक्ति है। उसके पास कई परिचित लोगों के दोषों का भंडार है। वह हर किसी के सामने दूसरे लोगों के अवगुणों की निन्दा करता रहता है। कई लोग उस निन्दा रस का आनन्द लेते हैं।

▶ निन्दा करना निन्दकों केलिए एक 'टॉनिक' है

चार-पाँच निन्दकों को एक जगह बिठाकर उनकी टीका-टिप्पणी सुननी चाहिए। वे सब इतनी तल्लीनता के साथ, मज़ेदार भाषा में दूसरों की निन्दा करने लगते हैं कि कोई भी उस महफिल से उठने का नाम नहीं लेता। निन्दक महाशय दूसरों की निन्दा करने में अपने को धन्य मानते हैं। निन्दा करना इनके लिए एक 'टॉनिक' है। यह टॉनिक इनकी उम्र और ताकत को बढ़ाती है।

निन्दकों के भी संघ हैं। उन संघ के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव वगैरह पदाधिकारी भी हैं। इनमें अपने काम के प्रति लगन है, श्रद्धा है और प्रतिबद्धता भी है। निन्दकों का संगठन शक्ति और कार्य करने की पद्धति निस्पम है।

जो लोग हीनता और कमजोरी के शिकार हैं, वे ही दूसरों की निन्दा करने लगते हैं। निन्दा करने से इनका कोई लाभ या प्रयोजन नहीं है; परन्तु निन्दा करने में ये बड़ा सुख और आनन्द पाते हैं।

▶ व्यंग्य को एक विधा के तौर पर मान्यता दिलाई

निन्दा की महिमा अपार है। निन्दकों की निन्दा नहीं करनी चाहिए। महात्मा सूरदास जी ने कहा था- 'निन्दा सबद रसाल' लेखक कहते हैं कि निन्दकों के 'धृतराष्ट्र आलिंगन' से बचना बड़ा कठिन है। निन्दकों के चंगुल से कोई चतुर ही बच सकता है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

व्यंग्य की शुरुआत लेखक द्वारा वर्तमान घटनाओं और व्यवहारों पर बारीकी से और सावधानीपूर्वक ध्यान देने से होती है। अगर उन्हें कुछ हास्यास्पद या अनैतिक दिखाई देता है, तो वे उस गुण को एक कहानी में विस्तारित करते हैं जो उसकी खामियों को उजागर करता है। व्यंग्य का उद्देश्य समाज की आलोचना को इस तरह से प्रस्तुत करना है जो रोचक, उपयोगी और अक्सर मज़ेदार हो। किसी परिचित विषय के इर्द-गिर्द एक चतुर या आश्चर्यजनक कहानी बनाकर, लेखक पाठक का ध्यान समाज की अव्यवस्था, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और विसंगति की ओर खींचता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. व्यंग्य के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. हिन्दी के प्रमुख व्यंगकार के बारे में लिखिए।
3. व्यंग्य के तत्व क्या है? समर्थन कीजिए।
4. हरिशंकर परसाई के बारे में टिप्पणी लिखिए।
5. शरद जोशी हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार है। टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हरिशंकर परसाई, काग भगौड़ा - साहब महत्वकांक्षी।
2. शरद जोशी, यत्र तत्र सर्वत्र।
3. हिन्दी का गद्य साहित्य - डॉ. रामचंद्र तिवारी।
4. निंदा रस - हरिशंकर परसाई

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - डॉ. इन्द्रनाथ मदान।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

Model Question Paper Sets

SGOU

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ……

Reg. No : …….....
Name : ……...

SECOND SEMESTER MA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE - M23HD07DC- आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य

(CBCS - PG)
2023-24 - Admission Onwards

Time: 3 Hours **Max Marks: 70**

SECTION A

I. किन्हीं पाँच प्रश्नों का उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

1. नुक्कड़ नाटक से क्या तात्पर्य है?
2. प्रमुख एकांकीकार का परिचय दीजिए।
3. हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम को कितने भागों में बांटा जा सकता है? नाम बताइए।
4. प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यासों का नाम लिखिए।
5. भीष्म साहनी की कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ लिखिए।
6. रेखाचित्र और संस्मरण के अंतर बताइए।
7. आत्मकथा के प्रमुख तत्व लिखिए।
8. यात्रा विवरण का परिचय दीजिए। **(5X2 = 10 Marks)**

SECTION B

II. किन्हीं छः प्रश्नों का उत्तर एक पृष्ठ के अन्दर लिखिए।

9. हिन्दी गद्य के विकास के कारण बताइए।
10. हिन्दी निबंधों के प्रकार लिखिए।
11. रिपोर्ताज का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।
12. हरिशंकर परसाई के बारे में टिप्पणी लिखिए।
13. कहानी की विभिन्न विधाओं को परिचय दीजिए।
14. जैनेन्द्र कुमार के बारे में जानकारी दीजिए।
15. डॉ. रामकुमार वर्मा के प्रसिद्ध रचानायेम लिखिए।
16. पारसी थियेटर से क्या तात्पर्य है?
17. संस्मरणों की विशेषताएँ लिखिए। **(6X5 = 30 Marks)**

SECTION C

III. किन्हीं दो प्रश्नों का उत्तर लिखिए। प्रत्येक उत्तर तीन पृष्ठों के अन्तर्गत हों।

18. हिन्दी आलोचना का उद्‌भव और विकास पर चर्चा कीजिए।
19. आत्मकथा उद्‌भव और विकास के बारे में टिप्पणी लिखिए।
20. हिन्दी गद्य साहित्य का उद्‌भव और विकास के बारे में टिप्पणी लिखिए।
21. प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास के बारे में अपना मत प्रकट कीजिए। **(2X15 = 30 Marks)**

SGOU

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ……

Reg. No : …….....
Name : ……...

SECOND SEMESTER MA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE - M23HD07DC- आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य

(CBCS - PG)
2023-24 - Admission Onwards

Time: 3 Hours **Max Marks: 70**

SECTION A

I. किन्हीं पाँच प्रश्नों का उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

1. हिन्दी का पहला पत्र?
2. यात्रा विवरण का परिचय दीजिए।
3. व्यंग्य क्या है?
4. हिन्दी गद्य के चार प्रमुख स्तम्भों कौन-कौन है?
5. हिन्दी कहानी के विकास कितने भागों में विभक्त किया है?
6. सचेतन कहानी से क्या तात्पर्य है?
7. विषय की दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का वर्गीकरण कीजिए।
8. यशपाल के द्वारा लिखे गए उपन्यासों का नाम लिखिए। **(5X2 = 10 Marks)**

SECTION B

II. किन्हीं छः प्रश्नों का उत्तर एक पृष्ठ के अन्दर लिखिए।

9. कृष्णा सोबती का परिचय दीजिए।
10. आत्मकथा और जीवनी का अंतर व्यक्त कीजिए।
11. रिपोर्ताज का उद्भव और विकास व्यक्त कीजिए।
12. सरस्वती पत्रिका के बारे में लेख लिखिए।
13. प्रेमचंद युग के प्रमुख कहानीकार।
14. विचारात्मक, भावात्मक निबंधों के बारे में लिखिए।
15. शरद जोशी हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार है। टिप्पणी लिखिए।
16. फनीश्वरनाथ रेणु के रचानाएँ लिखिए।
17. उपन्यास और कहानी का अंतर स्पष्ट कीजिए। **(6X5 = 30 Marks)**

SECTION C

III. किन्हीं दो प्रश्नों का उत्तर लिखिए। प्रत्येक उत्तर तीन पृष्ठों के अन्तर्गत हों।

18. संस्मरण और उसकी विशेषताओं के बारे में टिप्पणी लिखिए।
19. रंगमंच के विकास यात्रा पर टिप्पणी लिखिए।
20. हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव और विकास के बारे में अपना मत प्रकट कीजिए।
21. 19 वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता के बारे में टिप्पणी लिखिए। **(2X15 = 30 Marks)**

SGOU

SGOU

സർവ്വകലാശാലാഗീതം

വിദ്യയാൽ സ്വതന്ത്രരാകണം
വിശ്വപൗരരായി മാറണം
ഗ്രഹപ്രസാദമായ് വിളങ്ങണം
ഗുരുപ്രകാശമേ നയിക്കണേ

കൂരിരുട്ടിൽ നിന്നു ഞങ്ങളെ
സൂര്യവീഥിയിൽ തെളിക്കണം
സ്നേഹദീപ്തിയായ് വിളങ്ങണം
നീതിവൈജയന്തി പാറണം

ശാസ്ത്രവ്യാപ്തിയെന്നുമേകണം
ജാതിഭേദമാകെ മാറണം
ബോധരശ്മിയിൽ തിളങ്ങുവാൻ
ജ്ഞാനകേന്ദ്രമേ ജ്വലിക്കണേ

കുരീപ്പുഴ ശ്രീകുമാർ

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Regional Centres

Kozhikode
Govt. Arts and Science College
Meenchantha, Kozhikode,
Kerala, Pin: 673002
Ph: 04952920228
email: rckdirector@sgou.ac.in

Thalassery
Govt. Brennen College
Dharmadam, Thalassery,
Kannur, Pin: 670106
Ph: 04902990494
email: rctdirector@sgou.ac.in

Tripunithura
Govt. College
Tripunithura, Ernakulam,
Kerala, Pin: 682301
Ph: 04842927436
email: rcedirector@sgou.ac.in

Pattambi
Sree Neelakanta Govt. Sanskrit College
Pattambi, Palakkad,
Kerala, Pin: 679303
Ph: 04662912009
email: rcpdirector@sgou.ac.in

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य

Course Code: M23HD07DC

ISBN 978-81-971228-5-9

Sreenarayanaguru Open University
Kollam, Kerala Pin- 691601, email: info@sgou.ac.in, www.sgou.ac.in Ph: +91 474 2966841